खण्ड-१३, १४ व १५

कणिका में प्रउत

श्री प्रभातरंजन सरकार

कणिका में प्रउत

(खण्ड १३, १४ व १५)

श्री प्रभात रंजन सरकार

अनुक्रमणिका

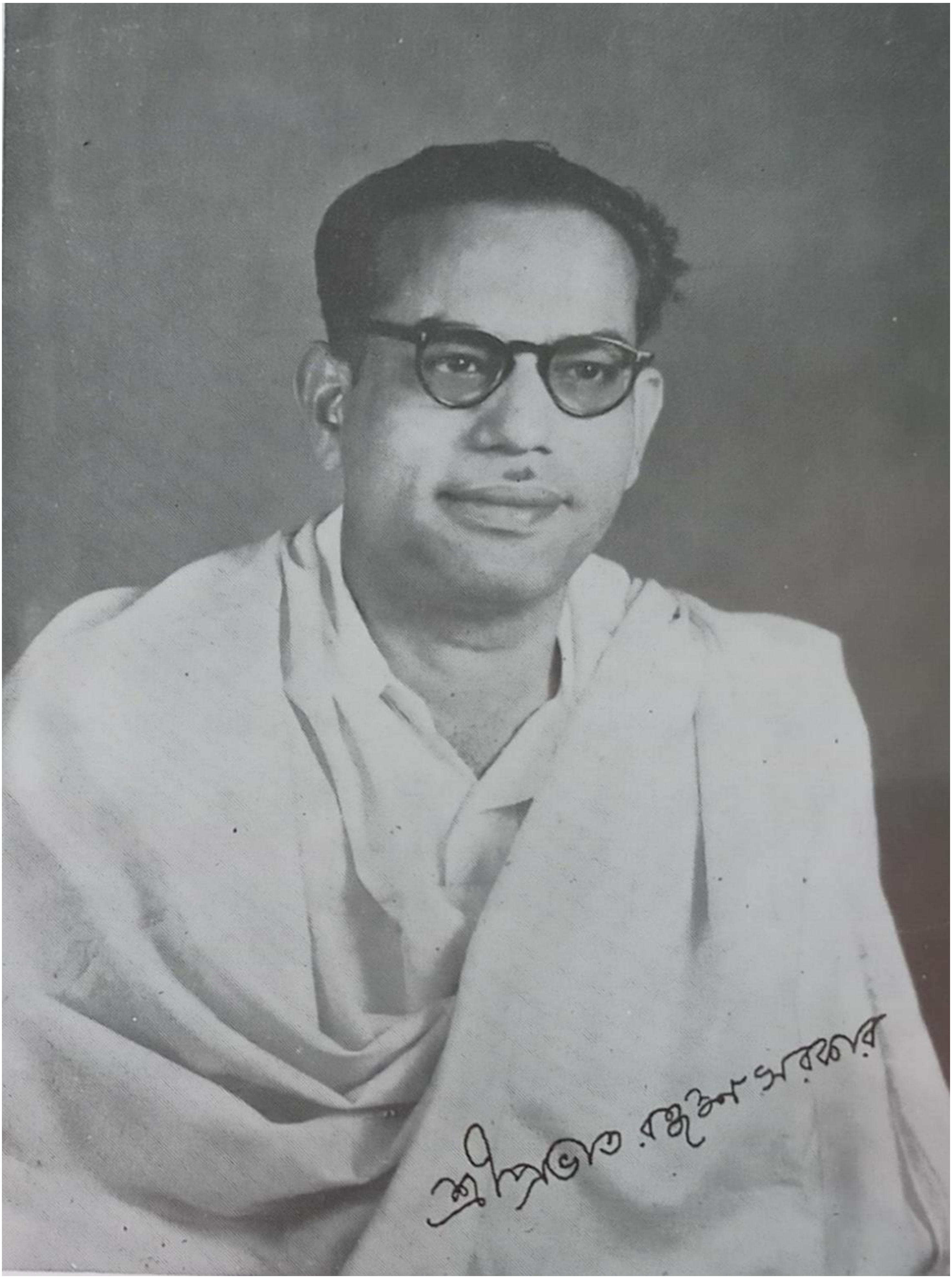

अनुक्रमणिका

©आनन्दमार्ग प्रचारक संघ (केन्द्रीय कार्यालय) कर्तृक सर्वस्वत्व संरक्षित

प्रथम प्रकाश : २००९

पुनः संस्करण : सेप्टेम्वर, २०१६

प्रकाशक :

आचार्य मन्त्रेश्वरानन्द अवधूत (केन्द्रीय प्रकाशन सचिव)

आनन्दमार्ग प्रचारक संघ ५२७, भि.आई. पि. नगर, कलिकाता-७००१००

मुद्रक :

आचार्य अभिव्रतानन्द अवधूत

आनन्द प्रिन्टर्स ३/१सि, मोहनवागान लेन,

कलिकाता- ७०० ००४

अनुवादक:

आचार्य पुणेशानंद अवधूत

मूल्य : ११०.०० रूपये मात्र

अनुक्रमणिका

ISBN 978-81-89718-27-5

प्रस्तावना

व्यष्टिक जीवन का एक मात्र लक्ष्य है परमात्मा प्राप्ति किन्तु व्यष्टि समाज पर निर्भर है इसलिए समाज में व्यष्टि की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आवश्यकताओं की सुव्यवस्था आवश्यक है, समाज के प्रत्येक व्यष्टि की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति अनिवार्य है तभी समाज अध्यात्म में प्रगति कर सकता है। कहा जाता है, "भूखे पेट भजन न होइ गोपाला, लेलो अपना कण्ठी – माला।" यह सच है किन्तु अपना अंतिम लक्ष्य कभी भी भूलने से नहीं चलेगा।

अनुक्रमणिका

इसीलिए एक सुदृढ़ समाज के लिए श्री प्रभात रंजन सरकार ने आध्यात्मिक दर्शन, अध्यात्म साधना पद्धति, सामाजिक दृष्टिकोण, सामाजिक – आर्थिक सिद्धान्त, त्रिशास्त्र (दर्शन शास्त्र, समाज शास्त्र, धर्म शास्त्र) और गुरु तत्त्व का प्रावधान दिया है। इसी संदर्भ में सामाजिक आर्थिक सिद्धान्त के रूप में प्रउत (प्रगतिशील उपयोग तत्त्व) सभी प्रकार की सामाजिक समस्याओं का समाधान है।

प्रस्तुत पुस्तक Prout in nut shell नाम से अंग्रेजी में पूर्व प्रकाशित २१ खण्डों में से १३, १४, १५ खण्डों का हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक आचार्य पुण्येशानन्द अवधूत हैं तथा संपादन कार्य में आचार्य रुद्रशिवानन्द अवधूत और आचार्य उत्यागानन्द अवधूत और आचार्य प्रतापादित्यजी का योगदान सराहनीय रहा इसके लिए प्रकाशक की ओर से कोटिशाः धन्यवाद !

अनुक्रमणिका

आशा है यह श्री प्रभात रंजन सरकार के अनुसार 'सर्वजन हितार्थ सर्वजन सुखार्थ प्रचारितम्" को चरितार्थ करेगी !

रोमन संस्कृत वर्णमाला

विभिन्न भाषाओं का ठीक - ठीक उच्चारण करने के लिए तथा द्रुतलेखन के प्रयोजन को समझकर निम्नलिखित पद्धति से रोमन संस्कृत वर्णमाला का प्रवर्त्तन किया गया है

অ	আ	ই	ঈ	উ	ঊ	ঋ	ৠ	ঌ	ৡ	এ	ঐ	ও	ঔ	অং	অঃ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
a	á	i	ii	u	ú	r	rr	lr	lrr	e	ae	o	ao	aḿ	ah

अनुक्रमणिका

ক খ গ ঘ ঙ চ ছ জ ঝ ঞ

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ

ka kha ga gha uṋa ca cha ja jha iṋa

ট ঠ ড ঢ ণ ত থ দ ধ ন

ट ठ ड ढ ण त थ द ध न

t́a t́ha d́a d́ha ńa ta tha da dha na

প ফ ৰ ভ ম

प फ ब भ म

Pa pha ba bha ma

য র ল ব

य र ल व

ya ra la va

শ	ষ	স	হ	ক্ষ
श	ष	स	ह	क्ष
sha	śa	sa	ha	kśa

অঁ	জ্ঞ	ঋষি	ছায়া	জ্ঞান	সংস্কৃত	ততোঽহং
अँ	ज्ञ	ऋषि	छाया	ज्ञान	संस्कृत	ततोऽहं
aṋ	jiṋa	rśi	cháyá	jiṋána	saḿskrta	tato’haḿ

a á b c d d́ e g h i j k l m ḿ
n ń ṋ o p r s ś t t́ u ú v y

समग्र विश्व में बहुत प्रचारित रोमन लिपि के २९ अक्षर मात्र से संस्कृत भाषा का ठीक - ठीक उच्चारण किया जाना सम्भव है। इसमें युक्ताक्षर का भी झमेला नहीं है। अरबी , फारसी और अन्यान्य f, q , gh , z , प्रभुति अक्षरों का प्रयोजन रहता है , संस्कृत में नहीं। शब्द के मध्य या शेष

में ' ড ' , ' ঢ ' यथाक्रम ' ड़ ' और ' ढ़ ' ' रूप में उच्चारित होते हैं । ' য ' (जहाँ ' য ' का उच्चारण ' इ ' , ' अ ' होता है) के समान वे भी कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं हैं । प्रयोजन के अनुसार और असंस्कृत शब्द लिखने के समय ŕa और ŕha व्यवहार किया जा सकता है ।

गैर- संस्कृत शब्द लिखने के लिए दिए गए दश अतिरिक्त अक्षर

ক়	খ়	জ়	ড়	ঢ়	ফ়	য়	ল়	ৎ	অঁ
क़	ख़	ज़	ड़	ढ़	फ़	य़	ल़	त्	अँ
qua	qhua	za	ŕ	ŕha	fa	ya	lra	t	aṋ

अनुक्रमणिका

खण्ड १३

समाज का महत्त्व

प्रउत की आर्थिक व्यवस्था की कुछ विशेषताएँ

त्रि-स्तरीय पूँजीवाद

सामाजिक-आर्थिक वर्गीकरण

भाषा के मूल तत्व

भाषा समस्या

सामाजिक-आर्थिक आन्दोलन

जनसंख्या वृद्धि एवं नियन्त्रण

नारी के अधिकार

प्रउत के पाँचवे मौलिक सिद्धान्त की विशेषता

आर्थिक गतिशीलता

खण्ड १४

जन्मजात प्रतिभावान एवं तकनीक विद्

अणुमानस का सतत् प्रसारित प्रक्षेत्र

वास्तविकता एवं बौद्धिकता

मनुष्य का आदर्श

माइक्रोवाइटा (अणुजीवों) – सम्भावित प्रभाव

माइक्रोवाइटा - रासायनिक सूत्रों मे परिवर्तन

गणतन्त्र का विभागीकरण

गणतन्त्र एवं गोष्ठीतन्त्र

अनुक्रमणिका

सहकारी व्यवस्था

कृषि उत्पादन की पद्धतियाँ

प्रश्नोत्तर - ३

खण्ड १५

प्रउत की विचारधारा

पिछड़े वर्ग का उत्थान

सामाजिक अर्थ नैतिक परियोजनाओं के कतिपय पहलू

आर्थिक मंदी

भू-क्षरण और वृक्षारोपण

आदर्श नेतृत्व

उन्नयन परियोजना

गणहनन

सामंतवाद एवं जमीदारी प्रथा

साम्यवाद

कणिका में प्रउत

(खण्ड १३)

समाज का महत्त्व

"समानं एजति इति समाजः।" एक ही लक्ष्य की ओर व्यष्टि समूह की सामूहिक गति को समाज कहते हैं।

सभी लोग जब सर्व सम्मति से निर्णय करते हैं कि वे लोग एक साथ चलेंगे, सुख-दुःख में एक साथ रहेंगे, तब उन सभी की सामूहिक गतिशीलता का नाम समाज है। कुछ लोग काफी आगे बढ़ गये हैं, कुछ लोग पीछे छूट गये हैं, कोई पैर में दर्द होने के कारण चल नहीं पा रहे हैं, कोई औधें मुँह गिरे पड़े हैं। उन लोगों की ओर बिना देखे, जो आगे बढ़ गये हैं, वे समाज के सदस्य कहलाने के योग्य नहीं हैं। सभी लोगों को साथ लेकर चलना होगा तब आगे बढ़ने के दौरान, प्रत्येक सदस्य को समाज के

दूसरे हर एक सदस्य के प्रति, एक विशेष जिम्मेदारी का बोध होना चाहिए। जो लोग चलने में असमर्थ हैं उन्हें भी सहारा देकर या कन्धों में उठाकर साथ लेकर चलना होगा, जिससे सभी के एक साथ चलने की सामूहिक गति के छन्द में एकरूपता बनी रहे।

वर्तमान में हम लोगों को इस दुनिया में, सभी कुछ को सौर-मंडल के परिपेक्ष्य में ही नहीं, वरन् विश्वब्रह्माण्ड के परिपेक्ष्य में देखना होगा। आगे भविष्य में दूसरे ग्रहों-उपग्रहों में से जहाँ पर भी जितने लोग रह रहे हैं उन लोगों को भी साथ लेकर हम लोगों को समाज रचना करनी है। अन्ततः आज के दिन से ही इस पूरी दुनिया को (पृथ्वी को) एक अखण्ड भाव से अपनाना होगा।

हम लोग आज देखते हैं कि धन की बहुलता एवं विपुलता के प्रवाह में, जहाँ कुछ घरों के लोग, भोग-विलास के आकण्ठ में डूबे हुए हैं, वहीं दूसरे कुछ लोग भोजन के अभाव में भूखे मर

रहे हैं। समाज के एक हिस्से को जहाँ सभी सुविधायें एवं स्वतन्त्रता प्राप्त है, वहीं करीब ८०% आबादी गरीबी व अभाव से त्रस्त हैं। एक हिस्सा जो चाहता है, बेरोक-टोक करता जा रहा है, किन्तु दूसरा हिस्सा यदि भूल से भी कोई गलती करता है, तो समाज उसके साथ अत्यन्त कठोर रूप से पेश आता है। इस तरह का दोहरा व्यवहार स्वीकारा नहीं जा सकता है। अपने साथ लेकर आगे बढ़ने की सामर्थ्य अर्जित करनी होगी और अपने को इस हेतु पूरी तरह से तैयार करना होगा।

कुछ दिनों पहले ही मैंने कहा था। त्रिविध भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक "त्रिविध दुःखस्य आत्यन्तिकी निवृतिः परमार्थः"।

अर्थात, जिसकी सहायता से दुःख दूर होते हैं उसे अर्थ कहते हैं। जैसे कपड़े नहीं होने से ठंड लगती है, भोजन नहीं होने से भूख का कष्ट महसूस होता है, किन्तु यदि रुपये पास में हो तो

रुपयों से कपड़े एवं भोजन खरीद कर के शीत व क्षुधा की पीड़ा से मुक्त हुआ जा सकता है। इसीलिए संस्कृत में रुपये पैसों (धन) को अर्थ कहते हैं। किन्तु वह परमार्थ नहीं है। जिसके द्वारा दुःख एक बार समाप्त होने पर पुनः फिर कभी नहीं होते हैं उसे परमार्थ कहते हैं। रुपये-पैसों से भोजन खरीद कर खाने के बाद दूसरे दिन पुनः क्षुधा का कष्ट बोध होगा ही। इसलिए रुपया-पैसा. धन-दौलत आदि अर्थ है, परमार्थ नहीं। परमार्थ उसे कहते हैं, जिस-से त्रिविध दुःखों से आत्यन्तिकी निवृत्ति हो जाय। मनुष्य के त्रिविध दुःख हुए जागतिक, मानसिक, आध्यात्मिक अथवा आधिभौतिक आधिदैविक, और आध्यात्मिक। भौतिक जगत में अन्न कपड़ा आदि के अभाव जैसे जितने भी दुःख हैं, वे सब आधिभौतिक व भौतिक दुःख हुए। अर्थ द्वारा इन दुःखों को किसी हद तक दूर किया जा सकता है ? थोड़े समय के लिए तो इन दुःखों से छुटकारा मिल जाता है, किन्तु दूसरे ही दिन में सभी दुःख पुनः वापस आ जाते हैं। इसलिए स्थायी रूप से दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने हेतु परमार्थ की आवश्यकता है।

परमार्थ की सहायता से लोग इस तरह की सामाजिक व्यवस्था निर्मित करेंगे जिसमें मनुष्य को किसी भी समय अन्न-वस्त्रादि का अभाव नहीं होगा, अर्थात् सामाजिक व्यवस्था में एक मूलभूत परिवर्तन, एक Rudimental change लाना होगा। इस कार्य को करने के लिए जो व्यक्ति आगे आयेंगे उन्हें, क्या करना होगा? इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्हें साधारण व्यक्ति की अपेक्षा अत्यधिक शक्ति अर्जित करनी होगी। उदाहरणार्थ घने जंगल के बीच में से जो व्यक्ति पहले-पहल गाड़ी लेकर जायेगा, उन्हें जंगल को काट-छाँट कर पहले रास्ता तैयार करना होगा तभी वे आगे बढ़ सकेंगे किन्तु पीछे आनेवाले लोग बिना जंगल काटे, बिना रास्ता बनाए, बड़ी ही आसानी से गाड़ी चलाते चले जायेंगे।

मानसिक दुःख किस तरह के हैं? मान लीजिए कि हम लोगों ने अपने सभी संसारिक दुःखों को पूर्ण रूपेण दूर कर लिया

है। प्रउत दर्शन की रचना ही इसी उद्देश्य से की गयी थी, जिससे लोगों के सांसारिक दुःख दूर हो एवं परमार्थ की प्राप्ति हो। मैंने कहीं नहीं कहा है, कि सभी लोगों को पर्याप्त रुपये पैसे दे दो। मैंने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति की क्रयक्षमता बढ़ा दो। चावल का मूल्य २०० रु. प्रति किलो ग्राम होने से भी कोई कष्ट नहीं है यदि प्रत्येक मनुष्य की दैनिक आमदनी १००० रुपये हो जाय। इसलिए ज्यादा वेतन पान्त्र या कम वेतन पाना बड़ी बात नहीं हैं। मुख्य बात है पर्याप्त क्रयक्षमता का होना। यदि प्रत्येक व्यक्ति के पास पर्याप्त क्रयक्षमता हो जायेगी तो फिर उसे पुनः सांसारिक दुःखों की पीड़ा नहीं भोगनी होगी। भौतिक दुःख सब समाप्त हो जायेंगे। किन्तु इसके बाद भी आधिदैविक या मानसिक दुःख तो रहेंगे ही।

तब भी शोक है, दुःख है, मान है और अपमान है। किसी प्रिय व्यक्ति कि मृत्यु से उत्पन्न वियोग जन्य दुःख क्या है ? अर्थात् ये आधिदैविक दुःख तो बचे ही रहते हैं। इन आधिदैविक

दुःखों से बचने के लिए सही एवं समुचित शिक्षा एवं मानसाध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता है। जिससे वह अपने मन को अच्छी तरह से तैयार कर सके एवं विपरीत परिस्थिति के विरुद्ध संघर्ष कर सके। तुम लोगों में से जिन्होंने इसको अच्छी तरह से समझ लिया है उन्हें इसके लिए अच्छे ढंग से तैयार होना होगा।

किन्तु खुद को इस हेतु तैयार करने में जितनी शक्ति अर्जित करने की आवश्यकता है, उससे भी ज्यादा शक्ति अर्जित करनी होगी। क्योंकि जिनमें यह समझ नहीं है, समझने की सामर्थ्य नहीं है, जो कम समझदार हैं, वे भी तो हमारे सम्बन्धी, आत्मीय मनुष्य हैं और पृथ्वी में हम लोगों से उनका सम्बन्ध अत्यन्त निकट का है। उनकी सहायता करने के उद्देश्य से ही आवश्यकता से भी कुछ ज्यादा शक्ति अर्जित करोगे। ऐसा नहीं करने से हम लोग उनकी सहायता नहीं कर सकेंगे।

अनुक्रमणिका

जैसे भारत की स्थिति को ही देखिए हम लोगों को जितना उन्नत होना चाहिए था, उतना उन्नत हम लोग नहीं हो सके। इसका कारण है कि समाज की आधी जनसंख्या अर्थात् औरतों को घरों के भीतर कैद करके रखा गया था। जिससे केवल पुरुषों की आधी आबादी ही उन्नति का सुयोग प्राप्त कर सकी। पुरुषों की आधी आबादी आगे बढ़ रही है और औरतों की आधी आबादी घरों के भीतर कैद होने से बाहरी दुनिया के ज्ञान-विज्ञान से अनभिज्ञ है। परिणामतः पुरुषों की आधी आबादी को औरतों की आधी आबादी का भार देते हुए आगे बढ़ना पड़ रहा है, जिसके कारण ही भारतीय समाज आगे नहीं बढ़ पा रहा है। नारी भी अपने सामर्थ्य से पुरुषों के समान ही आगे बढ़े। चलते-चलते यदि उसके पैरों को कभी दर्द होने लगे, यदि कहीं औंधे मुँह गिर पड़े तब उसे कन्धों पर उठा कर चलना होगा। और केवल औरत ही क्यों मुँह के बल गिर पड़ेगी, कि उसे उठाकर ढोना पड़ेगा ? पुरुष भी तो इसी तरह गिर सकते हैं। तब औरतों का कर्तव्य होगा कि उन्हें उठाये और उनका बोझ अपने कन्धों

पर लेकर उन्हें साथ लेकर आगे बढ़ते चलो। यह उचित नहीं है कि पुरुषों के समक्ष महिलाएँ चिरकाल तक केवल इसी स्तर में बनी रहें। महिलाओं की स्थिति में तब्दीली होकर वह पुरुषों की स्थिति में पहुँच सकती हैं। महिलाओं का पुरुषों के साथ subordinated co-operation के स्थान पर co-ordinated co-operation को बढ़ावा देने से ही 'समानम् एजति' का भाव चरितार्थ होगा। इस दुनिया में सबको साथ लेकर चलने के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता है।

मानसिक क्षेत्र में भी यही सब करना होगा। जिनमें समझ-बूझ है उन्हें और ज्यादा समझा-बुझा देना होगा जिससे हम सभी लोग मिलजुल कर उन लोगों की भी सहायता कर सके जिनमें जानने-समझने की थोड़ी भी सामर्थ्य नहीं है। तीसरा दुःख आध्यात्मिक दुःख हुआ। आध्यात्मिक दुःख क्या है? प्रत्येक मनुष्य मुँह से चाहे कितनी भी बड़ी-बड़ी बातें बोले, किन्तु मन-ही-मन वह जानता है कि वह ईश्वर की सन्तान है और ईश्वर उसे

देख रहे हैं। वे हमेशा ही यह जानते हैं कि वे कभी भी अकेले नहीं है। वे यदि बहुत बड़े नास्तिक हैं, तो भी आपद-विपद में मन-ही-मन भगवान मुझे बचाइए की गुहार जरूर लगाते हैं। इसलिए कोई यदि मुँह से यह बोले; कि भगवान को नहीं मानता हूँ तो जान लोगे कि वह कपटाचारी है, अपने मन की बात को प्रकट नहीं करता है। कपटाचारी को प्रोत्साहन देना कदापि उचित नहीं है। सभी मनुष्य जानते हैं कि भगवान उसके हैं और वह भगवान का है। इस सत्य को जानने के बावजूद भी वह पूरा का पूरा उनका होकर उनको अपना नहीं पाता है। उनको न प्राप्त कर पाने का जो यह दुःख है, उसी को आध्यात्मिक दुःख कहते हैं और इस आध्यात्मिक दुःख से छुटकारा केवल आध्यात्मिक साधना ही दिला सकती है। इस आध्यात्मिक साधना की चरम एवं परम स्थिति भक्ति हुई ज्ञान हो या न हो, बुद्धि हो या न हो, पर भक्ति होने से ही काम हो जायेगा।

अनुक्रमणिका

बहुत लोग जानते हैं कि चैतन्य महाप्रभु के पास एक बहुत बड़े भक्त पवन हरिदास थे। पवन हरिदास बहुत ही उच्च कोटि के भक्त थे, किन्तु उनका जन्म सामाजिक मान्यता के अनुसार बहुत ही नीची जाति में हुआ था। महाप्रभु जब भी कीर्तन करते थे तब-तब वे पवन हरिदास को जान-बूझकर छू लेते थे। जाड़े की उस ठण्डी रात में भी गौड़ देश के पोंगा पण्डित लोग चैतन्य महाप्रभु को तुरन्त गंगा स्नान करने का आदेश इस निर्देश के साथ देते थे कि गंगा स्नान न करने तक महाप्रभु को घर में प्रवेश वर्जित रहेगा। महाप्रभु को उस जाड़े की ठण्डी रात में गंगा स्नान करना पड़ता था। कितनी कष्टदायक स्थिति थी, हरिदास कहते थे ठाकुर, तुम मुझे क्यों छूते हो। इस ठण्डी रात में तुम्हें स्नान करने से कितना कष्ट होता है। महाप्रभु तब भी उनको छू देते। इसके बाद हरिदास महाप्रभु से दूर बैठते जिससे महाप्रभु फिर से मुझे छून सकें। किन्तु जब, महाप्रभु उन्हें फिर भी छूने की चेष्टा करते, तो हरिदास दौड़कर और दूर भागने की कोशिश करते। महाप्रभु की उम्र उस समय मात्र २० वर्ष की थी। तब

हरिदास की उम्र ज्यादा थी, इसलिए महाप्रभु उन्हें दौड़ कर छू लेते थे। इससे महाप्रभु को फिर से गंगा स्नान करना होता था। इसके बाद हरिदास ने एक दिन द्रवित होकर रोते-रोते कहा प्रभु हमको क्यों छूते हो ? इससे आपको क्या लाभ मिलता है। आपको जाड़े की ठण्डी रात में स्नान करने पर कितना कष्ट होता है ?

'प्रभु क'न तोमा स्पर्शि पवित्र होइते ।
भक्ति बले पारो तुमि ब्रह्माण्ड सहिते ।।"

महाप्रभु बोले, तुम इतने बड़े भक्त हो, तुममें इतनी भक्ति है कि मैं खुद को पवित्र करने के लिए ही तुम्हे छूता हूँ। तुम्हारे अन्दर इतनी शक्ति है कि तुम पूरे विश्व ब्रह्माण्ड को ही पवित्र कर सकते हो । भक्ति में इतनी शक्ति है। यह शक्ति ज्ञान में नहीं है। यह शक्ति कर्म में नहीं है, बल्कि ज्ञानी में एक ज्ञान होने का अहंकार के

कारण साधारण लोग भयभीत होकर ही ज्ञानी से दूरत्व बना कर रखते हुए कहते हैं कि बाप रे बाप! कितने बड़े पण्डित हैं, उनके पास कैसे जा सकूँगा। किन्तु भक्त से कोई कभी भी इस तरह भयभीत नहीं रहता है। सोचता है वे भक्त व्यक्ति है उनके पास जाकर थोड़ा बैठूं। भक्त की संगति से हजारों-हजार लोग, लाखों-लाख लोग वास्तविक परमार्थ की प्राप्ति करेंगे और आध्यात्मिक बन्धन से मुक्त होंगे। इस बात को मन में बनाए रखनी चाहिए; कि आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के बन्धनों से मुक्त होने के लिए जितने भी परमार्थ हैं, उन सभी को इस ढंग अर्जित करना होगा जिससे पीछे रह गये लोग भी उससे लाभान्वित हो सकें।

संध्या नवम्बर - १९७८

कलिकाता

अनुक्रमणिका

प्रउत की आर्थिक व्यवस्था की कुछ विशेषताएँ

प्रउत की अर्थव्यवस्था की अनेक विशेषताएँ हैं। इन में हैं न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति क्रयशक्ति का बढ़ते जाना, सहकारिता, उद्योग का विकाश आर्थिक विकेन्द्रीकरण और विकाश योजनाएँ। व्यापार और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में प्रउत की अपनी विशिष्टताएँ हैं।-

"न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ-साथ क्रय क्षमता की भी सुनिश्चितता"

प्रउत प्रत्येक व्यक्ति के जीवन रक्षा की न्यूनतम आवश्यकताओं तथा भोजन, वस्त्र, आवास, चिकित्सा और शिक्षादि प्राप्ति की सुनिश्चितता का प्रबल समर्थक है। न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो अतिरिक्त सम्पत्ति बचेगी, उसे विशेष कुशल एवं गुणी व्यक्तियों, यथा चिकित्सक, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, आदि के बीच में वितरित कर दिया जायेगा, क्योंकि समाज के सामूहिक उन्नति में इन लोगों की विशेष भूमिका रहती है।

लोगों के न्यूनतम आवश्यकताओं की इस मात्रा में प्रगतिशील रूप से वृद्धि करते रहना होगा, जिससे जन-साधारण का जीवन स्तर क्रमशः बढ़ता रहे।

न्यूनतम आवश्यकताओं की सुनिश्चित आपूर्ति 'समान वितरण का सिद्धान्त' एक मिथ्या कल्पना है और यह सीधे सक्ल जन साधारण को ठगने का एक चतुरता पूर्ण नारा मात्र है।

अनुक्रमणिका

प्रउत इस सिद्धान्त को त्याग करके आर्थिक सम्पदा के विवेक पूर्ण वितरण की नीति को लागू करने की वकालत करता है। विवेक पूर्ण वितरण की इस व्यवस्था में उत्पादन वृद्धि हेतु आर्थिक एवं अन्य तरीके से, प्रोत्साहन (incentive) प्रदान किया जायेगा।

इस नीति को व्यावहारिक धरातल पर लागू करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति की क्रय क्षमता में सतत् बढ़ोत्तरी करने का सूत्र प्रउत की आर्थिक नीतियों में समाहित है। क्योंकि आज विश्व के बहुत से अनुन्नत, उन्नतशील एवं उन्नत देशों में जन साधारण की क्रय क्षमता की उपेक्षा से उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होते-होते संकट पूर्ण परिस्थिति की ओर तेजी से बढ़ रही है। आम जनता की क्रय क्षमता में वृद्धि करने हेतु सर्वप्रथम, भोग-विलास की वस्तुओं के उत्पादन को अत्यन्त कम करके, मानव जीवन की अत्यावश्यक वस्तुओं के उत्पादन को सबसे ज्यादा करना होगा। यह व्यवस्था उत्पादन एवं उपभोग में सामञ्जस्य स्थापित

करके जन साधारण की आवश्यकताओं की आपूर्ति को सुनिश्चित करेगी।

सहकारी व्यवस्था – प्रउत के अनुसार उत्पादन एवं वितरण की सभी पद्धतियों में से सहकारी पद्धति सर्वोतम है। नैतिकवादियों द्वारा संचालित सहकारी व्यवस्था ही लोगों को पूँजीवादी शोषण के साथ दूसरे सभी शोषणों से बचा सकती है। सहकारी व्यवस्था में दलाल या विचौलियों की कोई भूमिका नहीं होती है। वर्तमान समय में दुनिया के बहुत से देशों में सहकारी व्यवस्था के सफल न होने का कारण यह है, कि पूँजीवादी शोषकों ने अपने शोषण को बनाए रखने के लिए भ्रष्टाचार का व्यापक जाल फैला रखा है।

सहकारी संस्थानों का गठन उन्हीं जनसमूहों के मिलित श्रम व बुद्धि से होता है जिनका निवास एक जैसी आर्थिक संरचना में, एक जैसी आवश्यकताओं को लेकर, सहकारिता

आधारित उत्पादित वस्तुओं के बाजार का होना। इन तीन तत्त्वों के एक साथ न होने से सहकारी व्यवस्था का विकाश नहीं हो सकता। सहकारी व्यवस्था के ठीक तरह से संचालित होने से सहकारी संस्थानों से व्यक्तिगत स्वामित्व के सभी दोष तो दूर हो ही जाएँगे, साथ ही वैज्ञानिक तौर-तरीकों के प्रयोग से उत्पादन में बढ़ोत्तरी भी सम्भव हो सकेगी।

सहकारी उद्योगों की सफलता, नैतिकता, सक्षम व कुशल प्रशासन तथा आमजनता के मन में सहकारी व्यवस्था के प्रति पूर्ण आत्म स्वीकृति इन तीन तत्त्वों पर निर्भर करती है।

इन तीन तत्त्वों के आपसी तालमेल में जिस अनुपात में वृद्धि होती जायेगी, सहकारी व्यवस्था की वृद्धि भी तदानुपातिक होती जायेगी। जन साधारण को सहकारी संस्थानों के निर्माण के प्रति उत्साहित करने हेतु आदर्श सहकारी संस्थानों का गठन करना होगा तथा सहकारी व्यवस्था के लाभ के सम्बन्ध में भी लोगों

को शिक्षित करना होगा। सहकारी व्यवस्था में उत्पादन एवं वितरण, दोनों ही में अत्याधुनिक तकनीक का प्रयोग करना होगा। उपयुक्त आधुनिकीकरण से उत्पादन में वृद्धि होगी।

सहकारी व्यवस्था में प्रबन्धकों का निर्वाचन सहकारी व्यवस्था के अंशधारकों के बीच से ही करना होगा। किसी कृषि सहकारी संस्था के सदस्य गणों को दो तरह का लाभांश प्राप्त होगा। पहला उस सहकारी संस्थान को उन्होंने जितनी जमीन प्रदान की है, उस जमीन के अनुपात से, दूसरा उत्पादन में उनके द्वारा किये गये शारीरिक व मानसिक श्रम के आधार पर। लाभांश वितरण के समय कुल उत्पादित द्रव्य को दो भागों में आधा-आधा बाँटना होगा तथा प्रथम आधा यानि ५०% उत्पादित द्रव्य में से क्षम अंशधारकों को वेतन तथा शेष ५०% में से भूमि अंशधारकों को लाभांश प्रदान करना होगा।

एक किसी विशेष अञ्चल के बदले सभी अञ्चलों की विकाश योजनाओं में उस अञ्चल की स्थानीय सम्पत्ति एवं अन्य क्षमताओं को समायोजित करना होगा। इस तरह सहकारी उद्योग के विकाश में, क्षेत्रीय लोगों के योगदान को प्रथम वरीयता दी जायेगी।

सहकारी कृषि व्यवस्था लागू करने के दौरान बहुचर्चित भूस्वामित्व विवाद का एक आदर्श समाधान प्रउत ने बतौर विकल्प भूमि के बहुस्तरीय सामाजीकरण के रूप में प्रस्तुत किया है। स्थानीय परिक्षेत्र की भू आर्थिक अवस्था के साथ तालमेल बिठाकर क्रमिक रूप से इस सामाजीकरण को चरितार्थ करना होगा। इस प्रकिया के दौरान भूमि का मालिकाना हक किसी भी व्यक्ति विशेष या समूह के पास होना उचित नहीं है।

औद्योगिक विकाश प्रउत ने औद्योगिक उत्पादन की व्यवस्था को तीन भागों में विभाजित किया है मूल उद्योग-

अनुक्रमणिका

जिसका संचालन एवं प्रबन्धन स्थानीय व क्षेत्रीय सरकार द्वारा किया जाएगा, मध्यम उद्योग, जिन्हें सहकारी व्यवस्था द्वारा सञ्चालित किया जाएगा ने तथा लघु उद्योग जिन का स्वामित्व व्यक्तिगत हाथों में रहेगा। कौन से उद्योग सहकारी नियन्त्रण एवं कौन-कौन उद्योग व्यक्तिगत नियन्त्रण में रहेंगे, इसे लेकर यहाँ किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं रहेगा और सहकारी नियंत्रण एवं व्यक्तिगत नियन्त्रण वाले शिल्प पास-पास नहीं रहेंगे। दुनिया के बहुत से देशों में कृषि पर लोगों की बढ़ रही अत्यधिक भीड़ के दबाव को कम करने पर प्रउत विशेष जोर देता है। किसी भी परिस्थिति में ४५% से ज्यादा लोगों को कृषि कार्यों में नियोजित करना कदापि उचित नहीं है। छोटे-छोटे शहरों एवं ग्रामाञ्चलों में प्रर्याप्त संख्या में कृषि आधारित व कृषि सहायक उद्योगों की स्थापना करना उचित है। केवल इतने से ही नहीं होगा, बल्कि कृषि को उद्योग का दर्जा भी प्रदान करना होगा, जिससे कृषि श्रमिक भी समझ सके कि उनके श्रम का मूल्य कितना है। प्रउत की मजदूरी नीति के अनुस श्रम के बदले, जो मजदूरी प्राप्त होती

है, वह केवल रुपये के माध्यम से ही ली जायेगी, ऐसा नहीं, बल्कि अत्यावश्यक वस्तुएँ सेवाओं के एवज में भी प्राप्त की जा सकती है। मजदूर में प्राप्त होने वाले रूपयों की वृद्धि के साथ-साथ रूपयों के बदले प्राप्त होनेवाली अत्यावश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं में भी क्रमशः बढ़ोत्तरी होनी उचित है।

प्रउत, कृषि और उद्योगों के ज्यादा-से-ज्यादा आधुनिकीकरण का समर्थन करता है। इस लक्ष्य को यथोचित वैज्ञानिक तकनीकी के प्रयोग से प्राप्त किया जायेगा। देखना होगा, कि आधुनिकीकरण एवं मशीनी करण से बेरोजगारी की समस्या न बढ़ने पावे। यह हमेशा लक्ष्य होगा कि जन साधारण को शत-प्रतिशत (१००%) रोजगार मिले। जो पूँजीवादी व्यवस्था में पूर्णतया असम्भव है। प्रउत की सामूहिक अर्थव्यवस्था में आधुनिक तकनीकी का प्रयोग करके, जिस तरह उत्पादन बढ़ाया जाएगा, उसी प्रकार काम के घण्टों को कम करके सभी को रोजगार देना भी सम्भव होगा।

अनुक्रमणिका

विकेन्द्रीकरण - उपरोक्त, जिस अर्थ नैतिक संरचना की बात कही गई है- उसे चरितार्थ करने हेतु, एक विकेन्द्रित नयी अर्थनीति की परियोजना दी गई है। प्रउत, पूरी दुनिया में विभिन्न सामाजिक आर्थिक समाज की स्थापना की पैरवी करता है। इन सभी क्षेत्रीय सामाजिक आर्थिक इकाइयों (समाज) का गठन एक जैसी आर्थिक समस्या, एक तरह की आर्थिक क्षमता एवं संसाधन, नस्लीय समानता, एक जैसा ही सामाजिक सांस्कृतिक भाव बंधन यथा-भाषा, सांस्कृतिक विशिष्टता आदि के आधार पर निर्मित सांस्कृतिक विरासत सहित उपरोक्त सभी तत्त्वों के आधार पर होता है। प्रत्येक सामाजिक आर्थिक इकाई समाज को अपनी आर्थिक योजना बनाने एवं उसे लागू करने के तौर-तरीके के प्रयोग की पूरी स्वतन्त्रता होगी। प्रत्येक सामाजिक आर्थिक इकाई (समाज) की (एक) विकेन्द्रित योजना होगी, जिसे प्रउत की भाषा मे प्रखण्ड स्तरीय योजना कहा जाता है।

प्रउत की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में प्रखण्ड स्तरीय योजना परिषद ही योजना निर्माण की सबसे निम्न स्तरीय संस्था होगी।

प्रउत की संरचना में एक राजनैतिक क्षेत्र यथा-राज्य प्रदेश देश में साधारणतया एक से ज्यादा सामाजिक आर्थिक इकाइयाँ (समाज) रहेंगी। उदाहरणार्थ भारत के बिहार प्रान्त में अंगिका, मगही, मैथली, भोजपुरी एंव नागपुरी जैसी पाँच सामाजिक आर्थिक इकाइयाँ निर्मित की जा सकती हैं। उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर पूरे भारत वर्ष को ४४ सामाजिक, आर्थिक इकाइयों (समाजों) में विभाजित किया जा सकता है। इन इकाइयों को सम्पूर्ण आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए इन इकाइयों (समाज) को अपनी योजनाओं एवं नीतियों को लागू करने की स्वतन्त्रता सुनिश्चित होनी उचित है।

यदि ये सामाजिक आर्थिक इकाइयाँ अपने सामाजिक-सर्वाङ्गिक कार्य योजना शुरु कर दें तो इससे पूरे भारत में एक

व्यापक रूप से सामाजिक आर्थिक जागरण होने लगेगा। पूरी आम जनता, क्या धनी, क्या गरीब, क्या युवा, क्या वृद्ध, क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित, सभी लोग शोषण विरोधी भाव धारा से प्रभावित होकर, सामाजिक, आर्थिक आज़ादी प्राप्त करने के लिए एक शक्तिशाली आन्दोलन शुरु कर देंगे। जो लोग एक ही सामाजिक आर्थिक इकाई में निवास करते हैं यदि वे लोग अपने व्यक्तिगतस्वार्थ को समष्टिगत सामाजिक आर्थिक स्वार्थ के साथ, एक कर दें, तो उस इकाई की आर्थिक, सम्पत्ति का बाहर जाना बन्द हो जाएगा एवं साथ-ही-साथ शोषण का समूल नष्ट होना भी सम्भव हो जायेगा।

प्रउत की आर्थिक व्यवस्था में, क्षेत्रीय लोगों को शत-प्रतिशत रोजगार का अधिकार सुनिश्चित रहेगा। रोजगार हेतु, बाहर से आये हुए लोगों की तुलना में स्थानीय लोगों को प्रथम वरीयता प्राप्त होगी। जहाँ उपयुक्त ढंग से आर्थिक विकाश नहीं हो पाता वहाँ श्रमिकों की अधिकता उत्पन्न होती है। वस्तुतः

अनुक्रमणिका

प्रत्येक अविकशित और्थिक क्षेत्र में श्रमिकों की बहुलता होती है। यदि एक आर्थिक क्षेत्र के अतिरिक्त, श्रमिक लोग रोजगार की तलाश में किसी दूसरे आर्थिक क्षेत्र (इकाई) में चले जाते हैं, तो वह श्रम बाहुल्य क्षेत्र हमेशा के लिए अविकशित ही रह जाएगा। जहाँ, श्रमाधिक्यता है, वहाँ अतिरिक्त श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने की व्यवस्था अविलम्ब करनी होगी। स्थानीय लोगों को रोजगार देने के समय, स्थानीय सेण्टी-मेण्ट के विषय में सोच-विचार कर लेना होगा। किसी भी सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) की क्षमता के आधार पर कृषि आधारित एवं कृषि सहायक उद्योगों की स्थापना करनी होगी। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र (इकाई) की सामूहिक आवश्यकताओं के आधार पर दूसरे उद्योगों की स्थापना भी कर लेनी चाहिए। इस नीति से बड़ी संख्या में नये-नये रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे। रोजगार की इस पद्धति से स्थानीय लोगों का जीवन स्तर उन्नत होना सम्भव हो जाएगा।

अनुक्रमणिका

कृषि एवं उद्योगों का आधुनिकीकरण विकेन्द्रित सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में अत्यन्त ही सहजतापूर्वक किया जा सकता है, तथा उनसे उत्पादित वस्तुओं को बाजार में आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इसी तरह से यदि सभी सामाजिक आर्थिक क्षेत्र अपनी-अपनी सम्भावित आर्थिक क्षमता को विकशित कर लें तो विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त प्रति व्यक्ति आमदनी की विषमता कम होती जाएगी और अविकशित क्षेत्रों की आर्थिक अवस्था विकशित होते-होते विकशित आर्थिक क्षेत्रों के समतुल्य हो जाएगी। इस आर्थिक सम्पन्नता का उपभोग हर एक व्यक्ति कर सकेगा। तब प्रत्येक सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लेगा।

प्रउत की विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था की एक और भी लाजवाब विशेषता इसकी योजनाओं की नियामक नीति है। प्रउत के अनुसार कारगर आर्थिक योजनाएँ चार तत्त्वों,

उत्पादकता, उत्पादन मूल्य (लागत मूल्य) क्रय क्षमता एवं सामूहिक आवश्यकताओं पर आधारित है। योजनागत दूसरे सम्बन्धित तत्व प्राकृतिक संसाधन, भौगोलिक विशिष्टता, जलवायु, नदी-घाटी, यातायात, औद्योगिक क्षमताएँ, सांस्कृतिक परम्परा एवं सामाजिक परिवेश हैं।

आर्थिक योजनाओं की सुस्पष्ट नीति के अभाव एवं नाना प्रकार की संकीर्ण मनोभावों के फलस्वरूप भारतीय अर्थनीति आज लँगड़ी होकर गतिहीन हो गई है। मथुरा और बरौनी जैसी जगहों में बड़े-बड़े तेल परिशोधक कारखाने लगाये गये हैं, अथवा ऐसी ही बहुत सी दूसरे जगहों में भी बड़े-बड़े इस्पात उद्योग लगाये गये हैं। अभी तक उन सब स्थानों के १००० मील आस-पास इन सभी उद्योगों का कच्चा माल उपलब्ध नहीं है। उन सब स्थानों में सस्ती बिजली भी उपलब्ध नहीं है। इस राष्ट्रीय कार्यप्रणाली से केवल देश की सम्पत्ति और कार्य-क्षमता का अपव्यय ही नही हो रहा बल्कि इससे भारतीय

योजनाकारों की क्षमता एवं दूर दृष्टि का अभाव भी उजागर हो रहा है।

देश की यह आर्थिक अवस्था, ब्रिटिश राज की उस दास्तान को दोहरा रही है जब बंगाल का कच्चा जूट ग्रेट ब्रिटेन में डण्डी के जूट कारखानों में तैयार माल बनाने के लिए भेजा जाता था। बंगाल से कच्चे जूट की आपूर्ति बन्द होने के साथ-ही डण्डी के जूट कारखाने भी बन्द हो गये। यदि डण्डी के जूट कारखानों से विनिर्मित वस्तुओं की विक्री बंगाल में नहीं होती, तो डण्डी के जूट कारखाने नहीं चल सकते थे। मौजूदा बंगाल के मृतप्राय जूट कारखानों की ठीक वैसी ही अवस्था है। " बन्द जूट कारखानों का राष्ट्रीयकरण करना होगा।" "जूट कारखानों की ताला बन्दी खत्म करनी होगी" जैसे राजनैतिक नारे आजकल लगाये जा रहे हैं। इस दौरान ट्रेड यूनियन नेता लोग दोनों हाथों से धन बटोर रहे हैं और हजारों-हजार बेरोजगार श्रमिक अभाव, भूखमरी अकथनीय दुःख, तकलीफों में दिन व्यतीत कर रहे हैं।

अनुक्रमणिका

बंगाल में जितने जूट कारखाने हैं। जूट कारखानों को चलाने के लिए जितना कच्चा पटुआ आवश्यक है; बंगाल में उतना उत्पन्न नहीं होता है। परिणामतः उन जूट कारखानों को चालू रखने के लिए दूसरे क्षेत्रों से कच्चा पाट (जूट) आयात करना पड़ता है। यदि बंगाल के लोग इन जूट कारखानों को बचाना चाहते हैं तो स्पष्ट रूप से कुछ कठोर कदम उठाने ही होंगे। प्रथमतः इस क्षेत्र में उत्पादित कच्चे (पाट) जूट के उत्पादन के आधार पर जूट कारखानों की संख्या में कमी करनी होगी, एवं शेष कारखाना को बन्द करने की अपेक्षा दूसरी वस्तुओं के उत्पादन में उपयोग करना होगा। जो कारखाने चालू रहेंगे, उनमें जूट की दूसरी वस्तुओं का उत्पादन न करके केवल पाट सूता (जूट के धागे) का उत्पादन करना होगा। इस पाट सूता को सहकारी व्यवस्था के तहत् किसानों एवं जुलाहों के बीच वितरित कर देना होगा। यदि इस पद्धति को प्रयोग में लाया जाय, तो बंगाल में पाट सूता के पुर खपत के बावजूद, शेष बचे हुए पाट-सूता को दूसरे क्षेत्र में निर्यात कर सकेंगे यदि इस उद्योग का

विकेन्द्रीकरण किया जाय, तो इस पाट-सूता उद्योग से जो सम्पति निर्मित होगी, उससे स्थानीय लोगों के जीवनस्तर में उन्नति होने के साथ-साथ पाट व्यवसायियों के व्यापक शोषण से भी मुक्ति मिलेगी।

इसलिए, उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर, प्रत्येक सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (समाज) को अपने-अपने सामाजिक-आर्थिक आत्म निर्भरता हेतु विकाश योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन के प्रति सचेष्ट होना चाहिए। स्थानीय आर्थिक अवस्था के साथ विसंगतिपूर्ण बड़ी-बड़ी योजनाओं को बाहर से कदापि नहीं थोपना चाहिए। भारत सहित दुनिया के सभी देशों में केन्द्रित आर्थिक योजनाओं की नीति के अनुसार, प्रखण्डस्तरीय योजनाओं के आधार पर प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (समाज) हेतु एक सुव्यवस्थित योजना निर्माण की आवश्यकता है।

पुनः बंगाल का ही उदाहरण लीजिए। बाँकुड़ा पुरुलिया सहित समस्त पश्चिम राढ़ के लिए एक उपयोजना का निर्माण करना चाहिए तथा जलपाईगुड़ी कूचविहार, सिलीगुड़ी इत्यादि के लिए एक दूसरी उपयोजना निर्मित करना चाहिए। इसके अलावा, पूरे सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (समाज) हेतु भी प्रखण्ड स्तरीय योजनाओं का समुचित्त निर्माण करना चाहिए। इस तरह से आर्थिक केन्द्रीकरण फूलने-फलने के पूर्व ही समाप्त हो जायेगा। निश

व्यवसाय एवं वाणिज्य व्यवसाय वाणिज्य, कर व्यवस्था एवं बैंकिंग के क्षेत्र में भी प्रउत की अपनी बेजोड़ विशेषता है। सरकार व्यवसायी अथवा विभिन्न दलालों की मध्यस्थता को नकार कर, अत्यावश्यक वस्तुओं का वितरण सहकारी उपभोक्ता समितियों (Consumer coperative) के माध्यम से करना होगा। ऐसा करने से मुनाफाखोरी की बाजारी करतूतों को पनपने का कोई मौका नहीं मिलेगा। प्रउत के मतानुसार, सभी-

आत्मनिर्भर सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों (समाजों) के बीच यथा सम्भव पारस्परिक वाणिज्य -वस्तु विनमय के माध्यम से करना होगा। दैनिक जरूरत की चीजों को कर मुक्त करना होगा। आयकर को विल्कुल ही समाप्त कर दिया जायेगा और इसके बदले उत्पादन के शुरूआती दौर में ही करों का निर्धारण कर लेना होगा। बैकिंग व्यवस्था को भी संहकारी माध्यम से ही चलाना होगा। केन्द्रीय एवं संघीय सरकारी बैंक, आसन्न या स्थानीय सरकार द्वारा नियन्त्रित होंगे। गए) तिला

एकप्रउत की उत्पादक अर्थ व्यवस्था का सर्वोपरि मौलिक लक्ष्य जन साधारण की क्रय क्षमता को बढ़ाना है।काजे

(इस व्यवस्था से सहकारी पद्धति एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा वस्तुओं की कीमतों का नियंत्रण स्वतः ही आसान हो जाएगात कि ए डा

अनुक्रमणिका

कलिकाता जून १९७९

त्रि-स्तरीय पूँजीवाद

किसी प्रकार के शोषण के विरुद्ध संग्राम करने के समय सर्वप्रथम शोषण के तौर-तरीकों के विषय में स्पष्ट रूप से जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। आज समस्त मानव समाज वैश्यों के पूँजीवादी शोषण की चक्की में पिस कर मरणासन्न स्थिति में है। पूँजीवादी शोषण ने, अपने शोषण के व्यापक जाल विस्तार से पूरे मानव अस्तित्त्व को घोर संकट पूर्ण स्थिति में पहुँचा दिया है। प्रउत के मतानुसार यह पूँजीवादी शोषण त्रिस्तरीय है। भौतिक स्तर में शोषण जिसके बारे में हम लोग काफी परिचित है। मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर में शोषण। ये तीनों ही प्रकार के शोषण समान रूप से खतरनाक है।

अनुक्रमणिका

भौतिक स्तर में पूँजीवादी शोषण की समस्या का समाधान माधान करने के दौरान ध्यान रखना होगा, कि मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथों में आर्थिक शक्ति बन्धक बन कर सीमित और अचल न होने पावे। इस वर्तमान निरर्थक आर्थिक संरचना को पूरी- तरह फेंक कर, इसके बदले में ही एक नई आर्थिक संरचना की स्थापना करनी होगी। उस नई आर्थिक व्यवस्था में कुछ मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथों में अर्थ शक्ति बन्धक या अवद्ध न होने देने से, उसकी गतिशीलता को पूरी मात्रा में जैसे-जैसे अवाधित करेंगे, वैसे-वैसे सम्पूर्ण सामाजिक संचरना सशक्त एवं अनुप्राणित होती जायेगी। मानसिक स्तर में एक बात गौर करने योग्य है, कि आज के शिक्षित बुद्धिजीवी लोगों में अपने अर्जित ज्ञान को सामूहिक कल्याण में ठीक ढंग से लगाने की स्वाभाविक प्रचेष्टा का अभाव है। सुविधा भोगी अति विशिष्ट बुद्धिजीवियों की मानसिकता है, कि वे लोग, जन साधारण के कल्याण हेतु अपनी सुख सुविधाओं को त्यागना नहीं चाहते।

इसी मानसिकता से ही एक विशेष प्रकार के पूँजीवाद का उदय होता है।

इस बौद्धिक पूँजीवाद से समाज में कई प्रकार की भीषण समस्याओं की उत्पत्ति होती है। पहला आम-जनता की कुल आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा। साक्षर नहीं हो पाता। दूसरा आम जनता की सामाजिक आर्थिक चेतना को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। तीसरा उनके बीच में हीनमन्यता एवं भीतमन्यता आदि उत्पन्न करके, उनके मन को कमजोर कर दिया जाता है। चौथा लोगों का बौद्धिक तथा नैतिक विकाश बाधित होने के कारण बौद्धिक पिछड़ापन एवं विवेकहीनता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इन सबकी वजह से भौम भाव प्रवणता Socio-sentiment गोष्ठी भाव प्रवणता Geo-sentiment इत्यादि संकीर्ण मनोभावों narrow sentiment का विध्वंसक प्रभाव समाज पर फैलता है, जिसके परिणाम स्वरूप बौद्धिक शोषण आर्थिक शोषण, पाखण्ड यां भाव जड़ता

अनुक्रमणिका

आधारित सिद्धान्त एवं मतवाद, साम्प्रदायिक कुसंस्कार एवं तथाकथित तर्क हीन धार्मिक कर्म काण्ड और प्रभावी होकर व्यापक रूप से विस्तारित होते जा रहे हैं।

आज की बौद्धिक जड़ता ने विनाशकारी रूप धारण कर लिया है। धन लोलुप वैश्य पूँजीपति लोग इस बौद्धिक जड़ता के मौके का फायदा उठाते हुए, अपने शोषण के मकड़ जाल को फैलाकर बहुत ही सूक्ष्म तौर-तरीकों से पूरे समाज की जीवनी शक्ति को चूस रहे हैं, और अपने शोषण के विजय रथ को बेरोक-टोक आगे बढ़ाए लिए जा रहे हैं।

लम्बे समय से जनता इस वैश्य शोषण के विरोध में नाराजगी व्यक्त कर रही है। बहुत बार मौका मिलते ही लोगों ने इसके विरुद्ध आक्रोश पूर्ण आन्दोलन किया है। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध, जनता के इस असंतोष के विषय में वैश्यों का दल विशेष सतर्क रह कर, शोषण के तौर-तरीकों को

बदलते रहता है। दृष्टान्तस्वरूप कहा जा सकता है कि पूँजीवादी वैश्य अपनी आर्थिक योजनाओं के निर्माण में बुद्धिजीवियों को पैसा से खरीद कर अपने शोषण के हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं। ज्यादातर बदलते हुए माहौल के साथ पूँजीवादी हमेशा अपने को ढाल लेता है। तभी तो अलग-अलग युग में वैश्य शोषण के अलग-अलग रूप दिखलाई पड़ते हैं। यथा सामन्तवाद, मुक्त व्यापारवाद साम्राज्यवाद, उप-निवेश वाद, नव उपनिवेशवाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था, बहुराष्ट्रीय निगम (कम्पनियाँ) आदि। एक समय, पूँजीवादी शोषण के विरुद्ध जिस साम्यवाद को एक घातक अमोघ अस्त्र के रूप में जाना जाता था, वह आज बेकार साबित हो चुका है।

पूँजीवाद के इस मारक एवं सर्वग्रासी शोषण का आधुनिकतम रूप मानस आर्थिक शोषण है। यह मानस आर्थिक शोषण एक ऐसा शोषण है, जिसमें जनता को सर्व प्रथम विभिन्न तरीकों द्वारा मानसिक रूप से कमजोर एवं पंगु करने के बाद ही

यह शोषण किया जाता है। इसके कुछ तौर-तरीके इस प्रकार हैं- (१) विभिन्न समुदायों की भाषा एवं संस्कृति का अवदमन। (२) अप संस्कृति का व्यापक प्रसार, अश्लील साहित्य लोगों में विशेष कर नवयुवकों में खराब असर डालकर, उनके नैतिक मनोबल को नष्ट कर देता है। (३) नारियों के ऊपर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्धों को थोपकर उन्हें आर्थिक रूप से पुरुषों का आश्रित बना देता है। (४) राजनैतिक हस्तक्षेप युक्तअमनों वैज्ञानिक शिक्षा व्यवस्था। (५) धर्म निरपेक्षता के नाम पर धर्म हीनता का प्रसार। (६) बहुत सी जात-पात की रचना करके समाज को खण्ड-विखण्ड कर देना। (७) जन्म नियन्त्रण के अप्राकृतिक एवं क्षतिकर उपायों का सहारा लेकर समाज को अत्यधिक क्षति पहुँचाना। (८) अखबार, रेडियो, टेलिविजन (दूरदर्शन) आदि सञ्चार के माध्यमों का पूँजीपतियों के आधीन होना, इत्यादि।

अनुक्रमणिका

बौद्धिक शोषण एवं मानस आर्थिक शोषण दोनों ही आज पूरे मानव समाज के लिए भयंकर खतरनाक है। अविलम्ब एक व्यापक जनमत के निर्माण से बुद्धि की मुक्ति की प्रक्रिया में तेजी लाकर, इसका प्रतिरोध करना होगा। इसके लिए सर्व प्रथम समाज के वास्तविक बुद्धिजीवियों को अपनी खुद की बुद्धि को शुद्ध एवं बेदाग करना होगा, सभी प्रकार की निष्क्रियता एवं पूर्वाग्रहों को त्यागकर लोगों के साथ मिल-जुलकर, लोगों के कल्याण में खुद को लगाना होगा। एवं शोषण विरोधी आन्दोलन को पूर्ण समर्थन देना होगा। इससे एक तरफ जहाँ शोषण का समूलनाश होगा, वहीं दूसरी तरफ सामाजिक संरचना मजबूत होगी, जनता का बौद्धिक स्तर उन्नत होगा, एवं मानव समाज गौरव शाली-उज्ज्वल, भविष्य की ओर बड़ी तेजी से आगे बढ़ेगा।

आध्यात्मिक पूँजीवाद - भौतिक और मानसिक स्तर के अलावा भी आत्मज्ञान

एवं बोध का क्षेत्र पूँजीवाद का तीसरा स्तर है। बहुत से लोग परिवार एवं समाज की अवहेलना करके, तथाकथित मुक्ति मोक्ष की लालसा से वनों-जंगलों-गुफाओं में कठोर तपस्या करते हैं। वे लोग आध्यात्मिक कृपणता के वशीभूत होकर, अपनी आध्यात्मिक अनुभूति या शक्ति को अपने में संचित करके रखना चाहते हैं। ऐसे लोग व्यक्तिगत एदं सामूहिक जीवन में, आध्यात्मिक चेतना जगाने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं करते हैं। इसको प्रज्ञा भौमिक पूँजीवाद कह सकते हैं। यह आध्यात्मिक साधना के मौलिक नीति " आत्म मोक्षार्थ जगत् हिताय च" के खिलाफ है। सच्चे आध्यात्मवादी के लिए, ब्रह्म से लेकर एक घास की पत्ती तक सभी कुछ परमपुरुष की ही अभिव्यक्ति है। यह समदर्शिक आध्यात्मिकता का अन्यतम मुख्य लक्षण है। इस गुण को प्राप्त किये बिना कोई भी परमतत्त्व में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। इस स्थिति में आध्यात्मवादियों को परमा गति की ओर बढ़ने में कदम-कदम पर रुकावटों का

सामना करना पड़ता है। अतीत में बहुत से आध्यात्मिक उन्नत लोगों को इस स्थिति से गुजरना पड़ा है।

सभी मनुष्यों को सच्ची आध्यात्मिक साधना करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। सामूहिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, यथा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक इत्यादि, में एक वैज्ञानिक एवं तर्कशील दृष्टिकोण होना आधारभूत विषय है। खोई हुई मानवीय मौल नीति को पुनरुज्जीवित एवं पुनस्थापित करना, आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यही युग की पुकार है। वर्तमान सामाजिक जीवन में इस अति महत्त्वपूर्ण मानवीय मौल नीति के अभाव से समाज में नाना प्रकार की विसंगति एवं अस्तव्यस्तता दिखाई दे रही है।

आज आध्यात्मिक शक्ति से पुष्ट, नैतिकता में कठोर रूप से प्रतिष्ठित, कुछ आदर्श व्यक्तियों के नेतृत्व में एक आध्यात्मिक एवं सर्वात्मक आन्दोलन की अति आवश्यकता

है। यही सर्व गुण सम्पन्न आदर्शवान लोग सद्विप्र कहलाएँगे। सही सद्विप्र लोग सभी युग में सभी देशों में सामाजिक प्रगति की धारा को स्वतः गतिशील रखेंगे।

सभी सच्चे आध्यात्मिक लोगों को, आज, धूल-धूसरित धरती में अपनी ज्ञान सम्पदा को सभी के बीच प्रसारित करके सभी के दुःख क्लेशों को कम करने के इस महान कार्य में स्वेच्छापूर्वक अपने को लगाना होगा। इसी तरह दुनिया के लोगों की विचारशीलता एक नया मोड़ लेगी, एवं उससे उनकी सुप्त आध्यात्मिक शक्ति संचारित होगी, तथा नई पीढ़ी के नये लोग एक साहस पूर्ण भावी नई दृष्टि से सुसज्जित होकर विजयोल्लासित होकर आगे बढ़ते जाएँगे।

१९८१ कलिकाता

सामाजिक-आर्थिक वर्गीकरण

वर्तमान पृथ्वी से वृद्धाकार जीव प्रायः विलुप्त होते जा रहे हैं। इन सब बहुत बड़े-बड़े जीव-जन्तुओं के जीवित रहने लायक प्राकृतिक परिवेश नष्ट हो रहा है। अतीत में बहुत से वृद्धाकार जीव-जन्तु पृथ्वी पर निवास करते थे, किन्तु प्राकृतिक परिवेश के परिवर्तन एवं इस ग्रह पर मनुष्यों का आधिपत्य हो जाने के कारण, ये सभी अतिकाय जीव-जन्तुओं का नामो-निशान ही मिट गया है। तदनुरूप, छोटे-छोटे राज्य, अपने अस्तित्व रक्षा के लिए संग्राम कर रहे हैं। लोग, छोटे- छोटे-छोटे राज्यों की अपेक्षा बड़े-बड़े सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र के निर्माण में सभी की भलाई सुनिश्चित करने को इच्छुक हैं। संकीर्ण मनोभावों का (Sentiment) क्रमशः विलोपन हो रहा है और मनुष्य के मन में विश्व एकता की "विचार धारा का उदय हो रहा है। इतने दिनों से, समाज के बहुत से हिस्से को, जिन सभी

अन्धविश्वासों एवं भावजड़ताओं ने घुटन भरे माहौल में रखा था, आज विज्ञान एवं तकनीकी विद्या के विकाश ने उनको बेनकाब कर दिया है। विवेक बुद्धि एवं सर्वजन हिताय की भावना को मानवता अब महत्त्व महत्त्व देना शुरू कर रही है। है। इसलिए वर्तमान युग वृद्धाकार प्राणियों एवं छोटे राज्यों का युग नहीं है। कह के पनी कहान

दुनिया की इस वर्तमान सामाजिक-आर्थिक चाहत के अनुसार प्रउत दुनिया में सर्वत्र आत्म-निर्भर क्षेत्रों (units) के निर्माण की नीति में विश्वास करता है। सभी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र अपने-अपने क्षेत्रों में जनता के सर्वतोमुखी कल्याण के कार्यों को तेजी से आगे बढ़ायेंगे, तथा एक सामूहिक विचारधारा के आधार पर सभी को बाँध कर रखेंगे। ये Fसामाजिक आर्थिक क्षेत्र (units) जैसे ही समृद्ध एवं शक्तिशाली होंगे, वैसे ही ये सभी कि आपस में धीरे-धीरे एक साथ मिलते जायेंगे। विश्व सरकार निर्मित होने के साथ ही, निश्चित रूप से दुनिया के सभी

लोगों एवं सभी देशों के हितों की रक्षा होगी एवं सभी ही यथोचित मान्यता पायेंगे। इस तरह से प्रउत सभी मनुष्यों के सर्वतोमुखी कल्याण को सुनिश्चित करेगा।

प्रउत आधारित सामाजिक-आर्थिक आन्दोलन की मुख्य विशेषता है इसका वह लक्ष्य जो दुनिया के हर व्यक्ति की हर तरह की मुक्ति की सुनिश्चितता प्रदान करता है। मानव इतिहास के शुरूआती दौर से ही मनुष्य, प्राकृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दासता से मुक्ति पाने के लिए, अविराम संग्राम करता आ रहा है। यह संग्राम मानव स्वभाव के साथ ओत-प्रोत भाव से जुड़ा हुआ है। मनुष्यों में मुक्ति की यह आकांक्षा व्यक्तिगत एवं समिष्टगत दोनों ही क्षेत्रों में है, तथा इस मुक्ति को निश्चित रूप से पाने के लिए मनुष्य सभी प्रकार के अवदमनों के विरुद्ध संग्राम करेगा। फिर भी हम लोग देखते हैं, कि जब किसी दबे-कुचले वर्ग या समुदाय को थोड़ी भी स्वाधीनता प्राप्त होती है, तब वे भी बदले में दूसरे वर्ग या समुदाय को दबाने-सताने लगते हैं।

आज समाज में जितनी भी स्वाधीनता हम लोग देखते हैं वह बहुत से लोगों एवं समूहों के लम्बे संग्राम का यह परिणाम है। संग्राम, एवं मन की यह खोजी प्रवृत्ति मनुष्य का सहज स्वभाव है। सुख पाने की मौलिक आकांक्षा एवं परमानन्द के भाव में स्वयं को प्रतिष्ठित करने की इच्छा ही मनुष्य की सभी इच्छाओं का मूलाधार है। इसका यही अर्थ हुआ कि मनुष्य को दुनियावी सम्बन्धों के मानस बन्धनों से मुक्त होकर व्यष्टिगत जीवन में अपने को परम पद में प्रतिष्ठित करना होगा। मन को देश-काल-पात्र के बन्धनों से मुक्त करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, और परमतत्त्व की प्राप्ति से ही आनन्द प्राप्ति की आन्तरिक अभिलाषा पूर्ण हो सकती है।

सामूहिक जीवन में सामाजिक जीवन में, पूर्ण मुक्ति सम्भव नहीं है। तथापि प्रत्येक मनुष्य को परम मुक्ति की प्राप्ति के लिए समाज उत्साहित करेगा। सामूहिक जीवन में मुक्ति तभी

सुनिश्चित होती है, जब मानव जीवन, के सभी क्षेत्रों में मनुष्य निर्वाध होकर अपनी सभी तरह की अभिव्यक्ति को व्यापक रूप से व्यक्त कर सके। इस सर्व स्तरीय मुक्ति को प्रत्येक मनुष्य के स्वाभाविक अधिकार के रूप में स्वीकृत होना उचित है। मनुष्य के इस स्वाभाविक अधिकार के उत्तम विकाश हेतु एक अनुकूल वातावरण एक उपयुक्त सामाजिक आर्थिक परिवेश निर्मित करना, हम सभी लोगों का कर्तव्य है,

वर्गीकरण की शर्तें -

सामाजिक आर्थिक आन्दोलन के निर्माणकाल में ही विभिन्न कारकों पर चिन्तन मनन करना उचित है; ये हैं पहला समान आर्थिक समस्या और समान आर्थिक सम्भावना, समान नस्ल और समान भावनात्मक विरासत, समान भौगोलिक परिवेश और समान आर्थिक समस्या से यही बोध होता है कि एक निर्दिष्ट क्षेत्र के जन समुदाय को एक जैसी ही आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के

अन्तर्गत स्थानीय उत्पादित वस्तुओं के बाजार का अभाव, श्रमिकों की बहुलता या कभी कमी की समस्या, सम्पर्क एवं यातायात के अभाव की समस्या, सिंचाई के लिए पर्याप्त जल का अभाव आदि शामिल है। किसी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (unit) के निर्माण काल में ही उस क्षेत्र में उपर्युक्त समस्याएँ हैं कि नहीं, इसकी जानकारी सबसे पहले कर लेना होगा, आर्थिक समस्याओं एवं उसके समाधान के उपायों को अच्छी तरह से जान लेना होगा।

दूसरा, किसी भी सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) में एक ही तरह की आर्थिक क्षमताओं का होना उचित है। यद्यपि यह स्वाभाविक है कि एक ही सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न स्थानों के बीच पार्थक्य रहेगा ही, फिर भी यह देखना होगा, कि पूरे क्षेत्र (इकाई) के लोगों के आर्थिक विकाश के लिए एक जैसा सुयोग है कि नहीं। जिसके पास सब कुछ है, ऐसे धनिकों एवं जिसके पास अभाव है ऐसे गरीबों के बीच जो

विषमतां है, उसको उत्तरोत्तर कम करते जाना होगा, जिससे सभी लोगों की सामूहिक उन्नति हो एवं वास्तविक जनकल्याण मूलक समाज की स्थापना हो सके।

तीसरा, एक सामाजिक आर्थिक समूह के बीच नस्लीय समानता होना उचित है। अतीत में बहुत सी जातियाँ एवं उप जातियाँ, शक्तिशाली एवं प्रभावशाली जातियों द्वारा अवदमित एवं शोषित हुई हैं। ये प्रभावशाली जाति, अपने दुष्टतापूर्ण उद्देश्य की पूर्ति हेतु जातिवाद के प्रचार से अपना आधिपत्य कायम करने के लिए समाज को खण्ड-विखण्ड कर रही हैं। इन सभी भयंकर हानिकारक संकीर्ण मनोभावों से समाज की रक्षा करनी होगी, यदि प्रत्येक जन समुदाय को अपनी अभिव्यक्ति एवं विकाश का पर्याप्त सुयोग प्राप्त हो जाय तो इससे समाज की रक्षा सम्भव हो सकेगी। विभिन्न रंगो के फूलों, से गुँथी मानवता की यह माला तभी सौन्दर्य की सर्वोत्तम आकृति में रूपान्तरित होगी, जब विभिन्न जन समुदाय, अपने आपसी भय एवं

वाध्यता की मजबूरी से एकत्रित होने की अपेक्षा, अपने शक्ति सामर्थ्य एवं स्वाधीनता की गरिमामय स्थिति में, अपने सभी भाई-बहनों का सच्चा प्यार पाकर प्रेम के बन्धन में आबद्ध होंगे।

चौथा, भावनात्मक विरासत के अन्तर्गत भाषा एतिहासिक परंपरा, साहित्य, सामूहिक प्रचलन संस्कृति इत्यादि है। यह एक विशेष जन समुदाय की सामूहिक मानसिकता का सूत्र है जो उस जन समुदाय के लोगों के बीच अभिन्नता एवं आत्मियता का भाव उत्पन्न करता है।

मनुष्य मुख्यतः स्वभाव से ही भावुक है। उसने अपने दैनिक कार्यक्रमों के माध्यम से पृथ्वी की विभिन्न वस्तुओं के साथ एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। किसी प्रिय वस्तु के प्रति मनोभाव (sentiment) यदि सामूहिक मनोभावों (sentiments) के साथ सामन्जस्य पूर्ण हो, तो उस मनोभाव (sentiment) को मानव समाज की एकता कायम

करने में लगाया जा सकता है। कभी-कभी बहुत सी वस्तुओं के प्रति मानवीय मनोभाव (sentiment) सामूहिक मनोभावों (sentiments) के विरुद्ध हो जाते हैं, और उसके कारण काफी बड़े पैमाने पर अनैक्य या फूट पैदा होती है।

जो सभी मनोभाव मानव एकता में सहायक हैं उन सभी को प्रोत्साहन देना उचित है तथा जिन मनोभावों (sentiments) से मानव समाज मैं दरार उत्पन्न हो, उन सभी का त्याग करना ही उचित है। प्रउत के सभी सामाजिक आर्थिक समूह (groups) इसी नीति का अनुसरण करते हैं। (कर)

अन्ततोगत्वा, समान भौगोलिक वैशिष्ट्य अर्थात् भूमि की स्थलीय रूप रेखा, नदी व्यवस्था, वर्षा एवं सिंचाई का पानी आदि, सभी सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) के गठन हेतु विशेष रूप से विवेचनीय है।

प्रउत आधारित सामाजिक- आर्थिक क्षेत्र (इकाई) का निर्माण ही एक जन-आन्दोलन है, जो सभी प्रकार के शोषणों के विरोध के साथ-ही-साथ स्थानीय दावेदारियों एवं स्थानीय जनता के मनोभावों (Sentiments) के समर्थन में संग्राम करेगा। यह आन्दोलन –- "क्षेत्र को जानो, योजना तैयार करो एवं जनता की सेवा करो" जिन स्थानीय लोगों ने अपना आर्थिक हित इकाई के आर्थिक हित के साथ जोड़ा है जहाँ वे रहते हैं की नीति के तहत पूरी दुनिया में सब जगह आत्म निर्भर सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) निर्माण के लिए काम करेगा। आत्म निर्भर सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) में निवास करते हुए उस क्षेत्र की स्थानीय भाषा में बातचीत करते हों, जिन्होंने सम्बन्धित सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) के हित के साथ अपने व्यक्तिगतहितों को मिला दिया है, वे ही उस क्षेत्र के स्थानीय लोग हैं

प्रत्येक सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) को अपने विकाश के लिए योजना बनानी होगी तथा इसके बहुत से विषयों पर विचार करना होगा। इसके अंतर्गत प्राकृतिक संसाधन भूमि की स्थलीय रूप रेखा, नदी-व्यवस्था, सांस्कृतिक अवस्था, सञ्चार एवं यातायात, औद्योगिक क्षमता एवं विकाश परक परियोजनाएँ शामिल हैं। ये सभी विषय आत्मनिर्भर आर्थिक क्षेत्र (इकाई) के विकाश एवं उत्कृष्ट योजनाओं के निर्माण में विशेष सहायक हैं।

किसी विशेष क्षेत्र (इकाई) के औद्योगिक उत्पादन को किसी महत्त्वपूर्ण हिस्से को यदि उस क्षेत्र से बाहर भेज दिया जाय या उसका दुरुपयोग किया जाय, तो उस क्षेत्र की उन्नति में रुकावट होगी। इसलिए किसी सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) की पूँजी को किसी भी तरह बाहर नहीं जाने दिया जायेगा एवं इस सम्पदा का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करना होगा।

यदि संघीय व्यवस्था के किसी एक विशेष सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) को सही आर्थिक न्याय प्राप्त न हो तो वे संघीय बजट में से अपने लिए पृथक धन राशि पाने की दावेदारी का आन्दोलन कर सकते हैं। इस आन्दोलन के बाद भी यदि उन्हें सही न्याय न मिल सके, तब वे अलग राज्य की दावेदारी कर सकते हैं। जबकि पृथक बजट एवं पृथक प्रशासन के साथ छोटे-छोटे बहुत से राज्य या राष्ट्र के निर्माण का समर्थन प्रउत नहीं करता है। बहुत से राज्यों (या राष्ट्रों) के निर्माण से सामाजिक आर्थिक समस्याएँ और भी ज्यादा बढ़ जाएँगी इससे प्रशासनिक खर्चे दुगने होंगे एवं धन की बर्बादी होगी। बल्कि छोटे-छोटे राज्यों को (या राष्ट्रों को) एक साथ मिलाकर बड़े-बड़े सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों (इकाईयों) का गठन ही उचित है।

सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों (इकाइयों) के एकीकरण की शर्तें –

दो या उससे ज्यादा, सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों (इकाइयों) को, कुछ शर्तें पूरी करने पर, एक साथ मिला सकते हैं। ये शर्ते हैं आर्थिक समानता, संचार एवं यातायात की सुविधा एवं प्रशासनिक दक्षता। इन शर्तों के पूरा होने से उन क्षेत्रों में (इकाइयों में) उच्च स्तरीय सामाजिक आर्थिक समानता आ जायेगी, तब उनके साथ मित्रता पूर्ण सहयोग स्वाभाविक एवं सहज हो जाएगा। इस अवस्था में वे सभी क्षेत्रों के अपने अधिकतम सामाजिक आर्थिक विकाश एवं अपने सभी लोगों के कल्याण हेतु एक साथ मिल जाये तो एक अभिन्न सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) में बदल सकते हैं।

अब भारत का ही उदाहरण लें। पूर्वी क्षेत्र उड़ीसा राज्य प्रचुर खनिज सम्पदा यथा कोयला, बाक्साइड, मैग्रीज इत्यादि से परिपूर्ण है। किन्तु भारतवर्ष के वर्तमान नेता लोग इस सब खनिज सम्पदा को विदेशों में निर्यात कर रहे हैं। यदि इस सब कच्चे माल का उपयोग स्थानीय औद्योगिक उत्पादन में किया गया

होता, तो चार बड़े-बड़े इस्पात उद्योगों को बहुत ही सहजतापूर्वक चलाया जा सकता था। जिससे प्रति व्यक्ति आमदनी में भी बढ़ोत्तरी होती। किन्तु नेता लोग इन सब विषयों में ध्यान न देकर अपने मनमर्जी से पञ्चवर्षीय योजनाएँ बना रहे हैं। तभी तो इन पञ्चवर्षीय योजनाओं से न तो आर्थिक विषमता ही दूर हो रही है, न सामूहिक सम्पदा ही बढ़ पा रही है। इस आर्थिक विषमता को दूर करने एवं सामूहिक सम्पदा की वृद्धि करने हेतु वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को हटाकर नई व्यवस्था को लाना होगा। सर्व प्रथम, आर्थिक विकाश हेतु पूरे देश को बहुत से सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों (इकाइयों) में विभाजित करना होगा। यदि राजनैतिक एवं भाषा के दृष्टिकोण से राज्यों की सीमाओं का निर्धारण होता है, तो सामाजिक-आर्थिक योजनाएँ कभी भी सही ढंग से नहीं बन सकेंगी एवं विभिन्न आर्थिक समस्याओं पर उचित ध्यान देना भी सम्भव नहीं होगा। इसलिए तत्परतापूर्वक देश के आर्थिक विकाश को तेज करने के लिए आत्मनिर्भर सामाजिक आर्थिक क्षेत्र अत्यावश्यक है।

अभी एक राजनैतिक राज्य (क्षेत्र) में कई तरह की आर्थिक क्षेत्र (इकाई) है। उदाहरणस्वरूप बिहार (झारखण्ड) के छोटा नागपुर क्षेत्र में सिंचाई के पानी की बहुत ही गम्भीर समस्या है। किन्तु उत्तर बिहार के मैदानी भूमि से जल के निष्कासन की समस्या ही बहुत बड़ी है। इसी तरह श्रीकाकुलम और तेलंगाना को एक ही राजनैतिक राज्य आन्ध्रप्रदेश के साथ जोड़ दिया गया है जब कि उन सभी की आर्थिक समस्याएँ अलग-अलग हैं। इन सभी भित्र-भिन्न आर्थिक समस्याओं पर विचार करके, इन सभी क्षेत्रों (इकाइयों) की जनता के हित में अलग-अलग सामाजिक आर्थिक क्षेत्र का निर्माण करना उचित है। प्रशासनिक आवश्यकता से इन विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों को अविलम्ब एक ही आर्थिक क्षेत्र में सम्मिलत करने से जटिलता उत्पन्न हो सकती है। किसी एक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) को आवश्यकतानुसार दो राजनैतिक प्रक्षेत्रों में विभक्त कर सकते हैं। अपरिहार्य होने पर एक राजनैतिक क्षेत्र में एक से ज्यादा आर्थिक

क्षेत्र (इकाईयाँ) भी हो सकते हैं। इस नीति से विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समुदाय अपनी क्षमताओं का विकाश पूरी तरह से कर सकेंगे। इस तरह दोनों क्षेत्रों (इकाई में) की उन्नति लगभग बराबरी के स्तर में पहुँचने पर, उन दोनों को एक साथ मिला कर के, एक बड़ा सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) का निर्माण सम्भव है। इस तरह धीरे-धीरे पूरा भारतवर्ष एक सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) में परिवर्तित हो जाएगा। अगले क्रम में, लगातार विकाश एवं उन्नत्ति के द्वारा पूरे दक्षिण पूर्व एशिया भी एक अभिन्न सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) में रूपांतरित हो जाएगा। इसी तरह अन्त में एक दिन पूरी दुनिया एक समग्र सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) के रूप में काम कर सकेगी। इस स्थिति में ही सच्चे विश्वबन्धुत्व की प्रतिष्ठा सम्भव होगी। विकाश की यह स्थिति प्राप्त करने के बाद प्रउत का जन आन्दोलन एक सार्वभौमिक (सार्विक) सुसन्तुलित संरचना एवं प्रमा की (Equalibirium & equiposse) प्रतिष्ठा करेगा।

universal in spirit but regional in approach.

क्षेत्रीय समृद्धि से ही विश्व एकता की प्रतिष्ठा -

सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र के निर्माण की ज़मीनी हकीकत से बहुत थोड़े समय वे अन्तराल में ही पूरी दुनिया में एक बहुत बड़ी जागृति उत्पन्न हो उठेगी। विभिन्न सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों (इकाइयों) के बीच बहुत सी विभिन्नताएँ हैं, किन्तु इन सब विभिन्नताओं के आधार पर मानव समाज को खण्डों में बँटने नहीं दिया जाएगा। यदि मानव समाज के समान (common) मनोभावों को प्रभुत्व दिया जाय एवं एकता के बिन्दुओं (विषयों) को विकाश का आधार निर्धारित किया जाय, तो ये विभिन्नताएँ; मानवता को छिन्न-भिन्न करने के बदले और भी समृद्ध करेंगी। इसके अलावा, यदि प्रत्येक सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) को समग्र विचारधारा एवं वैश्विक दृष्टिकोण द्वारा प्रेरित किया जाये तो मानव समाज उन्नत आदर्श से प्रेरित होकर प्रचण्ड गति से आगे बढ़ेगा।

प्रउत स्वीकार करता है कि किसी भी सामाजिक-आर्थिक आन्दोलन की सफलता हेतु सर्वप्रथम एक सम्पूर्ण समन्वित आदर्श की आवश्यकता है। प्रउत के इस सामाजिक - आर्थिक आन्दोलन का आधार नव्य मानवतावाद है। यही नव्य मानवतावाद सभी मनुष्यों को एकता के सूत्र में बाँधकर सार्वभौमिक समाज की स्थापना करेगा। जब कि यह सत्य है कि विश्व एकतावाद - की प्रतिष्ठा दुनिया में रातों-रात नहीं होगी। इसकी स्थापना धीरे-धीरे होगी। तब लोग पूरी दुनिया के मनुष्यों को ही नहीं, दूसरे जीव-जन्तुओं पेड़-पौधों एवं जड़ जगत् को भी अपना बना लेंगे। यदि एक भी व्यक्ति विश्वएकतावाद की परिधि से बाहर रह जाय एवं शोषण का शिकार हो जाय तो इससे नव्य मानवतावाद की भित्ति कमजोर हो जायेगी।

प्रउत की नीतियों का वैशिष्ठ है-- क्षेत्रीय समृद्धि के रास्ते ही विश्वैकतावाद की प्रतिष्ठा -

शोषण से बचाव - अभी प्रश्न है कि पूरी दुनिया में आत्मनिर्भर सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों की प्रतिष्ठा होने के बाद भविष्य में किस तरह से शोषण की सम्भावनाओं को दूर किया जायेगा। प्रउत के मतानुसार यदि निम्नलिखित चार घटकों (उपादानों) की प्रतिष्ठा सामाजिक जीवन में हो जाय तो शोषण से लोगों की रक्षा हमेशा के लिए हो सकती है। ये घटक हैं - १) समग्र आदर्श २) विज्ञान सम्मत आध्यात्मिक आधार ३) आध्यात्मिक कार्यकर्ता ४) उपयुक्त संस्था।

समग्र आदर्श के बहुत से पहलू होते हैं। पहला यह समग्र आदर्श ही सामाजिक - आर्थिक समस्याओं के युक्ति संगत विश्लेषण एवं इन सभी समस्याओं के सम्पूर्ण समाधान का आधार होगा। दूसरा मनुष्य के मानसिक विकाश एवं आध्यात्मिक उन्नति की अवहेलना कदापि नहीं करने दिया जायेगा। तीसरा आदर्श के साथ गतिशीलता एवं सजीवता को समन्वित करना होगा। जिससे वह मानवता को सर्वात्मक प्रगति

अनुक्रमणिका

की ओर तेजी से आगे ले जा सके। विज्ञान - सम्मत आध्यात्मिक आधारवाला समाज ही सभी प्रकार के भेद-भाव एवं मानसिक संकीर्णता जनित सभी प्रकार के दलीय मतवादों से लोगों की रक्षा करेगा। विज्ञान-सम्मत आध्यात्मिकता लोगों के बीच किसी कृत्रिम भेद को स्वीकार नहीं करती है। कु-संस्कार एवं हताशा नहीं बल्कि क्रम विकाश एवं आत्मोन्नति ही आध्यात्मिकता की नींव है।

आध्यात्मिकता में प्रतिष्ठित कार्यकर्ता लोग सभी प्रकार के शोषण से समाज के रक्षा की नैतिक पृष्ठभूमि तैयार करेंगे तथा "आत्म मोक्षार्थ जगत् हितायाच" के आदर्श पर पूरे मानव समाज में नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रचार करेंगे।

अन्त में उपयुक्त संस्था मनुष्य की आशा-आकांक्षा एवं अभाव अभियोग को लेकर गम्भीर रूप से चिन्तन करेंगे तथा मानव कल्याण के लिए सतत् कार्य करते रहेंगे। विश्व सरकार की

अनुक्रमणिका

आवश्यकता आज बहुत लोगों द्वारा व्यक्त की जा रही है, निकट भविष्य में इस विश्व सरकार की प्रतिष्ठा होने के बाद इसकी क्षमता को प्रगतिशील ढंग से बढ़ाते जाना होगा। विश्व सरकार की संरचना के तहत, प्रत्येक सामाजिक आर्थिक क्षेत्र (इकाई) अपने समग्र विकाश का सुयोग प्राप्त करेंगे।

प्रउत की सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) निर्माण की यह नीति समाज की सभी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के समाधान का एक व्यापक एवं सुसंगठित प्रयास है।

आम जनता द्वारा इस नीति को स्वीकार कर लेने से समाज सभी बाधा - बन्धनों को पार करते हुए गति का सच्चा रास्ता पकड़ कर, त्वरित गति से आगे बढ़ने में सक्षम होगा मानव समाज के एक तेजस्वी एवं उज्ज्वल अध्याय की शुरुआत होने वाली है।

अक्टूबर १९७९ कलिकाता

भाषा के मूल तत्व

हर एक भाषा में पांच मौलिक विशेषताएँ होती हैं एक प्राभाषा का पहला वैशिष्ट्य अपनी क्रिया या धातु रूप है उदाहरण स्वरूप कह सकते हैं जैसे अंग्रेजी में Ram is going, हिन्दी में राम जा रहा है। संस्कृत में रामा गच्छति। तुम लोग ध्यान दोगे कि अंग्रेजी भाषा है क्योंकि, इसका अपना क्रिया रूप है जैसे कि अभी कुछ पहले ही बोला हूँ. "Is going" संस्कृत भी एक भाषा है- क्योंकि इसका भी अपना क्रिया रूप है - "गच्छति पुनः। पहाड़ी भी एक भाषा है क्योंकि इसका भी अपना

क्रियापद यथा अक्ष दशा का अक्षन दशा है। यही हुआ पहला विशिष्टता अर्थात इसका अपना क्रिया पद है। संस्कृत मे कुछ क्रियापद हैं यथा-ति (गच्छंति) तः (गच्छतः), अन्ति (गच्छन्ति), सि (गच्छसि), यस (गच्छथः) एवं य (गच्छय) इत्यादि ।

भाषा का दूसरा वैशिष्ट्य अपना शब्द रूप हुआ। जैसे कि अंग्रेजी में Ram's sister is eating bread संस्कृत में 'रामस्य भगिनी रोटिकाः खादति'। हिन्दी में राम की बहन रोटी खा रही है। तथा पहाड़ी भाषा में है राम ही बैन रोटी खान्दी। पञ्जाबी भाषा में इसका उच्चारण कुछ तिर्यक रूप में किया जाता है। 'अ' का उच्चारण 'ओ' की तरह होता है। यहाँ 'रामेर जन्मे' को ही देखिए। इस जन्मे को अंग्रेजी में Rama's का मतलब 'of Rama' / संस्कृत में 'रामस्य' (स्य लगाकर) हिन्दी में 'राम की' (की लगाकर) पहाड़ी में 'रामरी' री लगाकर इसी को शब्द रूप (case ending) कहते हैं, जो, प्रत्येक भाषा में

अलग-अलग है। भाषागत दृष्टि कोण से प्रत्येक भाषा, जिसके पास अपना शब्द रूप है, वे ही, भाषा के रूप मे मान्यता पाने के अधिकारी हैं। भाषागतविचार से पहाड़ी में निश्चित रूप से भाषा के रूप मे मान्यता पाने की पूरी योग्यता है। पहाड़ी एवं हिन्दी एक नहीं हैं क्योंकि पहाड़ी एवं हिन्दी का अपना-अपना स्वतन्त्र शब्द रूप है।

भाषा का तीसरा वैशिष्ट्य इसका अपना सर्वनाम है। जैसे अंग्रेजी में कहते हैं। 'He is going to calcutta', संस्कृत में 'सः कालिकाता गच्छति', हिन्दी में - 'वह कलिकाता जा रहा है', और पहाड़ी में 'कलिकाता चलो जासौ।' पहाड़ी की सै। एवं संस्कृत के सः के- प्रसंग में पहाड़ी के साथ संस्कृत की समानता Similarity है। इस प्रकार, देखते हैं कि अंग्रेजी में सर्वनाम 'He', संस्कृत में 'सः', हिन्दी में 'वह' एवं पहाड़ी में सै'। अर्थात् चारों भाषाओं का अपना-अपना सर्वनाम है। इसलिए पहाड़ी

एक स्वतन्त्र भाषा है। यह उपभाषा या बोली नहीं है। डोगरी भी एक स्वतन्त्र भाषा है। यह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ।

भाषा का चौथा वैशिष्ट्य:- उसका अपना शब्द भण्डार है। कोई बहुत बड़ा विद्वान भी यदि इस बात का विरोध करे, तो तुम लोग दृढ़ता पूर्वक उसको जवाब दोगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भाषा विज्ञान के सम्बन्ध में मेरी इन युक्ति पूर्ण विचारों से सभी लोग सहमत होंगे। जिस भाषा का अपना खुद का शब्द भण्डार हो उसे स्वतन्त्र भाषा के रूप में मान्यता देनी ही होगी। कोई हिन्दी के अच्छे विद्वान व्यक्ति इस पर तर्क कर सकते हैं। इसलिए तुम उसके सही उत्तर को पहले ही अच्छी तरह से जान लोगे। क्योंकि कोई कट्टर हिन्दी में ही तर्क-वितर्क करे, तो तुम्हे हिन्दी में ही उनको जवाब देना होगा। यदि तुम उनके साथ अंग्रेजी में बात करोगे, तो अंग्रेजी के विदेशी भाषा होने की बात कह कर वे अंग्रेजी में तुम्हारे साथ बात नहीं भी कर सकते हैं। बहुत से लोग अंग्रेजी के विषय में अपनी अक्षमता ढकने के

लिए इसी तरह की बात करते हैं। यह कितना हास्यास्पद है कि यही लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में पढ़ने भेजते हैं।लगा कि निमार

शिची अंग्रेजी में एक शब्द wheat है जिसका हिन्दी प्रतिशब्द गेहूँ, पहाड़ी प्रतिशब्द कनक, पंजाबी प्रतिशब्द कनख, डोगरी प्रतिशब्द कनक है। पैशाची प्राकृत के कनक शब्द ही, कनका, कनक, कनकाँ शब्द आये हैं। पैशाची प्राकृत से ही डोगरी, पहाड़ी एवं पंजाबी तीनों भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। अर्थात इन तीनों ही भाषाओं की जननी पैशाची प्राकृत है। उदाहरणार्थ हम अंग्रेजी में कहते हैं कि wheat is the staple food of the Punjab. (अंग्रेजी भाषा में किसी राज्य के नाम के आगे उपपद The का प्रयोग नहीं होता। किन्तु पंजाब के पूर्व the का प्रयोग होता है। यही अंग्रेजी भाषा की विलक्षणता है।) इस वाक्य का संस्कृत में अनुवाद होगा।। सप्तनद्यस्य मुख्यान्न गोद्यूमोआस्ति। गो धूमः अस्ति । संस्कृत गोधूम शब्द का अर्थ हुआ 'गेंहूँ' एवं

'अस्ति' का अर्थ हुआ हैं या होता है। संस्कृत में 'होता है' का अर्थ 'आस्ति' और फारसी में 'अस्त' है। इस तरह से देखो कि इन दोनों भाषाओं के मध्य कितनी समानता है। पुनः फारसी में जिस प्रकार बोलते हैं -हेनाज देहली दूर् अस्त" (दिल्ली अभी भी यहाँ से दूर् है। 'अथवा' दोस्त निस्त दुश्मने दुशमन अस्त" वह मेरा मित्र नहीं है मेरे दुश्मन का दुश्मन है। संस्कृत में नास्ति एवं फारसी में 'निस्त' की आपस में कितनी समानता है। ठीक इसी तरह है 'नेस्त नाबूद'।

संस्कृत के "सप्त नद्यस्य मुख्यान्त्र गोधूमः अस्ति" का हिन्दी अनुवाद होगा गेहूँ पंजाब का मुख्य खाद्य है" एवं पहाड़ी में होगा कनक पंजाब नैदी प्रधान "या" कनक पंजाब नैदी खाश (कोई-कोई "प्रधान नैदी न बोलकर" नैदौ खाश बोलते हैं), इस तरह देख रहे हो कि अंग्रेजी को wheat, संस्कृत में गोधूम हिन्दी में गेहूँ एवं पहाड़ी में कनक अर्थात् चारों भाषाओं में गेहूँ के लिए

अलग-अलग शब्द हैं। पहाड़ी में अपना शब्द है। इसलिए पहाड़ी को एक पृथक भाषा का दर्जा देना ही होगा।

भाषा का पाँचवा वैशिष्ट्य उसका अपना साहित्य है वह साहित्य प्रतिष्ठित (classied) साहित्य भी हो सकता है, लोक साहित्य भी हो सकता है। (folk literature) यहाँ फसल काटते समय, किसान लोग, जो गीत गाते हैं वे क्या लखनऊ के विशुद्ध उर्दू भाषा में रचे हुए गीत हैं ? निश्चित ही नहीं! या वे हिन्दी में रचित गीत हैं? निश्चित ही नहीं ? वे लोग अपनी पहाड़ी भाषा में रचित गीतों को गाते हैं। यही लोक साहित्य (folk literature) है।

उर्पयुक्त पाँचों मौलिक लक्षण ही किसी स्वतन्त्र भाषा की पहचान है। इसीलिए कहता हूँ कि पहाड़ी सोलह आना सम्पूर्ण भाषा है। पहाड़ी हिन्दी भाषा नहीं है। वरन यह हिन्दी से पूर्णतया भिन्न भाषा है। जो लोग, हिन्दी हिन्दी कह कर चिल्ला

अनुक्रमणिका

रहे हैं वे लोग वास्तविकता में हिन्दी थोपना चाहते हैं जिससे तुम लोग हिन्दी भाषियों के गुलाम बन जाओ। अपना गुलाम बनाने के लिए ही वे लोग दूसरे पर अपनी भाषा को थोपना चाहते हैं जैसे अंग्रेजों ने भारतीयों को गुलाम बनाए रखने के लिए ही उन पर अंग्रेजी भाषा को जोर-जबरदस्ती से थोपा था। मैं यही कहता हूँ कि यह मानस-आर्थिक शोषण है जिसे अच्छी तरह जान लेने का प्रयास करो।

मानसिक शोषणों के सम्बन्ध में और भी स्पष्ट रूप से कुछ कहता हूँ जैसे कोई एक बहुत कट्टर हिन्दी भाषा से प्रेम करनेवाले व्यक्ति आते हैं और जब तुम उनके साथ बात करोगे, तब वे हिन्दी में ही बात करेंगे। वे तो अपनी मातृभाषा हिन्दी में बात करेंगे। किन्तु तुम तो अपनी मातृभाषा में बात नहीं करते हो। हो सकता है कि तुम्हारे मुख से अशुद्ध हिन्दी बोली जा सकती है, व्याकरणगत भूल व त्रुटि हो ही सकती है एवं शब्दों का प्रयोग भी ठीक तरह से नहीं हो सकता हैं। इससे तुम्हारे मन में

हमेशा के लिए एक संकोच वना रहेगा एवं हीनमन्यता (inferiority complex) पनप जायेगी। और उनके मन में महामन्यता (superiority complex) पैदा हो सकती है। वह सोचेगा कि यह आदमी एकदम बुद्ध है। बात भी वह ढंग से नहीं कर सकता। किन्तु तुम यदि अपनी मातृभाषा में बातचीत करते तो बातचीत एक दम ठीक तरह से कर सकोगे। इसका यही तात्पर्य हुआ, कि उनके मनो वैज्ञानिक वड़प्पन (महामन्यता Superiority complex) के कारण ही तुम उनके सामने छोटे हो जाते हो। ऐसी परिस्थिति का फायदा उठाकर वे तुम्हारा आर्थिक शोषण भी कर सकते हैं शोषण करने के लिए ऐसा कोई भी मौका प्रदान करना उचित नहीं है। लम्बे समय तक ऐसा शोषण होते रहने से वे राजा (शासक) हो जायेंगे और तुम लोग प्रजा बन जाओगे। यही हुआ 'मानस-आर्थिक शोषण' (psycho-economic exploitation) अर्थात् सबसे पहले, तुम्हारे ऊपर मानसिक दबाव उत्पन्न करके, तुम्हारे अन्दर में हीनमन्यता थोप देंगे। तुम्हारी भाषा को मिटा देने से तुम

मानसिक रूप से क्षुद्रता बोध से ग्रसित हो जाओगे। इसी मानसिक दुर्बलता का फायदा उठाकर वे तुम्हारा आर्थिक शोषण भी करना शुरू कर देंगे। इसलिए जो हिन्दी हिन्दी कह कर चिल्ला रहे हैं उनका असली मकसद, इस मानसिक एवं आर्थिक (मानस-आर्थिक) शोषण के तौर-तरीकों को ही ठीक-ठाक करना है। वास्तव में वे तुम्हारे मित्र नहीं है।

और यह भी तो सत्य है कि हिन्दी भाषा में भी अनेक उप भाषाएँ हैं। हर-एक जिला की अलग-अलग कथ्य (बोल-चाल की भाषा) भाषा है। इस तरह की बहु संख्यक बोल चाल की भाषाएँ प्रचलित हैं। किन्तु पहाड़ी, हिन्दी से अलग एक स्वतंत्र भाषा है। भाषा के सम्बन्ध मे जो पाँच विशेषताएँ बतलाया हूँ। आशा करता हूँ कि तुम सब उसे अच्छी तरह समझ गये हो। इसलिए पहाड़ी भाषा-भाषी लोग यदि दावा करें कि सामाजिक जीवन के प्रगति मे पहाड़ी भाषा का प्रयोग हो, तो इसमें कुछ भी गलत नहीं है। कोर्ट-कचहरी में, स्कूल-कॉलेजों में,

सरकारी कार्यालयों में, हवाई अड्डा रेल्वे स्टेशनों, आकाशवाणी केन्द्रों, दूरदर्शन एवं तारघरों में सभी जगह पहाड़ी भाषा का पूरा-पूरी व्यवहार होना उचित है।

यह सही है कि लिखने के लिए तान लिपियों का प्रयोग किया जाता है १) टामरी लिपि; जोस क्षेत्र की प्रचलित लिपि है २) डोगरी लिपि, जो डोगरी भाषा-भाषी क्षेत्र में प्रयोग देती है ३) सिरसौरी लिपि, जो महान अञ्चल में प्रचलित है। देवनागरी लिपि, इस क्षेत्र प्रचलित लिपि नहीं है। देव नागरी लिपि गुजरात की लिपि है। हिन्दी की लिपि भी देव नागरी लिपि (गुजराती लिपि) ही है। यहाँ की लिपियों से उसका कोई सम्पर्क नहीं है। यहाँ माटी के नीचे जो सब प्राचीन पत्थरों, शिलाओं में खुदी हुई लिपि में उत्कीर्णित नहीं है। इसका यही कारण है कि देव नागरी लिपि का प्रयोग यहाँ किसी भी काल में नही होता था। टामरी लिपि किन्नोंर क्षेत्र में प्रचलित है। तिब्बत के एक पहाड़ में जो- अममणि पद्म हुँम, अममणि पद्म हुँम लिखा है वह टामरी लिपि

में ही लिखित है। पहाड़ी भाषा को इसी टामरी लिपि के द्वारा लिखना होगा। अभी थोड़ी देर पहले ही कहा हूँ कि जब स्थानीय सभी काम-काज में सर्वत्र ही डोगरी भाषा का व्यवहार होने लगेगा, तब डोगरी भाषा-भाषी लोग आत्म गौरव का अनुभव करेंगे और सोचेंगे कि मेरे पास भी सब कुछ है। हम किसी के दास नहीं हैं। भविष्य में यदि कोई व्यक्ति इस विषय में तुमसे जवाब-तलब करे तो तुम उसको तुरन्त ही स्पष्ट व सही उत्तर दे देना। आज यद्यपि डोगरी लिपि में लिखित पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु कोई पुरानी प्राचीन पुस्तक निश्चित ही प्राप्त होगी। डोगरी भाषा में लिखित तीन चार सौ वर्ष पुरानी प्राचीन पुस्तकें निश्चित ही प्राप्त होंगी। यहाँ भी खोज़ करने पर प्राप्त हो सकेगी। क्या इस क्षेत्र में पूर्व कालीन चतुष्पाठी (संस्कृत विद्यालय) में पढ़े हुए कोई संस्कृत के विद्वान व्यक्ति हैं? निश्चित ही होना चाहिए।

क्योंकि जहाँ राजा लोग रहते थे, वहाँ ये लोग भी रहते थे। जो भी हो, उन के पास खोजने पर, भोज पत्र या ताल पत्र में

लिखित प्राचीन पुस्तकें प्राप्त हो जायेंगी। अनुमान है कि भोजपत्र में ही पोथी लिखी जाती थी। क्योंकि आस पास में मुर्ज वृक्षों की काफी संख्या देख रहा हूँ। जो भी हो, मैं जो बात कह रहा था कि वे सब पूर्व कालीन पुस्तकें देव नागरी में लिखित नहीं थी। इसे तो बाहर से थोपा गया है।

वास्तविकता में देवनागरी गुजराती पण्डितों की लिपि है। बहुत लोग ठीक से इतिहास नहीं जानने के कारण भूल से सोच लेते हैं कि देव नागरी ही संस्कृत भाषा की आदि लिपि है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। सच्चाई यह है कि संस्कृत की अपनी कोई लिपि ही नहीं है। इसलिए नियम यह था कि संस्कृत को किसी भी लिपि में लिख सकते थे। इसलिए जिस देश में जो लिपि थी, संस्कृत भी उसी लिपि में लिखी गयी थी। बंगाल में बंगला लिपि, तमिलनाडु में तमिल लिपि में संस्कृत लिखी गई थी। वहाँ देवनागरी में संस्कृत नहीं लिखी गई। अंग्रेजों ने जब उच्चशिक्षा के विश्वविद्यालय स्थापित किये तब, उन्होंने सोचा कि जब

प्रत्येक विश्वविद्यालय में संस्कृत का भी पठन पाठन होगा, तब उन्होंने यह निर्णय लिया कि विभिन्न स्कूल कॉलेजों में देवनागरी लिपि के माध्यम से ही संस्कृत पढ़ाने की व्यवस्था करनी होगी। यहाँ की भाषा पैशाची प्राकृत से उत्पन्न हुई है, हिन्दी शौरसेनी से उत्पन्न हुई है। बहुत से लोग इस सच्चाई से भी परिचित नहीं हैं। यदि जानते हैं तो भाषा व लिपि को लेकर इतना विरोध नहीं होता। वस्तुतः जो लोग पढ़े लिखे शिक्षित एवं प्रतिष्ठित लोग हैं वे भी यह सब नही जानते हैं। यदि वे लोग यह सब जानते तो दूसरों को इसकी जानकारी निश्चित ही देते।

कुल्लू - १ नवम्बर १९७९

भाषा समस्या

हर एक जीवों में अभिव्यक्ति एवं प्रतीकीकरण की अपनी एक आन्तरिक प्रवृत्ति होती है। सृष्टि के क्रम विकाश में जब से कुछ विशेष प्रकार के उन्नत जीवों की उत्पत्ति हुई है तभी से ही ये जीवित सत्ताएँ अपनी अनुभूतियों को अपने भाव भंगिमाओं एवं शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर रही हैं। सामान्य विचार से इन सभी आन्तरिक भावों की शाब्दिक अभिव्यक्ति ही भाषा है। पक्षियों की चहचहाहट ही उनकी भाषा है। प्राणी तत्वविद् एवं पक्षी तत्वविदों ने इस सत्य को प्रमाणित किया है। वन्दरों की अपनी भाषा है। उनकी भाषा की शब्द संख्या २५० के करीब है। इस विश्वब्रह्माण्ड के सर्वश्रेष्ठ जीव मनुष्य के मामले मे इन शाब्दिक अभिव्यक्ति समूह ने एक सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित भाषा का रूप प्राप्त किया है। भाषा मनुष्य के आन्तरिक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। मनुष्य की प्राणवान सम्पदा भाषा ही उसका प्राण धर्म है, जो उसकी

सत्तागत विशेषता के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी है। चाहे शरीर - मानसिक दशा से हो या दार्शनिक दृष्टिकोण से ही हो, पृथ्वी के सभी - मनुष्यों की भाषा एक है। क्योंकि भाषा का जो मौलिक भाव अर्थात् अन्तर्निहित भाव है, वह भाषाओं में समान रूप से एक ही जैसा है। विभिन्न भौगोलिक परिवेश के अन्तर के कारण, विभिन्न जन समुदायों के वाक् यन्त्र की बनावट (संरचना) में थोड़ा बहुत अन्तर देखा जाता है और इसके ही कारण उनकी भाषाओं के बीच उच्चारण गत भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। जब लोगों के मन में पानी पीने की इच्छा उत्पन्न होती है, तब उस इच्छा को वे अपने वाक्यन्त्र की विशेषता के अनुसार अलग- अलग रूप में व्यक्त करते हैं। एक ही बात को कोई हिन्दी में "मैं जल पीऊँगा" कोई बंगला में "आमि जल खाबो" एवं उड़िया में "मू जल पिबि" कहता है। इनकी शाब्दिक अभिव्यक्ति चाहे जो भी हो किन्तु इन विभिन्न अभिव्यक्तियों के पीछे भाव एक ही है।

अनुक्रमणिका

आज पूरी दुनिया में इस प्रक्रिया से करीब ३०० भाषाओं का उद्भव हुआ है। पूरी मानव जाति की संस्कृति एक है, यद्यपि देश काल पात्र के भेद से उसकी अभिव्यक्ति के तारतम्य को कभी भी सांस्कृतिक भिन्नता नहीं कहते हैं, क्योंकि विश्व की सभी भाषाएँ मौलिके रूप से एक और अभिन्न हैं। इसीलिए सभी भाषाएँ एक समान महत्वपूर्ण एवं श्रद्धा की पात्र हैं। इन सबको दिमाग में रख कर ही हम लोगों को भाषा समस्याओं की तह में जाना होगा। प्रउत के मतानुसार निम्न लिखित आठ कारकों के होने पर ही किसी भी भाषा को पूर्ण भाषा का दर्जा प्राप्त होता है १) अपना कारक २) अपनी क्रिया रूप ३) सर्वनाम ४) शब्द कोष ५) अपनी उच्चारण रीति ६) लिखित या अलिखित साहित्य एवं लोक गीति ७) मानस बोधात्मक ध्वनिविज्ञान गत अभिव्यक्ति एवं तन्मात्रिक बोधात्मक ध्वनि विज्ञान गत अभिव्यक्ति ८) वाक्य संरचना रीति (वाक्य निर्माण विधि)

इन सभी में से यदि उच्चारण पद्धति या लिखित अथवा अलिखित साहित्य या अन्य कोई भी एक न हो, तो उसे, उपभाषा या खण्ड उपभाषा अथवा बोली के एक हिस्से के रूप में गिना जाएगा। इस दुनिया में इस तरह की अजस्र उप भाषाएँ हैं। उदाहरणस्वरूप भोजपुरी भाषा की ३ उपभाषाएँ, उड़िया भाषा की दो उपभाषाएँ एवं छत्तीसगढ़ी भाषा की तीन उपभाषाएँ हैं। मालाও দিশ্য কি কি সচাচী সোময়। জাত জাম

भारत की प्रायः सभी वर्तमान भाषाएँ प्राकृत संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं। प्राकृत का अर्थ है लोकप्रिय अर्थात जन सम्पर्कित। समय के प्रवाह में, प्राकृत संस्कृत से रूपान्तरित होकर भाषाएँ एवं अजस्र उपभाषाओं मे विभक्त हो गई। जिनसे ही, वर्तमान भारतीय भाषाएँ उत्पन्न हुई हैं। वे ६ भाषाएँ हैं- करमानी

१) पूर्वी भारत की मागधी प्राकृत इससे बांग्ला, उड़िया, मैथिली असमिया, भोजपुरी, मगही, नागपुरी (सादामी) छत्तीसगढ़ी इत्यादि भाषाओं की उत्पत्ति हुई। प्रा

२) मध्य एवं उत्तर भारत की ओर सौरसेनी प्राकृत इससे अवधी, बुन्देली, बघेली, ब्रज हरियाणवी की पैदाइश हुई है।

३) उत्तर-पश्चिम भारत की पैशाची प्राकृत पंजाबी, डोगरी, पहाड़ी इत्यादि की उत्पत्ति इससे हुई है।

४) सीमावर्ती उत्तर-पश्चिम भारत की पाश्चात्य प्राकृत से पश्तु एवं कश्मीरी भाषा की उत्पत्ति हुई है।

५) सिन्ध की सैन्धवी प्राकृत से सिन्धी एवं बलूची का उद्धव हुआ है। गाड

६) मध्य-पश्चिम भारत की मालवी प्राकृत से गुजराती, सौराष्ट्री आदि भाषाएँ

७) दक्षिण-पश्चिम महाराष्ट्र प्राकृत से मराठी का उद्भव हुआ है। उक्त प्रत्येक भाषा में ही आठों उपादान (संघटक) मौजूद हैं। इसलिए इनमें से प्रत्येक ही भाषा के रूप में स्वीकृति पाने के योग्य हैं। केवल इतना ही नहीं, इन भाषाओं में प्रत्येक ही एक हजार साल पुरानी हैं। बिहार एवं उत्तर प्रदेश में वहीं की अनेक भाषाओं को भूल से हिन्दी की उपभाषा कहा जाता है। इस तरह की व्याख्या केवल गलत ही नहीं है बल्कि जान-बूझकर के जनता को गुमराह करने का एक प्रयास मात्र है। भाषा-विज्ञान की कसौटी में अंगिका, मगही, भोजपुरी, मैथली, नागपुरी, अवधी एवं ब्रजभाषा की तुलना में हिन्दी वास्तव में कोई भाषा ही नहीं है। इसका कारण क्या है? हिन्दी की आयु केवल १०० वर्ष के करीब है। ब्रिटिश शासकों ने अपने शासन के दौरान दिल्ली के

आस पास की बहुत सी भाषाओं एवं उप भाषाओं को मिलाकर हिन्दी की उत्पत्ति की थी। भाषा के उपर्युक्त आठ उपादानों (घटकों) में से लोक साहित्य या लोक गीत हिन्दी में नहीं हैं। किन्तु अंगिका, भोजपुरी आदि जैसी प्रत्येक भाषा में लोक साहित्य तो है ही, दूसरे वाकी सातों उपादानों घटकों के होने से ये सभी (पूर्णरूपेण) भाषा हैं। सही बात तो यह है कि हिन्दी किसी की भी मातृ भाषा नहीं है। मातृभाषा का क्या तात्पर्य है ? मातृभाषा उस भाषा को कहते हैं, जिसमें हमलोग खुले माहौल में सहजतापूर्वक स्वतन्त्र होकर अपनी खुशी से अपने भावों को व्यक्त कर सकते हैं, उसी तरह से जैसे हम लोग अपनी माँ के साथ बातचीत के दौरान अपने भावों को व्यक्त करते हैं। उदाहरणस्वरूप पूर्णिया जिला के एक व्यक्ति, अपने निकटतम बन्धुओं के साथ अंगिका के अलावा और किसी भाषा में बातचीत नहीं करेंगे।

अब हम देखें कि, भाषा के साथ सामाजिक-आर्थिक प्रगति एवं संस्कृति के विकाश का कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है कि नहीं। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भाषा, जिस तरह से मनुष्य के अपने अन्तर्निहित भाव एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है। उसी तरह, वह मनुष्य के प्राण धर्म के साथ अपृथक रूप से जुड़ी हुई है। कोई व्यक्ति अपनी मातृभाषा में जिस तरह स्वतन्त्र एवं सहज रूप से अपने भावों को व्यक्त कर सकता है, वह किसी दूसरी भाषा में अपने भावों को उस तरह व्यक्त नहीं कर सकता है। मातृभाषा के अलावा अन्य किसी भाषा में बातचीत करने से उसे कठिनाई होती है। यदि दूसरी भाषा में बातचीत करने से लगातार उसे असहज होने को बाध्य होना पड़े, तो उसकी प्राणशक्ति निश्चित ही क्षति ग्रस्त होकर धीरे-धीरे कमजोर होती जाएगी। इस तरह की परिस्थिति में उस व्यक्ति एवं समूह में एक मनोवैज्ञानिक संकट उत्पन्न हो जाएगा। इसके कारण उनमें, सर्वप्रथम एक हीनमन्यता पैदा होगी जो, लोगों की मानसिक दुर्बलता का अन्यतम कारण है। जिसकी भाषा का अवदमन

होगा उसका नैतिक साहस, कर्म उत्साह एवं विरोध करने की शक्ति नष्ट हो जायेगी। अंत में उसमें एक पराजित मानसिकता उत्पन्न हो जायेगी जिससे समुदाय गत जीवनी शक्ति की जीव थोड़े ही समय में मृतप्राय हो जायेगी।

इसलिए, भाषा के अवदमन से मनुष्य के मन में एक घातक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। इस तरह के सतत् अवदमन के कारण लोग कभी भी अपना सिर ऊँचा करके खड़े नहीं हो सकेंगे एवं उन लोगों की स्वाभाविक रूप से अकाल मृत्यु हो जायेगी। इस विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अवदमित भाषा वाला समुदाय मानस-आर्थिक शोषण के जाल में फँस कर हमेशा के लिए आर्थिक रूप से पिछड़ जाएगा। यह बहुत ही दुःख की बात है कि भारत सहित पूरी दुनिया ही इस त्रासदी से ग्रसित होती जा रही है।

समाज का तात्पर्य ही है सभी लोगों का मिलित भाव से एक साथ चलना 'समानम एजति' लोगों के लिए यही उचित है कि जो पीछे रह गये हैं। उन्हें भी साथ लेकर चलने का पूरी तरह से प्रयास करें। यही समाज की विशेषता है। इसीलिए प्रउत की यह खुली उद्घोषणा है कि प्रत्येक प्रगतिशील समाज व्यवस्था में सभी भाषाओं को समान स्वीकृति सुयोग एवं अधिकार प्रदान करना होगा। इस बात को दिमाग में बैठा लेना है कि यह स्वीकृति (मान्यता) केवल सैद्धान्तिक रूप से पढ़ने-लिखने तक ही सीमाबद्ध होने नहीं दिया जाएगा बल्कि इसे व्यवहारिक बनाया जाएगा। अर्थात् दैनिक जीवन के सभी कार्यों में इसके व्यवहार को मान्यता देनी होंगी। जीवन के सभी क्षेत्रों यथा कार्यालय, न्यायालय, रेल्वे, हवाई अड्डा, वाणिज्य-व्यवसाय, सरकारी एवं गैर सरकारी सभी कार्यों को मातृभाषा के माध्यम से ही किया जाना चाहिए किन्तु शिक्षा से सम्बन्धी सभी विषयों में अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त और भी दूसरी भाषाओं के अध्ययन से होने वाले ज्ञान विस्तार में किसी भी प्रकार की

रोकथाम होना ठीक नहीं है। साधारणतया व्यावहारिक क्षेत्र में चाहे वह सरकारी हो या गैर सरकारी हो वहाँ कुछ विशेष या तकनीकी जरूरतों की वजह से केवल यदि मातृभाषा में ही शिक्षा की बाध्यता हो तो, भ्रम जनित गड़बड़ी उत्पन्न हो सकती है। वैसी परिस्थिति में एक सर्वमान्य भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।

समाज की अन्तर्निहित विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हुए यह ध्यान रखना उचित है कि सभी भाषाओं को विकशित होने के समान अवसर प्रदान हो एवं इन भाषाओं के बीच राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा के रूप में प्रचार व प्रसार को लेकर कोई विवाद होना उचित नहीं है। निश्चित ही, यह सभी कुछ लोगों की शुभेच्छा एवं शुभ बुद्धि पर निर्भर करता है। सच्चाई यही है कि दुनिया के अधिकांश देश ही बहुभाषी हैं किन्तु वहाँ के काम-काज स्वीटजरलैण्ड के अनुरूप ही ठीक-ठाक ढंग से हो रहे हैं। इलाहाबाद से कोई व्यक्ति यदि कलकत्ता

रहने के लिए आये और उन्हें उद्घोषणा की घोषणा, नामफलक, प्रचार विज्ञापन पट्टिका, दुकान की सूचना पट्टिका, कैश मेमो (Cash Memo) होटलों की व्यंजन सूची, कार्यालय के कागज-पत्र सभी में केवल बंगला, भाषा ही देखने को मिले, तो उन्हें पहले-पहल बहुत ही परेशानियों का सामना करना पड़ेगा। किन्तु यह भी देखना होगा कि यदि वे फ्रान्स के किसी शहर में किसी कार्य हेतु जाएँगे, तो उनको वहाँ भी इन्हीं परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। इस परिस्थितियों में यदि वे थोड़े समय में ही स्थानीय भाषा सीखने की चेष्टा करें तो उस भाषा के साथ-साथ उस स्थान के सभी कुछ के प्रति उनके मन में श्रद्धा एवं प्रेम भाव जाग उठेगा। इस तरह के विचारों एवं अनुभवों के सच्चे आदान-प्रदान के माध्यम से आपसी भाईचारा तेजी से बढ़ता जायेगा तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में भी इसी तरह विचारों एवं संस्कृति में आदान-प्रदान के परिणाम. वरूप आपसी भाईचारे में और भी तेजी आयेगी।

इसलिए इस परिस्थिति में भाषा जैसे जटिल समस्या के समाधान करने के लिए सरकार की ओर से हड़बड़ी करना ठीक नहीं है। विशेषकर भारत जैसे देश में, जहाँ बहुत सी भाषाओं एवं संस्कृति की विचित्रता मौजूद हो, वहाँ ठीक तरह से विचार न करके, हड़बड़ी से कुछ कर देना बेवकूफी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रत्येक भाषा को संवैधानिक मान्यता एवं समान महत्त्व जरूर ही देना होगा। देखना होगा कि जिस भाषा को जनसंपर्क के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई है, वह भाषा किसी भी प्रकार से किसी अन्य भाषा को अवदमित न कर सके। भारत जैसे बहुभाषी देश को एक ऐसी सर्वजन स्वीकृत भाषा को जनसम्पर्क की भाषा के रूप में व्यवहार करना उचित है। जिस पर देश की सभी भाषाएँ आधारित हों। संस्कृत जैसी किसी ऐसी भाषा को जन सम्पर्क की भाषा के रूप में व्यवहार करना उचित है। जो किसी एक विशेष भाषा के प्रति पक्षपात नहीं करेगी न तो दूसरी भाषाओं को अवदमित करेगी। समय के प्रवाह में विभिन्न भाषाओं के विकाश के दौरान एक राष्ट्रीय भाषा विकशित हो

जायेगी जिसे सहजतापूर्वक सभी स्वीकार करेंगे। जब तक स्वाभाविक रूप से ऐसी अवस्था नहीं आ जाती है, तब तक सभी मातृभाषाओ की सच्ची प्रतिष्ठा एवं स्त्रीकृति के साथ-साथ अंग्रेजी को ही जनसम्पर्क के भाषा के रूप में मान्यता प्रदान करना उचित है।

हम लोगों को यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐतिहासिक एवं दूसरे विभिन्न व्यवहारिक कारणों से आज की अँग्रेजी केवल इंग्लैंड की ही भाषा नहीं है। वह आज विश्व भाषा के रूप में मान्य हो रही है। दुनिया के सभी लोगों का ही आज इस अंग्रेजी भाषा के प्रति समान अधिकार है। भविष्य में कोई भी भाषा जन सम्पर्क की भाषा के रूप में मर्यादा प्राप्त कर सकती है। किन्तु आज अंग्रेजी को ही जन सम्पर्क की भाषा के रूप में स्वीकार करना होगा।

भाषा-निर्वाचन के विषय में इस प्रकार की स्वाभाविक प्रक्रिया को न मानकर, कोई यदि जोग् जबरदस्ती से किसी भी भाषा को अन्य भाषाओं पर थोपने की कोशिश करे, तो विभिन्न समुदायों के बीच आपसी विद्वेष एवं उत्तेजना की वृद्धि से देश विखण्डन के कगार पर पहुँच जाएगा। इस आत्मघाती कदम से भाषावाद के उग्र समर्थन को और बढ़ावा मिलेगा, जो समाज के स्वस्थ परिवेश को कलुषित कर देगा।

इसलिए भाषा समस्या के समाधान की यथार्थ नीति एवं कार्य पद्धति के निर्धारण हेतु दूर दृष्टि, सहनशीलता, व्यवहारिक ज्ञान, विश्वप्रेम, उचित आदर्श, आन्तरिकता एवं पारस्परिक सद्भावना की जरूरत है। और इन सभी पाथेय को साथ लेकर चलने से केवल भाषा समस्या ही नहीं हम लोगों के संघर्षमय जीवन की किसी भी कठिन-से-कठिन समस्या का समाधान आसानी से हो जायेगा तथा हम लोगों का समग्र अस्तित्व विजय के गौरवमयी प्रकाश पुञ्ज से दमकने लगेगा।

अनुक्रमणिका

कलिकाता - १९८१

सामाजिक-आर्थिक आन्दोलन

पृथ्वी के प्रायः सभी देशों में ही, आर्थिक रूप से विशेष सुविधा भोगी या अगड़े (एडवान्स्ड) जन समुदाय के लोग आर्थिक रूप से पिछड़े दूसरे जन समुदायों के लोगों का शोषण निर्दयतापूर्वक करते हुए, उनकी आवाज को दबा करके, उनके भविष्य में उन्नति के सभी दरवाजे बन्द किये दे रहे हैं। इस उत्पीड़न एवं शोषण की समाप्ति हेतु शोषित जनता को, आन्दोलन शुरू करना होगा, जिससे उसके कदम आगे की ओर

तेजी से बढ़ सकें एवं सभी प्रकार के शोषणों के विरुद्ध संग्राम करके आर्थिक स्वतन्त्रता अर्जित कर सके। इस प्रकार के आन्दोलन की आवश्यकता को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता है। क्योंकि यह आन्दोलन सच्ची मानवता पर आधारित है। इस पथ से विमुख हो जाना ही अस्वाभाविक एवं मानवता विरोधी है। वस्तुतः इस तरह के आन्दोलनों के विरोध का अर्थ है, शोषकों एवं प्रतिक्रिया वादियों के स्वार्थ की रक्षा करना।

किसी के जाति-वर्ण-धर्म का विचार किए बिना सभी शोषितों की हित कामना हेतु प्रउत सभी प्रकार के शोषणों का विरोध करता है और करेगा। किन्तु आज जिस तरह से पूरी दुनिया में गरीबी ही मुख्य समस्या है इसलिए प्रउत आर्थिक शोषण के विरुद्ध जन संघर्षों को पहली प्राथमिकता देता है।

गरीबी एवं उसके साथ दूसरे सभी महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु आज पूरे विश्व में शोषण

विरोधी जनान्दोलन शुरू करना उचित है। इस तरह के आन्दोलन, सभी प्रकार के आर्थिक, मानसिक, सांस्कृतिक, एवं मानस-आर्थिक शोषणों का ही विरोध नहीं करेंगे इसके साथ-ही-साथ जनता के सर्वतोन्मुखी कल्याण को त्वरित करने के उद्देश्य से उपर्युक्त व्यावहारिक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी करेंगे।

शोषणों के निर्मूलन एवं न्याय भित्तिक कल्याण मूलक समाज के निर्माण हेतु निम्नलिखित ६ विषयों पर विशेष ध्यान देना होगा.गी

१) स्थानीय लोगों को १००% रोजगार

२) अधिकतम औद्योगिक विकाश

३) बाहरी उत्पादों के आयात को टालना

४) स्थानीय भाषा को ही शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार करना

५) स्थानीय भाषा को जन सम्पर्क की मुख्य भाषा का दर्जा

६) स्थानीय सामाजिक-आर्थिक दावा

स्थानीय लोगों को शत-प्रतिशत रोजगार सर्वप्रथम, स्थानीय लोगों को शत-प्रतिशत रोजगार प्रदान करना अत्यावश्यक है। सभी लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की यथा सम्भव पूर्ति हेतु, उपयुक्त भोजन, वस्त्र-आवास, शिक्षा एवं चिकित्सा को सुनिश्चित करना उचित है। जनता को शत-प्रतिशत रोजगार की व्यवस्था उनके मौलिक अधिकार के रूप में प्रदान करनी होगी, दान-खैरात के रूप में नहीं। आजकल पूरी दुनिया में ही वेरोजगारी एक जटिल समस्या बन चुकी है तथा स्थानीय लोगों को शत-प्रतिशत रोजगार देने की नीति ही इस समस्या समाधान का एक मात्र रास्ता है।

स्थानीय उन्हीं लोगों को कहेंगे, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत सामाजिक-आर्थिक हित को उस क्षेत्र के हित के साथ मिला दिया है, जिस क्षेत्र में वे निवास करते हैं। अर्थात उनकी जाति-

वर्ण-धर्म-मातृभाषा जन्म स्थान जो भी क्यों न हो, इन विषयों पर विचार न करके मुख्य रूप से केवल इसी विषय पर विचार किया जाएगा, कि उन्होंने अपने खुद के स्वार्थ को उस सामाजिक आर्थिक क्षेत्र के हित के साथ मिला दिया है कि नहीं। जो लोग एक सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) से रोजगार द्वारा कमाई करके रुपये पैसे किसी दूसरे सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में खर्च करते हैं, उन लोगों को ही बाहरी या अस्थानीय लोग कहना चाहिए क्योंकि उन लोगों के यह क्रिया-कलाप उस सामाजिक-आर्थिक परिक्षेत्र में कार्यरत लोगों के स्वार्थानुकूल नहीं है। इससे उस विशेष परिक्षेत्र के आर्थिक विकाश में उपयोगी मूलधन ही बाहर चला जाता है और इस वजह से उस परिक्षेत्र के आर्थिक विकाश को नुकसान होता है।

पूँजीपति लोग व्यष्टिगत एवं समूहगत रूप से आज घातक शोषक बन चुके हैं। पूरे दुनिया से वे लोग लगातार स्थानीय अर्थव्यवस्था (आर्थिक सम्पदा) का शोषण करने

आर्थिक सम्पदा को उस सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) से बाहर भेज रहे हैं। प्रायः सभी स्थितियों में ही वे लोग जो भी मुनाफा कमाते हैं उसे; वे लोग स्थानीय परिक्षेत्र से बाहर खर्च करते हैं एवं बाहर के स्टाक होल्डर्स एवं मुख्य कम्पनी में भेजते हैं। इस आर्थिक शोषण को रोकने का सबसे उत्तम तरीका यही है कि दुनिया के प्रत्येक देश से राष्ट्रीय सट्टा बाजार (शेयर बाजार) को तत्काल बन्द करवा दिया जाय।

स्थानीय जनता को शत-प्रतिशत (पूर्ण रूपेण) रोजगार के अवसर सृष्ट करने में प्रउत अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक योजनाओं की वकालत करता है। अल्पकालिक योजना के तहत लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं पर आधारित श्रमिक बहुल उद्योगों (Labour intensive industry) की स्थापना तुरन्त करना उचित है। जहाँ इस तरह के उद्योग पहले से ही हैं, वहाँ इनकी उत्पादन क्षमता बढ़ाने की तकनीक को और भी उन्नत करना उचित है। इन उद्योगों को निश्चित ही उपयोग प्रेरित

(consumption motive) होना उचित है। इन राष्ट्रीय उद्योगों को वाजिब (उचित) मुनाफा प्राप्त करने का मौका मिलना उचित है, जिससे इन सभी उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियों की क्रय क्षमता में वृद्धि हो सके तथा उन के अस्तित्व एवं विकाश को सुनिश्चित किया जा सके। जैसे उत्तर-विहार में जहाँ उद्योगों का नामो-निशान ही नहीं है, वहाँ बेरोजगारी समस्या के समाधान के लिए उस परिक्षेत्र में सभी प्रकार के कृषि आधारित उद्योगों (Agrico-industry) एवं कृषि सहायक उद्योगों (Agro-industry) को विकशित करना जरूरी है।

दीर्घकालीन योजना के तहत, पूँजी बहुल उद्योगों (capital intensive industry) को विकशित करना उस सामाजिक-आर्थिक परिक्षेत्र की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए जरूरी है। प्रउत की आर्थिक योजनाएँ त्रिस्तरीय हैं (१) लघु (छोटे) उद्योग जो व्यष्टिगत मालिकाना हक से परिचालित होंगे (२) मध्यम पैमाने के उद्योग ये सभी सहकारी व्यवस्था से

परिचालित होंगे। (३) मूल उद्योग ये सभी स्थानीय सरकार द्वारा परिचालित होंगे।

इस तरह की आर्थिक संरचना आत्मनिर्भरता अधिकतम उपयोग, विवेकपूर्ण वितरण, विकेन्द्रीकरण, वैज्ञानिक पद्धतिओं का सही प्रयोग एवं आम जनता के जीवन स्तर के प्रगतिशील वृद्धि पर आधारित होगी। क्रमशः नये-नये उद्योगों की स्थापना नई-नई वस्तुओं का उत्पादन, अत्याधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों पर आधारित नई-नई तकनीकी के प्रयोग द्वारा अर्थ व्यवस्था की विकाशोन्मुखता को और बढ़ाया जा सकता है। दीर्घकालिक आर्थिक योजना के तहत सभी लोगों को रोजगार प्रदान करने हेतु दैनिक काम के समय को प्रगतिशील रूप से कम किया जा सकता है।

बेरोजगारी समस्या के समाधान की अल्पकालिक या दीर्घ कालिक योजनाओं में बौद्धिक एवं शारीरिक श्रमिकों की

बहुलता एवं कमी के विषय में सही समझ होनी चाहिए। जैसे भारतवर्ष में उत्तर-बिहार की अर्थव्यवस्था पूर्णरूपेण कृषि आधारित होने से वहाँ शारीरिक श्रमिकों की बहुलता हो जाती है जबकि कलिकाता में बौद्धिक श्रमिकों की बहुलता है। दोनों स्थानों में ही बेरोजगारों की बहुत ही ज्यादा संख्या है। दुनिया के ज्यादातर देशों में ही, जहाँ बेरोजगारी खूब ज्यादा है। उन सभी क्षेत्रों में शारीरिक श्रमिकों की बहुलता हो जाती है। इसलिए उन सब स्थानों में ज्यादा रोजगार के अवसर सृष्ट करने के लिए श्रमिक बहुल उद्योगों (Labour Intensive Indurstry) की स्थापना करना उचित है। किसी भी विकशित हो रहे उद्योगों में जब श्रमिकों की संख्या कम हो तब प्रशिक्षण के द्वारा उनको कार्यानुरूप दक्ष करके काम में लगाया जा सकता है।

विशेष करके गाँव के लोगों की बेरोजगारी दूर करने का और भी उपाय, वनक्षेत्र, बाजारक्षेत्र जगह के उपयोग से उनको आर्थिक आत्मनिर्भर बनाना है। सभी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों

(इकाइयों) में ही, वहाँ की भू संरचना, मिट्टी एवं परिवेश के अनुसार, विभिन्न प्रकार के पेड़ - पौधों एवं फसलों के वृद्धि की पर्याप्त सम्भावना बनी हुई है। नये -नये पेड़ - पौधे लगाकर सूखे एवं बंजर क्षेत्र को उर्वर बनाया जा सकता है। कर्न एवं पुरानिका जैसे बहुत से पेड़ हैं, जो बादलों को आकर्षित करने की क्षमता रखते हैं। इन सब पेड़ - पौधों की सहायता से किसी भी परिक्षेत्र में वर्षा एवं वातावरण में आमूल -चूल परिवर्तन किया जा सकता है। विभिन्न पौधों एवं जड़ी बूटियों के उत्पादन क्षमता के आधार पर कृषि आधारित एवं कृषि सहायक उद्योगों के विकाश से नई नई वस्तुओं के उत्पादन के रोजगार ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या के निराकरण में सक्रिय भूमिका निभाएँगे। इस तरह पेड़ - पौधों के सही व्यवहार से, वैकल्पिक कार्यक्रम की संभावनाओं के बहुमुखी क्षितिज खुल जायेंगे, जो वास्तव में नव्य मानवतावाद की ही एक अन्यतम व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

२) अधिकतम औद्योगिक विकाश प्रउत का दूसरा वक्तव्य है कि स्थानीय परिक्षेत्र में कच्चा माल की सहज प्राप्तता

एवं उस परिक्षेत्र के लोगों के लिए आवश्यक उपभोग्य वस्तुओं के अनुसार, अधिकतम औद्योगिक विकाश जरूरी है। यह नीति, बाहरी लोगों के हाथों से आर्थिक शक्ति को छीनकर स्थानीय जनता के हाथों सौंप देने से उस सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) की आर्थिक संभावनाओं का अत्यधिक विकाश संभव होगा। प्रउत की अर्थनीति के अनुसार कृषि के तरह ही अधिकांश उद्योगों का संचालन, उत्पादक सहकारी समितियों एवं उपभोक्ता सहकारी समितियों के द्वारा ही होना उचित है। इसके प्रभाव से एक नये प्रकार की सामाजिक चेतना या सामाजिक शक्ति उत्पन्न होगी। इससे पूँजीपतियों के हाथों से आर्थिक शक्ति; उन लोगों के हाथों चली आयेगी, जो उन उद्योगों में शारीरिक या बौद्धिक श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं इससे उद्योगों का सर्वाधिक विकाश सम्भव होगा फार के काम

इस नीति से बहुत उपसिद्धान्त उत्पन्न होते हैं। पहला सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रपेड़ (इकाई) में स्थापित सभी उद्योगों

को बाहर से कच्चा माल न लाकर, स्थानीय कच्चा माल का उपयोग करना उचित है। कच्चा माल ही उद्योगों से उत्पादित वस्तुओं का मौलिक उपादान या सम्पदा हैं। जैसे रबर उद्योग के लिए रबर के पेड़ों का रस ही, उस उद्योग का कच्चा माल है। यदि स्थानीय भू- संरचना रबर की खेती के अनुकूल है तो इस कच्चा माल की परिधि में रबर उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं, अथवा, विकल्प के रूप में कोई भी रासायनिक द्रव्य प्राप्त होने से, कृत्रिम रबर के टायरों का उद्योग स्थापित किया जा सकता है।

उद्योगों को स्थानीय कच्चा माल उपयोग करने के औचित्य के अनेक कारण है। पहला सभी क्षेत्रों (इकाइयों) की सामाजिक-आर्थिक सम्भावना एक समान नहीं है। पादप जातीय कच्चा माल के तरह ही, विभिन्न क्षेत्र (इकाई) स्वाभाविक रूप से ही भिन्न -भिन्न कच्चे माल के उत्पादन के लिए अनुकूल है। वे सभी उद्योग यदि स्थानीय कच्चा माल का आधार पाकर

स्थापित हो, तो सस्ती वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है। उसके अलावा कच्चे माल के उत्पादन स्रोत के पास स्थापित होने के कारण भी उन सभी उद्योगों को कच्चे माल की नियमित आपूर्ति होती रहेगी। इससे ये सभी सहजतापूर्वक आत्मनिर्भर हो जायेंगे। जहाँ बाहर से कच्चा माल मँगाना होता है वहाँ यह सब फायदे नहीं होते हैं।

दूसरा - कच्चे माल के उत्पादकों का विशेषकर सहकारी उत्पादक लोग, अपने उत्पाद का बाजार पास ही उपलब्ध होने से विशेष रूप से लाभान्वित होंगे।

तीसरा - इन सभी उद्योंगो के पास ही पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध होने में ये सभी उद्योग सुरक्षित निश्चिन्त होकर अपने भविष्य की योजनाएँ बनाने में समर्थ होंगे।।

चौथा - बहुत बड़े-बड़े पूँजीपति लोग, उस परिक्षेत्र की अर्थनीति एवं राजनीति को दुष्प्रभावित करके, स्थानीय कच्चे माल पर आधारित उद्योगों के विकाश में बाधा उत्पन्न करते हैं। वे लोग स्थानीय कच्चे माल से विनिर्मित वस्तुओं को उसी क्षेत्र के बाजारों में बेचकर, वहाँ को जनता का वैसे ही शोषण करते हैं, जैसे आस्ट्रेलिया, जापान के उद्योगों से उत्पादित ऐसी बहुत सी वस्तुओं को, वहाँ से आयात करता है जिनका कच्चा माल आस्ट्रेलिया से ही वहाँ जाता है। स्थानीय बाजारों पर पूँजीपतियों के व्यष्टिगत एवं समूहगत आधिपत्य का अवसान होगा। इससे उस परिक्षेत्र के आर्थिक विकाश के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण मूलधन का बाहर जाना भी बन्द हो जायेगा।

आलोच्य नीति का दूसरा अनुसिद्धान्त है कि स्थानीय कच्चे माल का निर्यात बिल्कुल ही उचित नहीं है। स्थानीय कच्चे माल का मूल्य, निर्यात बाजार में बहुत ही उठता – गिरता रहता है। क्योंकि स्वार्थी पूँजीपति अथवा सट्टा कारोबारी लोग

अबाध मुनाफा लूटने के उद्देश्य से ही कच्चे माल के बाजार को अपने नियन्त्रण में रखते हैं। वाणिज्य के क्षेत्र में इस बेइमानी को दूर करने के लिए दुनिया में जहाँ तक सम्भव हो मुक्त व्यापार की नीति को लागू करना उचित है।

प्रायः दूसरी तरफ, कच्चे माल की कीमतों के हेर फेर की अपेक्षा उद्योग निर्मित वस्तुओं की कीमतों के हेर-फेर को रोकने का अवसर कम रहता है। स्थानीय रूप से उत्पादन होने पर, वह सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई), अपने संरक्षित वित्त कोष को सुरक्षित रख सकेगा, दूसरा कारण स्थानीय जनता की क्रय शक्ति में बढ़ोत्तरी होती है।

तीसरा उपसिद्धान्त है कि स्थानीय परिक्षेत्र में किसी वस्तु के औद्योगिक उत्पादन हेतु आवश्यक कच्चे माल की उपलब्धता नहीं होने पर, उस वस्तु को बाहर से आयात करने की अनुमति दी जा सकती है। बाहर से औद्योगिक उत्पादों के

आयात करने का तात्पर्य ही है स्थानीय पूँजी का दूसरे सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) गे स्थानांतरित हो जाना। पूँजी का बाहर जाना किसी भी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) के आर्थिक विकाश के लिए हमेशा ही नुकसानदायक है। इसलिए, अनावश्यक आयात को सभी समय तौलना उचित है। सभी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों (इकाइयों) के बीच व्यापारिक लेन-देन के लिए विनिमय पद्धति (barter) सबसे अच्छी व्यवस्था है। क्योंकि, इस पद्धति से किसी के नुकसान की सम्भावना नहीं रहती है। विशेषकर के जिन सभी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों (इकाइयों) में बेचने योग्य वस्तुएँ संख्या में कम होने पर भी मात्रा में बहुत ज्यादा होती हैं। उन सभी क्षेत्रों (इकाइयों) के वैदेशिक व्यापार में वस्तु विनिमय के रूप में लेन-देन करना बहुत ही लाभदायक है।

इसी तरह, जहाँ स्थानीय कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है उन परिक्षेत्रों में स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति

हेतु, उद्योगों की स्थापना करनी होगी तथा सम्भव होने पर ही अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादों को निर्यात किया जाएगा। कच्चे माल की सहज उपलब्धता से ही स्थानीय उद्योग दीर्घ काल तक चलते रह सकते हैं।

३) बाहरी वस्तुओं के आयात को टालना-प्रउत का तीसरा वक्तव्य है कि अपने क्षेत्र (इकाई) में ही, जिन सभी वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है, उन सभी वस्तुओं का आयात बाहर से करना उचित नहीं है। इसका यही अर्थ हुआ कि क्षेत्रीय लोगों के लिए यह उचित है कि अपने औद्योगिक उत्पादों की खरीद करके वे अपने क्षेत्रीय उद्योगों की सहायता करें। यद्यपि उत्पादन के शुरूआती दौर में दूसरे सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों (इकाईयों) की उत्पादित वस्तुओं की तुलना में स्थानीय औद्योगिक उत्पाद अपेक्षाकृत कुछ कम बढ़िया होने पर भी उसे ही खरीदना उचित है, क्योंकि इससे उन क्षेत्रीय उद्योगों की उन्नति एवं आर्थिक स्थायित्व सुनिश्चित होगा। स्थानीय जनता

के लगातार सहायता के सुफल से ऐसा एक दिन आयेगा, जब वे उद्योग भी अपेक्षाकृत और ज्यादा बढ़ियाँ दर्जे की वस्तुओं के उत्पादन में सक्षम होंगे। किन्तु जनता यदि, राजनैतिक आर्थिक, मानस-आर्थिक शोषणों के फेर में पड़ कर स्थानीय वस्तुओं की अपेक्षा दूसरे सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों की वस्तुएँ खरीदने को ज्यादा उतावली होती है, तो स्थानीय उद्योग समूह परिस्थितियों के दबाव में पड़कर बंद हो सकते हैं।

परिणामस्वरूप बेरोजगारी के साथ-साथ बहुत प्रकार की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ दृष्टिगत होने लगेगी। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो, जनता, बाहरी औद्योगिक उत्पादों की अपेक्षा, स्थानीय वस्तुएँ ही खरीदने को ज्यादा इच्छुक हो। इसके लिए व्यापक जनमत निर्माण करना होगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यापक जन आन्दोलन इस तरह से शुरू करना होगा, जिससे स्थानीय जनता की आर्थिक-चेतना का विकाश हो सके।

अनुक्रमणिका

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतवर्ष में पर्याप्त मात्रा में नमक रहने के बावजूद इस देश के बाहर से नमक आयात किया जाता था। तब भारतीय नेताओं ने असहयोग आन्दोलन के माध्यम से ब्रिटेन में निर्मित नमक का बहिष्कार एवं भारतीय नमक के उत्पादन की व्यवस्था की थी। इस आन्दोलन ने विपुल जन समर्थन प्राप्त करते हुए ब्रिटिश शोषण के सम्बन्ध में जनता को सतर्क किया था। इस आन्दोलन के वजह से ही रोजमर्रा की वस्तु नमक का मूल्य कम हुआ ही, स्थानीय नमक उद्योगों की स्थापना से जनता के रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हुई। इस तरह इतने दिन से, जो धन इस देश से बाहर जाकर ब्रिटेन के नमक उत्पादकों के खजानों में जमा होता था, उस धन का बाहर जाना बन्द हो गया। इसके अलावा, इससे ब्रिटिश - शोषण के सम्बन्ध में इस देश की जनता की चेतना उन्नत हुई तथा ब्रिटिश विरोधी एवं ब्रिटिश समर्थक दो क्षेत्रों मे स्पष्ट रूप मे विभाजित हो गई।

४) स्थानीय भाषा को ही शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार करना प्रउत का चौथा वक्तव्य है। शिक्षा क्षेत्र में प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय पर्यन्त क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से ही शिक्षा प्रदान करना उचित है। लोगों की सामूहिक अभिव्यक्ति को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति को व्यक्त करने का सर्वोत्तम माध्यम भाषा है। सभी सामाजिक-आर्थिक समूहों को चाहिए कि प्रत्येक भापा को ही उत्साह प्रदान करे। तभी तो स्थानीय जनता में आत्म सम्मान एवं आत्म विश्वास का भाव जागृत करने के लिए प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) में स्थानीय भाषा को ही शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार करना उचित है। हर एक क्षेत्र (इकाई) को अपने-अपने सकारात्मक संस्कृति वैशिष्ट्य को उत्साहित करना स्थानीय परिक्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकाश के लिए एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण अवयव है। इसके अतिरिक्त जनता के बीच में एकता एवं सौहार्द भाव जागृत करने में इसकी जरूरत है।

स्थानीय भाषा के अलावा दूसरी भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार करने का अर्थ स्थानीय भाषा को अवदमित एवं अवहेलित करना ही है। इसके कारण ही स्थानीय संस्कृति भी अवदमित होती है। परिणामतः उस समुदाय में नैतिक पतन, हीनमन्यता का भाव एवं पराजित मानसिकता दृष्टिगोचर होने लगती है। यदि किसी जन समुदाय के भावात्मक विरासत (Sentimental legacy) पर आघात किया जाए, तो वह जन समुदाय सहज ही में निहित स्वार्थियों के आर्थिक राजनैतिक एवं मानस-आर्थिक शोषणों का शिकार हो जाता है। ब्रिटिश, फ्रेन्च, ड्च, स्पेन, अमेरिकन एवं दूसरे उपनिवेशिक शक्तियों ने इसी सांस्कृतिक अवदमन के कौशल का सहारा लिया था। अभी यदि स्थानीय जनता अपने सांस्कृतिक विरासत के प्रति सचेत हो जाए तभी वे लोग सामाजिक-आर्थिक आत्मनिर्भरता पाने में बाधक; सभी हीनमन्यताओं के भाव से मुक्त हो सकेंगे।

प्राथमिक से विश्वविद्यालय तक स्थानीय भाषा में ही शिक्षा प्रदान होने से, शैक्षणिक प्रतिष्ठानों पर स्थानीय जनता का नियंत्रण स्थापित हो सकेगा एवं इसी रूप से शोषकों द्वारा परिचालित शिक्षा थोपी गई, अपसंस्कृति, कुसंस्कारों आदि से भी वे सभी मुक्त हो सकेंगे।

उदाहरणस्वरूप बंगाल एवं छत्तीसगढ़ में बहुत से शैक्षणिक प्रतिष्ठान बाहरी लोगों द्वारा नियंत्रित हैं जो लोग इन सभी शैक्षणिक संस्थानों में बहुत गलत शिक्षा देते आ रहे हैं। बहुत से अविकशित एवं विकाशशील देशों में इसी तरह का नजारा नजर आ रहा है।

५) जन संपर्क की मुख्य भाषा के रूप में स्थानीय भाषा का व्यवहार प्रउत का पाँचवा वक्तव्य है। किसी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र (इकाई) में सरकारी और गैर सरकारी संस्थानों एवं कार्यालयों में स्थानीय भाषा को जन संपर्क की भाषा के रूप में

प्रयोग करना उचित है। भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के दौरान मुम्बई, कलिकाता, दिल्ली एवं चेन्नई में ही सभी सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों को केन्द्रित किया गया था। अँग्रेजों के साथ साँठ-गाँठ करके भारतीय पूँजीपति लोग स्थानीय अर्थव्यवस्था को जर्जर करने एवं उस पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने के लिए बाहर से मजदूरों एवं प्रबन्धकों को लाये थे इन्हीं सब स्थानों में, स्थानीय जनता के ऊपर अंग्रेजी भाषा को ही जबरदस्ती थोप दिया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर ब्रिटेन का सांस्कृतिक आधिपत्य करने के लिए लाखों-लाख लिपिकों को अंग्रेजी की शिक्षा प्रदान की गई थी।

६) स्थानीय सामाजिक-आर्थिक दावा: प्रउत का सामाजिक-आर्थिक आन्दोलन अन्ततोगत्वा स्थानीय क्षेत्रगत दावेदारियों को महत्त्व देता है। सभी जगह स्थानीय परिस्थितियों को सतर्कता के साथ अवलोकन करना होगा तथा स्थानीय जरूरतों को नजर में रखकर ही योजनाएँ निरूपित करनी होगी

उदाहरणस्वरूप, जर्मनी एवं आयरलैण्ड के सामाजिक-आर्थिक समूहों को उनके बँटे हुए देश को एक करने की दावेदारी ही सबसे ज्यादा महत्त्व प्राप्त करेगी। दूसरे सामाजिक-आर्थिक परिक्षेत्र के स्थानीय लोग, नये-नये कदम के रूप में, कच्चे माल की ढुलाई की सुविधा हेतु पुल (सेतु) एवं सड़कों के निर्माण की दावेदारी कर सकते हैं। अवश्यम्भावी रूप से, कृषि आधारित क्षेत्रों में साल में कई फसलों के उत्पादन हेतु आवश्यक सिंचाई के पानी के लिए छोटी-छोटी सिंचाई की योजनाओं की तत्कालीन जरूरतें हो सकती हैं। इसी तरह, प्रउत के सामाजिक-आर्थिक आन्दोलन में स्थानीय क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकाश को शीघ्र पूरा करने वाली सभी आवश्यक दावेदारियाँ इसी अन्तिम विषय में सम्भावित हैं।

कलिकाता, ३१ दिसम्बर १९८४

जनसंख्या वृद्धि एवं नियन्त्रण

आज दुनिया में मानव समाज का आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश अत्यन्त अस्थिर एवं अव्यवस्थित है। इस अस्वाभाविक परिस्थिति में, जनसंख्या वृद्धि को मानव समाज के अस्तित्व के लिए भयावह विभीषिका के रूप में पेश किया गया है। वास्तव में इस तरह का प्रचार निहित स्वार्थियों द्वारा गढ़े गये घृणित षड्यन्त्र के अलावा और कुछ नहीं है। कोई भी समस्या, उसे हल करनेवाली मानवीय क्षमता से बड़ी नहीं है। दूसरी सभी समस्याओं के तरह ही जनसंख्या बढ़ोत्तरी की इस तथाकथित समस्या का भी नियन्त्रण एवं निराकरण भी अच्छी तरह से किया जा सकता है।

विकाश की स्वाभाविक धारा में जीवन एवं मृत्यु सृष्टि की कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है। हमारे समाज में नये

अनुक्रमणिका

बच्चे का जन्म स्वाभाविक रूप से उनके माता-पिता एवं पारिवारिक सदस्यों को अति प्रसन्नता प्रदान करता है। दुर्भाग्य से सरकारी एवं सार्वजनिक जीवन से जुड़े हुए ऐसे कुछ लोग हैं, जो वर्तमान जन्म दर को समाज का अभिशाप समझते हैं। इस तरह का नकारात्मक प्रयास, निश्चित रूप से वैज्ञानिक ज्ञान एवं उन्नत बौद्धिक शक्ति प्राप्त मानवता का अपमान है।

क्या वास्तव में ही जनसंख्या की कोई समस्या है? इस समस्या को दो विशेष एवं अनिवार्य दृष्टिकोण से विचार करना होगा. १) खाद्य की उपलब्धता (availability) एवं व्यवहार योग्य भूमि का परिमाण (availability of space) आज लोगों के पास अपने भोजन की व्यवस्था हेतु पर्याप्त संसाधन हैं। दुनिया की इस वर्तमान जनसंख्या की तुलना में और भी बहुत बड़ी आबादी को खिलाने में हमारी यह पृथ्वी सम्पन्न व सक्षम है। किन्तु केवल मैत्रीपूर्ण सहयोग, सामूहिक प्रयास, उचित आदर्श एवं सही योजना के अभाव में, मानव समाज बहुत से झगड़ालू

दलों एवं उपदलों में विभक्त हो गये हैं। तथा बहुत से गरीब एवं अमीर देशों की रचना हुई है। इस विघटनकारी मनोवृत्ति की वजह से मनुष्य आज अपनी जरूरत भर भोजन के उत्पादन में भी असमर्थ है। यह दुःख की ही बात है कि दुनिया में सभी लोगों को पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने के संसाधन तो हैं पर वर्तमान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के तौर-तरीकों में मौजूद त्रुटियों के कारण सभी को खाद्यापूर्ति सम्भव नहीं हो पा रही है।

इसके अलावा पृथ्वी की वर्तमान भूमि को सही ढंग से उपयोग किया जाय तो पृथ्वी ग्रह पर जगह की कोई कमी नहीं है। क्योंकि आज की दुनिया सामाजिक-आर्थिक एवं बहुत तरह के राजनैतिक मनमानी प्रतिबन्धों के प्रयोग तथा विभिन्न हानिकारक पाखण्डों के व्यापक अनर्थकारी प्रभाव के कारण छोटे-छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में विभक्त हो गयी है। इसलिए लोग समस्याओं को स्वाभाविक रूप से निपटाने में अक्षम है। किन्तु यदि प्रकृति प्रदत्त मौजूदा संसाधनों को ज्यादा से ज्यादा हासिल

करके विवेकपूर्ण ढंग से वितरित किया जाता तो आज की ज्वलन्त सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का सहजतापूर्वक समाधान हो सकता है।

यह प्रकृति का ही विधान है कि प्रकृति ने माँ के स्तन में अपने नवजात शिशु को पिलाने के लिए पर्याप्त दूध प्रदान किया है। ठीक इसी ढंग से अकृपणा प्रकृति ने सभी लोगों के लिए भोजन एवं अन्य आवश्यक जरूरतों के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध करा दिया है। मनुष्यों को केवल इन संसाधनों का सही रूप से प्रयोग करना है। प्रकृति पर भोजन एवं स्थान के अभाव का दोषारोपण नहीं किया जा सकता है। ये सभी समस्याएँ मानव कृतभूल का ही परिणाम है।

यद्यपि यह सही है कि दुनिया की जनसंख्या बड़ी ही तेजी से बढ़ रही है। एवं इसी वजह से बहुत से लोग भयभीत हो गये हैं। पूँजीवादी देशों में इस तरह डरने के उचित कारण भी हैं।

इन देशों में जनसंख्या वृद्धि का तात्पर्य ही है गरीबी का साथ ही साथ बढ़ना। किन्तु सामूहिक आर्थिक व्यवस्था में इस तरह के डर का कोई कारण नहीं है। दुनिया की पूरी आबादी को वास स्थान एवं भोजन की कमी होने पर, लोग अनुपजाऊ भूमि को खेती के योग्य भूमि में बदल लेंगे, वैज्ञानिक विधियों से भूमि की उत्पादन क्षमता में वृद्धि कर लेंगे, भूमि पानी एवं हवा द्वारा रासायनिक प्रक्रिया से खाद्य का उत्पादन कर लेंगे और यदि इस पृथ्वी की उत्पादन क्षमता कम भी हो जायेगी, तो भूमि खोजी मनुष्य दूसरे ग्रहों, उपग्रहों में जाकर वहाँ बस जायेंगे।

जो लोग पूँजीवादी देशों में रहते हैं वे लोग अपनी पारिवारिक आर्थिक कठिनाइयों के चलते जन्म नियन्त्रण की विधियों का प्रयोग करने को बाध्य होते हैं। किन्तु इस विषय में यह कहना उचित है कि नियन्त्रण की वैसी विधियों का प्रयोग जिनसे स्त्री-पुरुष की शारीरिक विकृति का या प्रजनन शक्ति का हमेशा के लिए नष्ट होने का बिल्कुल ही समर्थन नहीं किया जा

सकता है, क्योंकि किसी भी समय इसके कारण उनमें उग्र मानसिक प्रति क्रिया उत्पन्न हो सकती है।

वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति में, जनसंख्या समस्या के समाधान हेतु प्रउत के पास स्पष्ट सकारात्मक कार्य योब्नना की एक समग्र नीति है। प्रउत के अनुसार जनसंख्या वृद्धि अपने आप ही स्वाभाविक स्तर में आ जायेगी यदि निम्नलिखित चार घटकों की मौजूदगी समाज में हो। पहला समाज में आर्थिक सम्पन्नता होनी चाहिए, जिससे लोगों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो सके। उदाहरण के लिए स्काण्डिनेविया में लोगों की क्रय शक्ति बहुत ही ज्यादा होने के कारण वहाँ के लोग उच्च स्तरीय जीवन जीते हैं। उन लोगों को जनसंख्या वृद्धि की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है। दूसरा -प्रत्येक व्यक्ति का स्वास्थ अच्छा होना चाहिए। यदि लोगों का मन एवं शरीर स्वस्थ हो तो उनकी दैहिक अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ भी सु सन्तुलित रहेंगी एवं वे लोग आसानी से अपनी

शारीरिक शक्ति को मानसिक शक्ति में एवं मानसिक शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में रूपान्तरित कर सकते हैं। अध्यात्म की ओर ले जाने के इस प्रयास से ही, मन की स्थूल प्रवृत्तियों को सहजता पूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है। तीसरा आम जनता जैसे बेकार की चिन्ता एवं उद्वेग से मुक्त रह सके। मनुष्य निरन्तर मानसिक दुश्चिन्ताओं से ग्रसित रहने से, उस अवाञ्छित स्थिति से छुटकारा पाने के लिए स्वभावतः स्थूल भोगों के सुख में मग्न रहता है। किन्तु जब यह दुश्चिन्ता दूर हो जाती है। तब मनुष्य मन की शान्त स्थिति को सूक्ष्म रूप से ग्रहण करने में सक्षम होता है।

चौथा - लोगों के बौद्धिक स्तर को उन्नत करना होगा, बौद्धिक अग्रगति होते रहने से लोग अपनी सर्वात्मक मानसिक क्षमताओं का विकाश करना शुरू करेंगे। साथ-ही-साथ वे सरलता से अपनी मानसाध्यात्मिक क्षमताओं का विकाश कर सकेंगे।

अनुक्रमणिका

इस प्रकार जनसंख्या समस्या केवल आर्थिक समस्या नहीं है, इसके अन्तर्गत आर्थिक, जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं बौद्धिक समस्याएँ समाहित हैं।

आजकल लोग, जनसंख्या की अतिरिक्त वृद्धि के जैव मानसिक एवं आर्थिक कारणों की अपेक्षा इसके राजनैतिक पहलुओं पर ही ज्यादा ध्यान दे रहे हैं। जनसंख्या हमेशा गुणोत्तर दर (Geometric rate) में बढ़ती है। तथा खाद्य उत्पादन सामान्तर दर (Arthmatric rate) में बढ़ता है, यह मान्यता पूर्णतया ही त्रुटिपूर्ण है। यह केवल असन्तुलित आर्थिक व्यवस्था के क्षेत्र में ही लागू हो सकती है। प्रगतिशील सुसन्तुलित अर्थ व्यवस्था (Progressive and balanced economic system) में इस तरह की समस्या नहीं रहेगी। इस तरह का प्रचार भी पूर्णतयः भ्रामक है कि तेजी से बढ़ती जनसंख्या सामूहिक, आर्थिक संरचना पर प्रभाव डालती है। वर्तमान में पूँजीपति वर्ग संतति-निरोधक पद्धतियों के प्रचार द्वारा जनसंख्या

वृद्धि रोकने का प्रयास कर रहे हैं। इसकी वजह यह है कि जनसंख्या वृद्धि पूँजीवादी व्यवस्था के लिए हानिकारक है। सामूहिक आर्थिक संरचना में संतति निरोध की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी वरन बढ़ती हुई जनसंख्या आवश्यक उपभोग्य उत्पादन में सहायक ही होगी।

प्राणिजगत एवं उद्भिद् जगत्, दोनों क्षेत्रों में ही उन्नत स्तर के उत्पादन हेतु अच्छी जाति के बीज, उर्वर भूमि, पर्याप्त मात्रा में खाद-प्रकाश हवा पानी अपरिहार्य है। इस विचार से जीव-जन्तुओं-पौधों एवं मनुष्यों में कोई पार्थक्य नहीं है। इसलिए मानव समाज के क्षेत्र में भी उन्नत पीढ़ी के मानव की रचना करने के लिए उपयुक्त पुरुष एवं नारी का चुनना आवश्यक है। जब तक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में मानव शिशु की रचना नहीं हो रही हैं तब तक, यदि इस तरफ ध्यान नहीं दिया जाता है तो वह समाज के लिए हानिकारक हो जायेगा। समाज के लिए यह कल्याण कारी होगा, यदि उन्नत बुद्धि एवं मेधा सम्पन्न लोगों से

अधिक सन्तान उत्पन्न हो। इन सब शिशुओं के लालन-पालन का दायित्व समाज या सरकार को लेना होगा। दूसरी तरफ यदि अल्पबुद्धि, स्वाभाविक रूपमें अकर्मण्य एवं उन्मादी लोगों से अधिक सन्तानें जन्म ले तो समाज के लिए वह अत्यन्त हानिकारक होगा। इसलिए किसी तरह की नकारात्मक प्रतिक्रिया को दूर करके, यदि उन लोगों की प्रजनन क्षमता को स्थायी रूप से नष्ट कर दिया जाय, तो समाज उससे लाभान्वित ही होगा।

आज विज्ञान एक ऐसे स्तर पर पहुँचा है कि वह एक नये युग की शुरूआत कर सकता है। विश्व की खाद्य समस्या के समाधान के लिए विज्ञान टिकिया (tablet) के आकार का कृत्रिम खाद्य तैयार कर सकता है। अब मात्र एक खाद्य टिकिया (food tablet) ही सारे दिन की कार्य क्षमता प्रदान करने में सक्षम हो सकती है। इसलिए जनसंख्या वृद्धि से चिन्तित होने का कोई कारण नहीं है। आने वाली पीढ़ी, अपने समय और शक्ति

को मानसिक एवं आध्यात्मिक कार्यों में ज्यादा व्यतीत करेंगी। इस प्रकार उनको शारीरिक भोजन की जरूरत कम होती जायेगी।

अन्वेषण करके लोगों ने आज समुद्र की तलहट में प्रचुर मात्रा में खाद्य भण्डार की खोज की है। विज्ञान एवं तकनीक की सहायता से हम लोग उस सभी खाद्य सम्पदा को व्यवहार में लाकर, खाद्य समस्या का समाधान कर सकते हैं। आज समाज में जिस तरह की समस्या नजर आ रही है, इससे समझ में आ रहा है, कि लोग दुनिया की आधिभौतिक आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सम्पदाओं को ज्यादा से ज्यादा उपयोग एवं तर्क संगत वितरण को तैयार नहीं हैं। आज का विज्ञान जनकल्याण मूलक एवं रचनात्मक उद्देश्य में प्रयुक्त न होकर ध्वंसात्मक युद्धास्त्रों को तैयार करने में ही ज्यादा प्रयोग हो रहा है।

सर्वाधिक उत्पादन एवं आर्थिक सुरक्षा के लिए समाज में एक ऐसी सामूहिक आर्थिक संरचना की प्रतिष्ठा करनी होगी

अनुक्रमणिका

जो सब प्रकार की आधिभौतिक आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सम्पदा के अधिकतम उपयोग को सुनिश्चित करेगी, धन सञ्चय पर नियन्त्रण रखेगी, एवं सामूहिक सम्पदा का तर्क संगत वितरण करेगी। इसके लिए एक सुव्यवस्थित सहकारी व्यवस्था एवं विकेन्द्रित सामाजिक आर्थिक योजना की आवश्यकता है। अब तक लोग इस तरह की योजना लागू न कर पाने के कारण ही खाद्य समस्या के समाधान में सक्षम नहीं हो सके हैं। बदले में लोगों के शारीरिक एवं मानसिक दोनों क्षेत्रों के लिए हानिकारक, अमानवीय संतति निरोध की विधियों को जनता में थोपे दे रहे हैं। केवल इतना ही नहीं, इन विधियों से, मनुष्य में शारीरिक विकृति उत्पन्न होती है, पारिवारिक जीवन में अशान्ति एवं वैमनस्य उत्पन्न होता है, तथा मानसिक विकृति एवं दुर्बलता आ जाती है। इस प्रकार के लोगों में सामाजिक न्याय के लिए संग्राम करने की शक्ति के साथ ही प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने का साहस भी समाप्त हो जाता है।

जनसंख्या वृद्धि का विरोध निहित स्वार्थियों की तरफ से जनता को भ्रमित एवं शोषित करते रहने के एक धूर्तता पूर्ण षड्यन्त्र के अलावा और कुछ नहीं है। पूरी दुनिया के लोगों को एक होकर इस जघन्य षड्यन्त्र के विरुद्ध आवाज उठानी होगी। एवं सच्चे न्याय पर आधारित कल्याण मूलक समाज के निर्माण के लिए सामूहिक रूप से काम करना होगा।

कलिकाता १९८१

नारी के अधिकार

नारी एवं पुरुष, दोनों ही एक ही परमपिता की सन्तान हैं। दोनों ही जब परमपिता की सन्तान हैं, तो दोनों को ही जीवन की

अनुक्रमणिका

अभिव्यक्ति एवं अपने विशेषाधिकार के क्षेत्र में भी समान अधिकार प्राप्त है।

अस्तित्व का माने केवल जिन्दा रहना ही नहीं है। जानवर भी तो जिन्दा रहते हैं। किन्तु हम लोगों के जिन्दा रहने का तात्पर्य और भी बहुत कुछ है। एक महान उद्देश्य के लिए जीवित रहना ही हम लोगों का जीवन है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं आर्थिक क्षेत्र की सभी सम्भावित क्षमताओं के विकाश के लिए स्वाधीनता अर्जित करने के प्रयास में ही जीवन का तात्पर्य निहित है। केवल अच्छे-बुरे करने का अनुज्ञा पत्र देना ही वास्तविक स्वाधीनता नहीं है।

मानव इतिहास में हम लोगों ने देखा है कि नारियों ने न केवल अपने नारीत्व को गौरवान्वित किया है। बल्कि पूरी मानवता को ही गौरवान्वित किया है। दर्शन, आध्यात्मिकता, समाज सुधार, शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीक में कहीं भी नारियाँ

पुरुषों से पीछे नहीं है। चाहे जटिल से जटिल दार्शनिक तर्कों का सुलझाना हो या, सामाजिक एवं शैक्षणिक सुधार ही हो, सभी क्षेत्रों में महिलाओं ने पुरुषों के समान ही सक्रिय भूमिका निभाई है। आपद-विपद में पुरुषों को प्रेरणा देने में भी नारी की भूमिका जन स्वीकृत है। पुरुषों के समान नारियों में भी प्रचुर क्षमताएँ छिपी हुई हैं। नारी एवं पुरुष के बीच प्राकृतिक एवं दैहिक संरचना गत विशेषताओं में मौजूद अन्तर, समन्वित सहयोग के ही योग्य हैं, दोनों के बीच अधीनस्थता का सहयोग (Sub ordinated co-operation) बिल्कुल ही समर्थन के योग्य नहीं है।

किन्तु ऐतिहासिक कालवृत्त में हमलोग पूरी पृथ्वी में नारियों पर शोषण के मार्मिक वृत्तान्तों एवं दृष्टान्तों को देखते हैं। शोषण के इस दुरभि सन्धि से ही प्रत्येक युग में नाना प्रकार के पाखण्ड उत्पन्न हुए हैं एवं इन सबके सहयोग से ही मानस-आर्थिक शोषण (Psycho economic exploitation) हो रहा

है। इन सभी पाखण्डों को बड़ी चतुरता पूर्वक लोकप्रिय बना के एवं नारियों के मन में भी प्रवेश करवा के, उन्हें दासता की जंजीरों में बाँधा गया है। विभिन्न धर्मानुष्ठानों के बहुत से प्रतीक वास्तव में दासता के प्रतीक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दुनिया के बहुत धर्ममतों (सम्प्रदायों) में नारी पुरोहित भी स्वीकृत नहीं है।

नारियों के ऊपर सर्वत्र ही कम-ज्यादा एक जैसा ही शोषण हैं। यह क्या सत्य नहीं है कि बहुत से देशों में नारियों एवं पुरुषों को वस्तुतः मताधिकार का समान अधिकार भी नहीं प्राप्त था।

आज भी पुरुष-शासित समाज-व्यवस्था में नारी का स्थान दासी के जैसा ही है। यह न केवल गलत है। बल्कि निन्दनीय भी है। नारियों पर इस तरह के अवदमन एवं पाखण्डों की सहायता से, उन पर इस तरह के मानस-आर्थिक शोषणों की

तीव्र निन्दा करना उचित है। इन पाखण्डों को मिटाने के लिए तथा मानसिक शोषणों के चंगुल से नारी एवं नारीत्व को मुक्त करने के लिए जो करना आवश्यक है। वह निम्नलिखित है।

१) दुनिया के सभी देशों में सभी नारियों को निःशुल्क शिक्षा।

२) सामाजिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक क्षेत्र में सभी प्रकार की विषमताओं को समाप्त करना।

३) सभी-नारियों को आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था। हम लोग, विशेष करके नारियों के बीच, एक शक्तिशाली, गतिशील एवं विप्लवी सामाजिक चेतना की सृष्टि करना चाहते हैं। सभी नारियाँ, नई प्रेरणा से उत्साहित होकर, सभी प्रकार के दासता के प्रतीकों एवं पाखण्डों को मिटाने की

कोशिश में लग जायें। हम लोग चाहते हैं, नारी लोग समन्वित सहयोग के नये युग की शुरूआत करें। आज की नारियाँ नई क्रान्ति की अग्रदूत बनें। गौरवोज्ज्वल भविष्य के लिए मानवता की यह उन्नति अत्यावश्यक है।

कलिकाता, २० अप्रैल १९८१

प्रउत के पाँचवे मौलिक सिद्धान्त की विशेषता

प्रउत का पाँचवा मौलिक सिद्धान्त निम्नलिखित है :

अनुक्रमणिका

"देश काल पात्रे: उपयोगा: परिवर्तन्ते

ते उपयोगा: प्रगतिशील: भवेयु: ।"

देश-काल-पात्र के परिवर्तन अनुसार समग्र उपयोग नीतियाँ परिवर्तित हो सकती है और यह उपयोग प्रगतिशील स्वभाव का होगा।

इस सिद्धान्त की एक विशेष विशिष्टता है। अब हम लोग इसकी विशिष्टता का अध्ययन करें। इस विश्व का सब कुछ ही परिवर्तनशील है। देश-काल-पात्र यह आपेक्षिक तत्त्व भी परिवर्तनशील है। मनुष्य एवं समाज सब कुछ ही स्थान एवं काल की परिधि के मध्य निवास कर रहे हैं। यदि देश एवं काल की परिधि को घटाया जाय तो स्थान, काल एवं पात्र के बीच उचित सामञ्जस्य निर्मित कर लेना होगा। यदि यह सामञ्जस्य निर्मित

न किया गया, तब मनुष्य को अपने अस्तित्व की रक्षा करना ही असम्भव हो जायेगा।

परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है। यदि कोई दर्शन इस नीति के साथ सामञ्जस्य नही रखते हैं; तब वह निश्चित रूप से समाप्त हो जाते हैं। अतीत के बहुत से दर्शन, आदर्श एवं तथाकथित धर्म बदली हुई परिस्थिति के साथ सामञ्जस्य बनाने में असमर्थ होने से समाप्त हो गये। दृष्टान्तस्वरूप तान्त्रिक, वाम मार्गी या दक्षिण मार्गी, दोनों ही समाज में विशेष रूप से सम्मानित होते थे। बंगाल में जब बौद्धों का प्रभाव चल रहा था, ये तान्त्रिक लोग साधना के समय 'तन्त्रचक्र' नाम के एक विशेष प्रतीक पर बैठते थे। क्योंकि ये साधक लोग उस चक्र पर बैठते थे, इसलिए उन लोगों को 'चक्रवर्ती', पदवी-देकर सम्मानित किया गया था। स्थान एवं काल के परिवर्तन में चक्रवर्ती पदवी और उस तरह के सम्मान का परिचय वहन नहीं करता है। लोग

अब चक्रवर्ती पदवी को उस तरह से कोई विशेष महत्त्व या मर्यादा नहीं देते हैं।

स्थान एवं काल का परिवर्तन हो रहा है, इस परिवर्तन के साथ प्रउत सामञ्जस्य बना कर चलेगा। प्रउत की मूलनीतियों में कोई परिवर्तन नहीं होगा वरन् बदली हुई परिस्थितियों के साथ प्रउत की प्रयोग विधि सामञ्जस्य बना कर चलेगी। स्थान एवं काल के परिवर्तन को स्वीकार करके एवं उसके साथ सामञ्जस्य बना कर लोगों को सामने की ओर आगे बढ़ना होगा। सामञ्जस्य बनाना एवं लचीलापन मानव प्रगति के लिए अपरिहार्य है।

और भी कुछ उदाहरण देखते हैं। अतीत में लोग दल बनाकर पुण्य स्नान के लिए गंगा जाते थे। किन्तु वर्तमान में उस तरह और विशेष रूप से नहीं देखा जाता है। अतीत में जब परिवार मे कोई संकट होता था, तब माता-पिता अपनी सबसे

अनुक्रमणिका

छोटी सन्तान को गंगा नदी में विसर्जन करते थे। वे लोग विश्वास करते थे कि सबसे छोटी सन्तान को गंगा में विसर्जित करने से विपद से खुद को बचा लेंगे। अभी कोई माँ-पिता इस तरह सन्तान का विर्सजन नहीं करते हैं। अब तो ऐसा सुनने पर भी सिंहरन हो जाती है। लोग अतीत की इन प्रथाओं को और नहीं मानते, मानने को तैयार नहीं हैं। यही 'समाज में लाचीलापन का लक्षण' हुआ। यदि पुरानी किसी प्रथा को बिना विचार के समाज अनुसरण करता रहे, तब वह समाज अपनी गतिशीलता खोकर समाप्त हो जायेगा।

किसी धर्मशास्त्र में लिखा है, सूद का रुपया लेना पाप है। यदि जनता इस नीति को कठोर रूप से मान कर चलें, तो बैंक व्यवस्था को अस्वीकार करना पड़ेगा। और पूरे समाज को ही इसके लिए परेशान होना होगा। ठीक तरह से सरकार चलाने के लिए नेताओं को या तो इस नियम को नहीं मानना होगा, नहीं तो धर्मीय पाखण्ड को मानते हुए पूरे समाज को ही जान-बूझकर

क्षति पहुँचानी होगी और उस स्थिति में हम लोग कहेंगे कि वे लोग पाखण्ड (dogma) से निर्देशित हो रहे हैं। इन पाखण्डों को जो कसकर पकड़े रहेंगे, आधुनिक युग में वे लोग परित्यक्त हो जायेंगे। वर्तमान दुनिया के प्रायः सभी तथाकथित धर्ममतों को इस तरह की दोहरी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है।

यदि हिन्दू लोग अपने वर्ण व्यवस्था को कठोर रूप से मानते रहेंगे, तब वे लोग भी समाज का नुकसान करेंगे। अतीत में हिन्दू विधवाएँ सफेद मोटी खद्दर की साड़ी पहनती थर्थी। एवं अपने सिर के बालों को बहुत छोटा-छोटा काटती थीं, किन्तु वर्तमान विधवा लोग और इसको नहीं मानती हैं। आजकल यदि तुम लोगों में से कोई किसी विधवा को इस तरह की प्रथा मानने के लिए समझाने की चेष्टा करोगे तो तुमको अपमानित होना होगा।

इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में ही स्थान-काल-पात्र के बीच सामञ्जस्य बनाकर चलना होगा यदि कोई व्यक्ति स्थान-काल-

पात्र के साथ सामञ्जस्य बनाकर नहीं चलते तो निश्चित रूप से उनका स्थान अजायबघर में होगा।

प्राय: एक सौ पचास वर्ष (१५० वर्ष) पहले काल मार्क्स ने समाज के शोषण एवं विषमताओं पर नजर डाली थी। उनका विश्वास था कि आय विषमता ही सभी सामाजिक अन्याय का मूल कारण है। इसलिए उन्होंने सोचा समाज में यदि व्यक्तिगत आमदनी न हो तथा जनता यदि कम्यून में एक साथ रहे और सरकार यदि खाना कपड़ा की आपूर्ति करती रहे तो समाज में कोई अन्याय नहीं रहेगा। किन्तु क्या सत्य है कि कम्यूनिष्ट देशों में सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का निदान हो गया है ?

इस कम्यून व्यवस्था में कुशल एवं विशेष गुण सम्पन्न बुद्धिमान लोगों की अति साधारण लोगों के बराबर आमदनी होती है। वहाँ कठोर परिश्रम के लिए उत्साहवर्धन या कोई विशेष सुविधा (Incentive) की व्यवस्था नहीं है। सबको एक

ही मजदूरी या वेतन देने के परिप्रेक्ष्य में स्वभावतः वहाँ के लोगों के मन में काम के मूल्य को लेकर प्रश्न पैदा हो रहा है। इस तरह की अवस्था में कोई मनुष्य ही अपनी पूरी क्षमता को काम में नहीं लगाएगा, प्रतिभावानों की प्रतिभा बढ़ाने का मौका नहीं मिलेगा। राजा भोज जो बहुत ही ज्ञानी एवं बुद्धिमान थे वे यदि अपनी राजसभा में एक मूर्ख के समान मर्यादा पाते तो उनका राज ही चौपट हो जाता, जैसा कि कम्यूनिष्ट देशों में हो रहा है। इसलिए कम्यून की उत्पादन व्यवस्था में व्यक्तिगत उत्साह एवं उद्योग को काम में न लगाने के कारण एवं प्रतिभावान लोगों को भी उत्साह न मिलने के कारण, यह व्यवस्था आज एक अस्वस्थ व्यवस्था में परिणत हो गई है। यही कम्यून व्यवस्था की असफलता के प्रधान कारण है। रूस अपने जनता की क्षमता एवं योग्यता को ठीक तरह से काम में नहीं लगा पा रहा है। इसलिए आज जनता के भरण-पोषण के निमित्त पर्याप्त कृषि भूमि होने के बावजूद भी कनाडा-संयुक्त राज्य अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया जैसे पूँजीवादी देशों से रूस को गेहूँ खरीदना होता है। कम्यून

व्यवस्था आज ठप्प हो चुकी है एवं हिस्टिरिया ग्रस्त हो चुकी है। कम्युनिष्ट लोग आज सभी तर्क एवं विचारों को भूलकर आज हिस्टिरिया (भावोन्मादरोग) के रोगी की तरह चित्कार करते हुए घूम रहे हैं। उन्हें आशा है कि लोग भय से उनका अनुसरण करेंगे। तर्क के रास्ते में चलने से बौद्धिक विनम्रता (लचीलापन) अत्यावश्यक है। जब इस विनम्रता का अभाव होता है, तब थोथी चित्कारी से युक्ति पूर्ण विचार ढँक जाते हैं।

आज के दिनों में, क्या धर्ममत, क्या विज्ञान, क्या समाज, सभी जगह ही इस विनम्रता (लचीलेपन) का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। विज्ञान में डॉल्टेन का परमाणु-वाद इस दौरान अप्रासंगिक हो गया है। बहुत क्षेत्रों में नई-नई विचारधारा आकर पुरानी हो चुकी हैं। दुसरे क्षेत्रों में भी इस परिवर्तन की हवा पहुँच गई है। उदाहरण के लिए रसायन विज्ञान को ही लेते हैं यदि दो कम्पनियों के एक नमक को लेकर जाँच किया जाय, तो

मालूम पड़ेगा कि कहीं-न-कहीं पार्थक्य या आपसी मतभेद प्रकट हो रहे हैं। इसका मूल-कारण है कि दो कम्पनी के नमक में माइक्रोवाइटम की संख्या में अंतर रहता है। माइक्रोवाइटा का सिद्धान्त देश एवं काल के साथ विज्ञान को समायोजित कर देगा।

परिवर्तन जिस तरह से प्राकृतिक नियम है, उसी तरह आकर्षण भी प्राकृतिक नियम है। जिस प्रकार वस्तुओं के बीच में आकर्षण होता है उसी प्रकार व्यक्तियों के बीच भी पारस्परिक आकर्षण होता है। यह स्वाभाविक है। यदि अन्धेरी रात में कोई व्यक्ति जंगल में खो जाय और अचानक टार्च का प्रकाश देखे, तब, वह टार्चधारी चोर हो या खूनी, यह विचार किए बिना ही वह उसके पास चला जायेगा। दूसरी तरफ, टार्चधारी व्यक्ति भी जंगल मे खोये, उस व्यक्ति के चरित्र के बारे में कोई प्रश्न नहीं करेगा। वरना, सोचेगा कि इस व्यक्ति को सुरक्षित जगह पहुँचा

देना ही करणीय है। यह मनुष्य के पारस्परिक आकर्षण का एक ज्वलन्त दृष्टान्त है।

दूसरे उदाहरण भी दिए जा सकते हैं, कोई-कोई सोचते हैं कि मनुष्य की तरह पशु अपनी सन्तानों को प्यार नहीं करते हैं। किन्तु यह ठीक नहीं है। पशु भी अपने तरह से अपनी सन्तानों को प्यार करते हैं। देश-काल-पात्र में भेद होने के कारण मनुष्य के आपसी प्रेम में भी अन्तर दिखाई देता है। 'माँ' अपने बच्चे को प्राणों से ज़्यादा चाहती है। किन्तु जब लड़का शादी करता है तो माँ देखती है उसके प्रेम का ज्यादा हिस्सा उसकी पुत्र वधू छीन ले रही है। तब माँ का लड़के के प्रति प्रेम कुछ कम हो जाता है। यह क्षतिपूर्ति करने के लिए माँ तब दूसरे अविवाहित लड़के-लड़कियों को ज़्यादा प्यार करने लगती है। इसके पीछे यही मनोविज्ञान है कि स्वार्थपरता में वृद्धि होने से मनुष्य के बीच आपसी आकर्षण कम होने लगता है। हम लोगों को निश्चित ही इस प्यार एवं आकर्षण के अधिकार क्षेत्र को बढ़ाना होगा। हम

लोगों को अपने इस प्रेम को पशु-पक्षी एवं उद्भिद वर्ग सभी के बीच में प्रसारित करना होगा। इन सभी में ही जीवन है एवं सभी में ही संवेदनशीलता है। हम लोगों को सोचना होगा, कि मुझमें जिस प्रकार से संवेदनशीलता है, सभी में भी उसी प्रकार से संवेदनशीलता है। कोई भी पराया नहीं, सभी अपने हैं। इस भाव बोध को लेकर सभी (जीवित) प्राणि सत्ता के साथ-साथ सभी निर्जीव सत्ता का भी अपना बना लेना चाहिए। यही नव्यमानवतावाद है और यही नव्यमानवतावाद मानव मन की बहुमुखी उन्नति के लिए अपरिहार्य है।

इस प्रकार मनुष्य सहित पूरी सृष्टि के प्रति कल्याण की भाव-धारा को अविरल रखकर हम लोगों को एक ऐसी विचारधारा अपनानी होगी, जिसमें ममता एवं लचीलापन हो। इलास्टिक (elastic) की बन्धनी लगी हुई किसी पोशाक के इलास्टिक का लचीलापन जब कम हो जाता है तब उस पोशाक का परित्याग कर देते हैं। उसी तरह कोई मतवाद यदि अपने

लचीलेपन को खो देता है, और देश-काल-पात्र के साथ ताल मेल नहीं बैठा पाता है, तो वह भी परित्यज्य हो जाता है। किसी नीति की प्रयोग विधि देश-काल-पात्र के परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तन करना होगा। किन्तु सिद्धान्त (मूल नीति) अपरिवर्तित रहेंगे। क्योंकि, ये सिद्धान्त सर्व व्यापी है एवं इन सभी की साक्षी सत्ता, सर्वज्ञप्ता का आधार है।

वर्तमान में इस परिवर्तनशील जगह में तुम लोग अपनी आँखों के सामने देखते हो कि बहुत से दर्शन परिवर्तित होकर भी परित्यज्य हुए हैं। यदि कोई अतीत के कंकाल को पकड़े रहता है, तो वह भी समाज से परित्यज्य हो जायेगा। बुद्धिमान व्यक्ति पुराने एवं अप्रासंगिक विचारों को नहीं अपनाएँगे, बल्कि जो विचारधारा देश-काल-पात्र के साथ समायोजन स्थापित करेगी, शाश्वत काल तक बची रहेगी। उसी विचारधारा को वे अंगीकार करेंगे।

प्रउत दर्शन उत्कृष्टता के सर्वोच्च शिखर पर अधिष्ठित है क्योंकि यह देश-काल-पात्र के परिवर्तन के साथ चलता है। प्रउत हमेशा देश-काल-पात्र की विधाओं को प्रगतिशील तरह से हमेशा पार करता रहेगा।

इसलिए, आगे बढ़ते रहिए, शैतान सौदागर मानवीय क्रियाकलापों में अपनी नाक घुसाने से एवं प्रगति के रास्ते को रोकने में सफल नहीं होंगे। बिना रुके हुए आगे बढ़ते रहना है।

१६ मार्च १९८८ कालिकाता

आर्थिक गतिशीलता

इस विश्व ब्रह्माण्ड में प्रत्येक गति ही संकोच-विकाशी है। इस दुनिया का कुछ भी सरलरेखावत नहीं चलता। इस संकोच विकाशी गति (प्रकुञ्चन) के कारण प्रत्येक सत्ता में आभ्यन्तरीण संघर्ष एवं (Choesion) संसक्ति (समिति) साथ-साथ होती रहती है। इस संकोच-विकाशी (प्रकुञ्चन) सिद्धान्त के कारण ही सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के विभिन्न पर्व (अध्यायों / युगों) में उत्थान-पतन होता रहता है। गतिधारा के संकोचन या विरति (विराम) की अवधि यदि ज्यादा लम्बी हो तो समाज को भी गतिहीनता के एवं लम्बित स्तर को (अतिक्रम) पार करके आगे बढ़ना होता है। इस क्षेत्र में ऐसा भी हो सकता है कि समाज अपनी गतिशीलता को एकदम ही खो दिया है अथवा अपनी मृत्यु को प्राप्त हो गया है। विराम के स्तर में यदि समाज की

आन्तरिक गतिशक्ति का अभाव हो, तब परवर्ती स्तर में उसकी स्वाभाविक गतिधारा क्रियाशील हो सकती है और यदि उसके विराम का स्तर और ज्यादा लम्बा एवं प्राणशक्ति से परिपूर्ण हो तब परवर्ती गति के स्तर में समाज की बाह्य अभिव्यक्तियाँ भी दीर्घकालिक एवं शक्तिशाली होंगी।

अपनी अन्र्तनिहित जड़ता या गतिहीनता के कारण पूँजीवाद एवं साम्यवाद, दोनों का ही पतन अवश्यम्भावी है। आज पूँजीवाद एवं साम्यवाद पूरी दुनिया से समाप्त होते जा रहा है। पूँजीवाद के आन्तरिक एवं बाह्य परिक्षेत्र में थोड़ी सामान्य गतिशीलता होने के बावजूद, उसके इन बाह्य एवं आन्तरिक क्षेत्र द्वय के बीच, आपसी संघर्ष भी कार्यरत है। पूँजीवाद का यह संघर्ष ही आत्म केन्द्रित एक मुनाफाखोरी एवं धन संचय की मानसिकता से उत्पन्न होता है, जिससे सभी की स्वार्थ पूर्ति न होकर, केवल कुछ लोगों की ही स्वार्थ पूर्ति होती है। इसलिए मानव प्रगति के सार्वभौमिक विकाश हेतु पूँजीवाद अनुकूल

दर्शन नहीं है। निश्चित रूप से ऐसा एक दिन आनेवाला है जब पूँजीवाद आतिशबाजी की तरह ही फटकर तितर-बितर हो जायेगा।

साम्यवाद भी एक अल्पकालिक (परिवर्तनशील) दर्शन है। इस दर्शन में वहिर्परिक्षेत्र में सामान्य गतिशीलता के बावजूद आन्तरिक क्षेत्र में जड़ता व्याप्त है। इसके परिणाम स्वरूप साम्यवाद में ऋणात्मक गतिशीलता है। (Negative dynamicity) इसीलिए साम्यवाद भी कभी सफल नहीं हो सकेगा। साम्यवाद एक ऐसे धूमकेतु जैसा है जो पाराबोलिक (Parabolic) पथ की श्रेणी का अनुसरण करके आगे बढ़ रहा है। साम्यवाद का पथ कभी भी हाइपर बोलिक (hyper bolic) पथ की श्रेणी का नहीं हो सकता है। साम्यवाद (मार्क्सवाद) समाज को एक सर्वग्रासी गतिहीनता के स्तर में ले जा सकता है। इस गतिहीन स्तर में नकारवाद (Nihilism) या दोषदर्शिता

(cynicism) का जन्म होता है। जीवन में एक नकारात्मक बोध उत्पन्न होता है।

आर्थिक मन्दी गतिहीनता का ही परिणाम समाजवादी या पूँजीवादी, दोनों ही राष्ट्रों में ही आर्थिक दबाव में मन्दी आने को बाध्य है। क्योंकि दोनों ही देशों की आर्थिक व्यवस्था में ही जड़ता गम्भीर रूप से अन्तर्निहित है। यह जो मन्दी है, वह वास्तव में समाज पर शोषण या दमन-प्रदमन-अवदमन का ही परिणाम है। शोषण जब अन्तिम स्तर (चरम विन्दु) में पहुँचता है, तब समाज की गतिशीलता एवं गति वेग भी प्रायः शुन्याङ्क में पहुँच जाती है। ऐसी परिस्थिति में शोषण की उसी चरमावस्था से समाज में स्वयं ही विस्फोटन घटित होता है। भौतिक जगत् के क्षेत्र में यह विस्फोटन जड़ात्मक होता है तथा मानसिक अधिक्षेत्र में विस्फोटन मानसिक या भावात्मक होता है। इस तरह ही अवस्था भेद में विस्फोटन होते रहते हैं। यह अर्थनैतिक मन्दी किसी भी युग (शुद्र, क्षत्रिय, विप्र, वैश्य) में घट सकती है।

इसी तरह, समाज के सांस्कृतिक जीवन में भी दमन-प्रदमन अवदमन के कारण एक ही जैसी मन्दी दिख सकती है। फलस्वरूप लोगों का सांस्कृतिक जीवन विकृत हो सकता है। सही बात कहता हूँ, कि एक ऐसी अस्वाभाविक परिस्थिति में संस्कृति की विभिन्न धारा-उपधाराओं में भी विकृति आ जायेगी। इसी वजह से हम लोग साहित्य, संगीत, नृत्य, कला एवं शिल्प में व्याप्त विकृति को स्पष्ट रूप से देखते हैं। इसी तरह, चित्रकारी एवं वास्तु विद्या में भी इन्ही विकृतियों की काली छाया पड़ चुकी है।

सामाजिक एवं आर्थिक, दोनों क्षेत्रों में ही, उत्पन्न मन्दी असहनीय हो गई है। ऐसे ही ढंग की भयानक मन्दी एक बार १९२९ एवं १९३१ साल में हुई थी। मन्दी के उस दुर्दिन में वर्धमान के बाजार में १ पैसा में ५ सेर बैगन अथवा ४ पैसा में १ मन बैगन मिलता था। किन्तु, वैसी स्थिति में भी खरीददार नहीं

मिलते थे। उस दुर्दिन में नौकरी करने वालों का वेतन १०% कम कर दिया गया था। और उसी अनुसार सभी लोग कम वेतन ही स्वीकार करते थे। अतीत के इन सभी मन्दी एवं भविष्य की आनेवाली मन्दी के बीच एक मौलिक अन्तर रहेगा। पूर्व में हुई सभी मन्दियों के साथ में मुद्रास्फीति का अनुपात सामान्य था, किन्तु भविष्य में जो सभी मन्दी होंगी, उसमें मुद्रास्फीति का तीव्रतर अनुपात होगा। इसलिए, यह मन्दी, लोगों के जीवन के सर्वांगीण विकाश के लिए बहुत ही ज्यादा हानिकारक होगी। आज वैसी ही मन्दी की एक भयानक परिस्थिति का उद्भव हुआ है। उसका विस्फोटन, आगामी २,३,५ साल के बीच ही हो सकता है। आगामी १० साल के अन्दर तो अवश्य ही होगा।

यह मन्दी, वाणिज्यिक, अर्थव्यवस्था के औद्योगिक उप संरचनाओं में होगी। और पूरे मानव समाज में उसकी भंयकर ध्वंसात्मक प्रतिक्रिया दिखाई देगी। इसलिए इस मन्दी की अवधि को कम करने का प्रयास आज अत्यावश्यक है। सम्भव

है, मन्दी के चरम का वह विध्वन्स दिखाई देने के पूर्व ही, उसे चेष्टा करके टाल देना सम्भव है। एवं उसी के साथ समाज की गति में भी तेजी लाना सम्भव है। प्रउत के माध्यम से पूरे समाज में एक सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्पन्दन उत्पन्न करना हम लोगों के लिए सम्भव हो सकेगा। समाज के संकोच विकाशी तरंगधारा के आरोह स्तर में अथवा विकाशात्मक विराम के बाद ही इस स्पन्दन को तैयार करना होगा। आज चूँकि दुनिया में एक घोर संकट की अवस्था मौजूद है इसलिए हम लोगों को आज और भी ज्यादा मात्रा में प्रयत्नशील होकर समाज में इस तरह के स्पन्दन को निर्मित करना होगा। यदि हम लोगों द्वारा निर्मित यह स्पन्दन तथा समाज का आसन्न विस्फोटन, दोनों एक ही समय हो, तब उसका फल और भी अच्छा होगा।

सभी को यह बात मन में बैठा लेनी चाहिए की मुद्रास्फीति एवं मन्दी, दोनों ही, समाज की गतिहीन एक

अस्वस्थ अवस्था को परिणाम है। मान लीजिए कि किसी देश में पर्याप्त मात्रा में उत्पादन हुआ है, और उस देश की आर्थिक अवस्था के साथ उसकी संचित स्वर्ण मुद्रा (Bullion) का अनुपातिक सन्तुलन भी ठीक बना हुआ है। ऐसी अवस्था देश में मुद्रास्फीति होने की कोई सम्भावना नहीं रहती है। किन्तु देश की अर्थव्यवस्था में यदि गतिशीलता का अभाव हो, तब रुपये या मूलधन का परिचलन घटता है। परिणामस्वरूप देश का कुल उत्पादन कम हो जाता है। वैसी परिस्थिति में देश की अर्थ व्यवस्था में मुद्रास्फीति अनिवार्य रूप से होगी। यदि किसी देश का विदेशी व्यापार क्रमशः घटता जाय तो उस देश में भी मुद्रास्फीति हो सकती है। इसके अलावा, देश का विदेशी व्यापार यदि विनिमय (Barter system) व्यवस्था के तहत न होता हो, और उस देश को प्रचुर मात्रा में खाद्य पदार्थों का आयात करना पड़ता हो, तथा साथ ही उसे बाहरी देशों को कच्चा माल भी निर्यात किया जाता हो, तब उस देश में मुद्रास्फीति निश्चित रूप से होती है। दूसरी तरफ जिस देश में

पर्याप्त मात्रा में उत्पादन होता है, तथा अपूर्ति की यथेष्ट व्यवस्था भी हो, किन्तु अकस्मात ही, उस देश में माँग में कमी आ जाय. तो उस देश के खरीददारों में मुद्रा की अनुपातिक वृद्धि होती है। इस तरह की आर्थिक अवस्था को ऋणात्मक मुद्रा स्फीति (Negative inflation) या मुद्रा स्फीति ह्रास (deflation) कहा जाता है।

मन्दी के मूल कारण - अर्थव्यवस्था में मन्दी दिखलाई पड़ने के मुख्यतः दो कारण हैं। पहला कारण सम्पत्ति का अति सञ्चय या अति केन्द्रीकरण है। और दूसरा कारण - मुद्रा के परिचलन में रुकावट होना है। यदि मूलधन कुछ मुट्ठीभर लोगों या राष्ट्रों के पास ही सीमित हो, तब अधिकांश जनता कुछ थोड़े लोगों द्वारा शोषित होती रहती है। इस तरह के तीव्र शोषण से एक विकट विस्फोट होता है। आर्थिक क्षेत्र में इसी विस्फोट को

मन्दी (depression) कहा जाता है। धन का केन्द्रीकरण, ही मन्दी का मूल एवं प्रधान कारण है। मन्दी का दूसरा कारण व्यष्टि या राष्ट्र के हाथों में धन का अति सञ्चय है। वे लोग पूँजी (मूलधन) को इसीलिए रोक कर रखते हैं। क्योंकि वे सोचते हैं कि उनके रुपयों को मुक्त रूप से बाजार में निवेश करने से हो सकता है जनता को कुछ आर्थिक लाभ हों किन्तु उनका अपना मुनाफे की मात्रा कम हो जायेगी। पूँजीपतियों की मानसिकता है कि रुपयों के निवेश से जितना ज्यादा सम्भव हो, मुनाफा प्राप्त करें। जब वे लोग समझ जाते हैं, कि रुपये निवेश करने से, और मुनाफा प्राप्त करना सम्भव नहीं है, तब वे लोग अपने सञ्चित रुपयों को बाजार में लगाना बन्द कर देते हैं। परिणामस्वरूप, वे लोग पूँजी को बहुत तरह से अचल स्थिति में रूद्ध करके रखते हैं। इस प्रकार तब बाजार में पूँजी का चलन बन्द हो जाता है फलतः उस परिस्थिति में पूँजी का निवेश भी बन्द हो जाता है, उत्पादन और ज्यादा बढ़ नहीं पाता है तथा आय भी बढ़ना बन्द हो जाती है। इसके परिणाम से जनता की क्रय क्षमता अत्यन्त

कम हो जाने से स्थिति बहुत ही खतरनाक हो जाती है। इस तरह, परिस्थिति इतना ज्यादा धुँधली एवं निराशाजनक हो जाती है कि तब बाजारों में सामान खरीदने वाले खरीददारों की संख्या अत्यन्त ही कम हो जाती है। यदि कहीं भी उत्पादन में कमी एवं श्रम की बाहुल्यता हुई, तो वहाँ मन्दी का प्रभाव तीव्र हो जाता है। भारतवर्ष में बिहार, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना एवं उड़ीसा श्रमिक बाहुल्य क्षेत्र है। परिणामतः इन सब स्थानों में मन्दी के दौरान ज्यादातर व्यवसाय एव वाणिज्य बन्द होने लगते हैं। जब श्रम बाहुल्य परिक्षेत्र में मजदूरी की दर कम हो जाती है, तब श्रमिक लोग काम की तलाश में श्रमिक अभाव वाले क्षेत्रों की ओर चले जाते हैं, जिससे समस्या और भी बढ़ जाती है। इस तरह श्रमिक बाहुल्य क्षेत्र में बेरोजगारी की समस्या और भी बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में एक सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में खाद्य पदार्थों के स्थानान्तरण पर रोक लगाने से उस क्षेत्र में प्रचण्ड अभाव उत्पन्न होता है। उस कारण से, श्रमिक अभाव वाले क्षेत्र में कोई निश्चित वैधानिक प्रतिबन्ध आरोपित करना

उचित नहीं है। फलतः देश में मन्दी के समय ऐसे क्षेत्र में जहाँ कृषि उत्पादन अतिरिक्त होता है तथा श्रमिकों की कमी वाले क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं।

आर्थिक मन्दी के प्रभाव— आर्थिक मन्दी के हाथों से पूँजीवादी देश, कम्यूनिष्ट देश एवं तथाकथित समाजवादी देश, भारत वर्ष और मध्य प्राच्य (middle east) कोई भी बच नहीं सकेंगे। कुछ औद्योगिक उन्नत देशों में या उनके अनुवर्ती देशों में भारतवर्ष बहुत सा कच्चा माल निर्यात करता है। यद्यपि अतीत में एक समय भारतवर्ष कपास का निर्यात करता था, किन्तु वर्तमान में कुछ बाहरी देशों से कपास या कपास जैसा ही कुछ कच्चा माल आयात करता है। फलतः भारत वर्ष आयात-निर्यात के क्षेत्र में जिन सभी देशों पर निर्भर करता है, वहाँ मन्दी का प्रभाव दिखाई देगा। उसके अलावा बाहर के देशों के पास भारतवर्ष का कुछ ऐसा ऋण है जो मन्दी के समय भारत वर्ष की अर्थव्यवस्था को संकट में डाल देगा। इसलिए मन्दी की लपटों

से भारतवर्ष भी बच नहीं सकेगा। यदि मौद्रिक वाणिज्य के बदले, वस्तु विनिमय के वाणिज्य पर अधिक ध्यान दिया जाय, तभी भारतीय अर्थव्यवस्था में मन्दी का प्रभाव बहुत ही कम हो जायेगा। इसलिए भारत को वस्तु विनिमय वाणिज्य को और भी बढ़ाना चाहिए। बंगलादेश औद्योगिक वस्तुएँ, कच्चा जूट, चमड़ा का निर्यात करता है एवं खाद्य एवं दूसरी वस्तुओं का आयात करता है। यदि बंग्लादेश इस मन्दी से बचना चाहता है तब वस्तु विनिमय के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

कालान्तर में, अरब जैसे तेल की बिक्री पर निर्भर रहने वाले देशों पर मन्दी का प्रभाव सबसे ज्यादा पड़ेगा। इसी तरह सभी कम्यूनिष्ट देश भी मन्दी के प्रभाव से बच नहीं सकेंगे ये सभी देश अपनी खाद्य समस्या का समाधान नहीं कर सकते हैं। उनके पास ढेर सारा सञ्चित धन अवश्य है पर उसे गेहूँ के लिए कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि डॉलर पर निर्भर रहने वाले देशों पर मन्दी

होगी, तो उसका प्रभाव ज्यादा न होने पर भी समाजवादी देशों पर भी मन्दी का प्रभाव कुछ न कुछ पड़ेगा।

मन्दी कोई स्वाभाविक घटना नहीं है। अल्पकालिक विरति (विराम) प्राकृतिक घटना है। प्रउत की आर्थिक व्यवस्था में अल्पकालिक विराम आ सकता है किन्तु मन्दी कभी भी नहीं आयेगी। मन्दी से समाज को बचाने के लिए प्रउत, उत्पादन बढ़ाने का, लोगों की क्रय क्षमता में वृद्धि करके, आर्थिक विषमता को दूर करके, अर्थ की गतिशीलता को अक्षुण्य रखने पर जोर देता है। थोथे नारों से कुछ नहीं होता है। उत्पादन वृद्धि में पूरा मन लगाना होगा।

पूँजीवादी एवं साम्यवादी देशों की उत्पादन व्यवस्था त्रुटिपूर्ण है। पूँजीवादी देशों मे श्रमिक लोग प्रबन्धक मण्डल के हित पूर्ति हेतु ठीक से कार्य नहीं करते हैं। प्रबन्धक मण्डली भी सम्पत्ति को केन्द्रीकृत बनाए रखने के कारण अर्थ को गतिशील

करना नहीं चाहती है। साम्यवादी देशों के श्रमिक लोग किसी भी काम को अपना काम नहीं समझते हैं जिसके कारण वहाँ उत्पादन व्यवस्था दोनों विधियों की त्रुटि से युक्त है।

लोगों के आदर्श एवं मनोभाव के स्वस्थ समन्वय पर ही प्रउंत प्रतिष्ठित है। किन्तु दूसरे सामाजिक आर्थिक व्यवस्थाएँ लोगों के बहुमुखी विकाश एवं अस्तित्व रक्षा के लिए प्रतिकूल हैं। वित्त कोष स्थिति Bullion inflation पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था में पूँजीपतियों के मुनाफे को ध्यान में रख कर ही उत्पादन होता है तथा व्यक्ति, समूह या राष्ट्र के खजाने में मुनाफा जमा होता है। समाजवादी या साम्यवादी (कम्यूनिष्ट) आर्थिक व्यवस्था में मुनाफा के नाम मात्र हिस्सा के अतिरिक्त पूरा का पूरा हिस्सा राज्य के खजाने में जमा होता है। वास्तविक उत्पादकों को मुनाफे का बहुत ही थोड़ा सा हिस्सा प्राप्त होता है। दोनों ही व्यवस्था मे पूँजीवाद का ही अस्तित्त्व उपस्थित है। फलतः किसी भी नयी पूँजी निवेश पर मुद्रास्फीति होती है।

प्रउत की आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन पूर्णतया उपयोग के लिए ही होगा। जहाँ मुनाफा का कोई उद्देश्य नहीं रहता, वहाँ नयी मुद्रास्फीति भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। प्रउत के उपभोग या उत्पादन व्यवस्था में अर्थ का मूल्य प्रथम स्तर मे अपरिवर्तित रहने से जनता की क्रय क्षमता पूर्णतः सुनिश्चित रहती है। दूसरे स्तर में, संशोधित अर्थव्यवस्था में जब उत्पादन वृद्धि होगी, तब अर्थ अपने वास्तविक बाजार मूल्य को पुनः प्राप्त कर लेगा। अन्ततः उपभोग के बाद अर्थ अपने वास्तविक मूल्य को फिर से प्राप्त कर लेगा। परिणामतः मुद्रास्फिति को नियन्त्रित करके जनता के जीवन रक्षा हेतु दैनिक आवश्यक वस्तुओं आदि के साथ पूर्ण क्रयक्षमता की भी सुनिश्चितता प्रदान करना सम्भव होगा। दूसरा स्तर मूलतः दस से पन्द्रह वर्ष तक चलेगा। इस अवधि के गुजर जाने के बाद तीसरा स्तर आयेगा जहाँ लोगों के दैनिक प्रयोजनीय वस्तुओं आदि में वृद्धि होगी

एवं लोगों की क्रय क्षमता बढ़ जायेगी। राष्ट्र की यह क्रय क्षमता क्रमशः तेजी से बढ़ती जायेगी।

कागजी मुद्रा को लगातार छाप करके उसका बाजारी चलन करते रहने से वित्त कोष (Bullion) की मूल्य वृद्धि नहीं होती है। क्योंकि ऐसी मुद्रा का वित्त कोषीय मूल्य कुछ भी नहीं है। इसलिए, इन सब कागजी मुद्राओं का चलन बन्द कर देना उचित है तथा नई मुद्रा को नये रंग और आकार में छाप कर एवं उसका नया वित्त कोषीय मूल्य निर्धारित करके ही बाजार मे चलाना उचित है। राष्ट्रीय खजाने मे उल्लेखित अनुपात मे स्वर्णमुद्रा न रखकर किसी भी सरकार को कागज की मुद्रा छाप कर बाजार में चलाना उचित नहीं है। उसे केवल प्रउत प्रस्तावित (Proutist) सरकार द्वारा ही लागू किया जा सकता है।

उत्पादन स्फीति - उत्पादन स्फीति की समस्या को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। मुख्यतः दो अवस्थाओं में

उत्पादन स्फीति हो सकती है। प्रथमतः वैज्ञानिक पद्धति के अबाध प्रयोग के कारण क्षेत्र (इकाई) विशेष किसी विशेष क्षेत्र (इकाई) में कोई वस्तु ज़रूरत से ज़्यादा उत्पादित होती है। तब यह अधिक उत्पादित उपभोक्ता सामग्री वितरण व्यवस्था में एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। द्वितीय अचानक किसी व्यवस्था का आश्रय लेने के कारण किसी उपभोक्ता वस्तु के उत्पादन में वृद्धि होने से उपयुक्त बाजार मिलना भी कठिन हो जाता है।

अब एक प्रश्न पैदा हो रहा कि क्या इस तरह की उत्पादन स्फीति से, साधारण मनुष्यों की क्रयक्षमता की वृद्धि हो सकती है? अथवा क्या उनके जीवनयापन की वृद्धि स्तर उन्नत हो सकती है? साधारण परिस्थिति में इस तरह की उत्पादन स्फीति कोई बड़ी समस्या नहीं है किन्तु यह अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए बाजार प्राप्त न होने पर यह अतिरिक्त उत्पादन एक जटिल समस्या का रूप हो सकता है। तीन तरह के उपाय

अपनाकर, हम लोग निश्चित ही इस समस्या का सामना कर सकते हैं।

पहला-अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शुरू होने से एक देश का अतिरिक्त उत्पादन अन्य देशों में उपयोग किया जा सकता है। विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के मध्य भी यही उपाय लागू किया जा सकता है। भारत में पञ्जाब एवं हरियाणा को छोड़कर दूसरे राज्यों में दुग्ध उत्पादन में कमी आयी है। दूसरे राज्यों की जनता को इस कमी के कारण पर्याप्त मात्रा मे दूध नहीं मिल पाता है। यूरोप में भी इस तरह के बहुत से देश हैं जहाँ अतिरिक्त दूध उत्पादित होता है। उस परिस्थिति में इग्लैंड, जर्मनी एवं स्वीडन की सरकारें जनता को गौ हत्या का निर्देश तक भी देती हैं जो निश्चित ही युक्ति संगत नहीं है। इस हालत में यदि मुक्त व्यापार की पद्धति शुरू, हो तो कम दूध उत्पादन वाले देशों एवं अतिरिक्त दुग्ध उत्पादन वाले देशों के बीच एक आपसी लेन-देन की पद्धति को प्रयोग ने ला सकेंगे। फलस्वरूप कम उत्पादन

करने वाले देश, अतिरिक्त उत्पादन करने वाले देशों के अतिरिक्त दूध का उपयोग करने में सक्षम होंगे। ऐसा करने से सभी सम्बधित देश भी लाभान्वित होंगे। इस मुक्त व्यापार पद्धति से मेरा यही तात्पर्य है कि इसमें किसी भी प्रकार का आयात-निर्यात शुल्क नहीं लगाया जायेगा। फलतः उस तरह की उपभोक्ता सामग्रियों की कीमत कम हो जायेगी। खरीददार जनता बाजार में कम कीमतों की उपभोक्ता सामग्री खरीदकर लाभान्वित होगी।

दूसरा-सभी देशों में अतिरिक्त उत्पादित सामग्रियों का ठीक तरह से सुव्यवस्थित भण्डारण होना जरूरी है। बंगाल के मालदाह जिले में आम का अतिरिक्त उत्पादन होता है। आम चूँकि बहुत ही जल्दी सड़ने वाला फल है। तब भी उस जिले में आम के संरक्षण की समुचित व्यवस्था नहीं है। इसलिए उस जिले के सभी आम उत्पादक लोग कम कीमत में ही आम बेच देते हैं। किन्तु वही आम यदि ठीक ढंग से संरक्षित किया जाता,

और यदि वे लोग उसे चार महीने बाद बेचते तो बाजार में अच्छी कीमत प्राप्त करते। और यदि आम प्रसंस्करण का कारखाना लगाकर आम से वे लोग, जेली (Jelly), जैम (jam), आमरस (Mango juice) आम सत्व इत्यादि तैयार करने की व्यवस्था करें, तब वे लोग इस उपभोक्ता सामग्री को और भी बहुत दिनों तक संरक्षित रख सकेंगे। यूरोप एवं विश्व के दूसरे हिस्सों में ऐसे ब्रहुत से देश हैं जहाँ आम नहीं होते हैं। यदि संरक्षण की व्यवस्था निर्मित की जाय तब उन सब यूरोपीय देशों में सहजतापूर्वक आम बेचा जा सकता है और इस प्रकार आम उत्पादक पर्याप्त आय अर्जित करने में सक्षम होते।

भारत में ऐसे बहुत से स्थान हैं जहाँ शीत काल में पर्याप्त मात्रा में शाक-सब्जी उत्पन्न होती है। दूसरी तरफ शीत काल में अत्यन्त ठण्डक होने से यूरोपीय देशों में शाक-सब्जी उत्पादन बिल्कुल ही नहीं होता है। दृष्टान्त के रूप में भारत में बंगाल के नदिया ज़िला को उद्धृत किया जा सकता है। इस ज़िला के

रानाघाट, नागो, बागो इत्यादि स्थानों में शीत काल में कई प्रकार की सब्जियाँ पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती हैं। यदि उन सब स्थानों में प्रसंस्करण के कारखानें स्थापित किये जाएँ, तब तेजी से सड़ने वाली सब्जियों को टीन के डिब्बों में बन्द करके आसानी से संरक्षित किया जा सकता है, और तब उसे दूसरे देशों में निर्यात किया जाना सम्भव हो सकेगा। कोलकाता से जलपोत द्वारा यूरोप माल भेजने में ज्यादा-से-ज्यादा २० दिन का समय लग सकता है। इसलिए दूसरी जगह आपूर्ति करते समय उसी तरह की फसलों के लिए उचित संरक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। पान के पत्तों के व्यवसाय के लिए भी तदनुरूप व्यवस्था की जा सकती है। संरक्षण की उचित व्यवस्था होने पर तमलुक, मेचदा, बागनान, इत्यादि स्थानों के गरीब पान उत्पादक लोग निकट भविष्य में समृद्ध जीवनयापन करने में सक्षम होंगे।

तीसरा-उत्पादित उपभोक्ता सामग्रियों का और भी विभिन्न तरह से कैसे उपयोग में लाना सम्भव है, इसका भी

रास्ता खोज कर प्राप्त कर लेना होगा। अर्थात् उपभोक्ता सामग्रियों का उपयोग भी प्रगतिशील तत्त्व के अनुसार विभिन्न पद्धति में होना उचित है। उदाहरण स्वरूप वर्तमान भारत में तीसी का उपयोग सीमित रूप से ही होता है। यदि तीसी से निकाला गया तेल दुर्गंध रहित बना दिया जाय, तब उसे बाजार में भोज्य तेल के रूप में व्यापक रूप से उपयोग में लाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त तीसी के पौधे से भी लिनेन सूत उत्पन्न हो सकता है लेकिन अभी पौधों को नष्ट कर दिया जाता है। भारत में भिण्डी का प्रचुर उत्पादन होता है। किन्तु उसका उपयोग केवल सब्जी के रूप में ही होता है। लेकिन भिण्डी के बीज से तेल निकल सकता है और उसे भी भोज्य तेल के रूप में बाजार में बेचा जा सकता है। वस्तुतः भिण्डी के पेड़ से महीन सूत भी निर्मित करना सम्भव है, और इस सूत से उन्नत स्तर के वस्त्रों का उत्पादन हो सकता है।

बंगला देश एवं पश्चिम बंगाल में जूट (पाट) का अतिरिक्त उत्पादन होता है। पाट (Jute) का यह अतिरिक्त उत्पादन आज एक बड़ी समस्या बन चुकी है। पाट विनिर्मित वस्तुओं के विभिन्न प्रकार के उपयोग के द्वारा अतिरिक्त पाट की इस समस्या को सहज ही दूर किया जा सकता है। पाट से हम लोग बहुत ही पतले एवं महीन सूत तैयार करके उन्नत स्तर का वस्त्र तैयार कर सकते हैं।

मुक्त व्यापार नीति को पूरे विश्व मे शुरू करने में भौम भाव-प्रवणता (Geo-sentiment) आज बहुत प्रकार से बाधा उत्पन्न कर रही है। इस सम्बन्ध में, साम्यवादी देश एवं पूँजीवादी देश, दोनों ही मुक्त व्यापार नीति का विरोध कर रहे हैं। उन लोगों के इस विरोध का कारण है, कि इससे इन लोगों के अपने-अपने देशों के उद्देश्य पूर्ण स्वार्थ में चोट लगती है। किन्तु दुनिया में आज मुक्त व्यापार के उज्वल एवं सफल केन्द्र के उदाहरण में कुछ अच्छे स्थानों को हम लोग देख रहे हैं। जैसे सिंगापुर है।

कलिकाता को मुक्त व्यापार केन्द्र के रूप में निर्मित करने की बात उठी थी। किन्तु सम्बन्धित नेताओं की कमजोरी एवं और भी दूसरे कारणों से योजना आज तक चरितार्थ नहीं हो सकी। यदि वह किया गया होता, तो बंगाल को उससे विपुल लाभ प्राप्त होता। प्रउत द्वारा संसोधित आर्थिक संरचना में किसी भी प्रकार की उपभोक्ता सामग्री के आयात-निर्यात पर शुल्क लगाने की पूर्ण मनाही रहेगी। यदि उपर्युक्त विचारों को स्वीकार्य कर लिया जाय तो यह धूल-धूसरित धरती ही सोने की पृथ्वी में बदल जायेगी।

कम्यून संचालित आर्थिक संरचना में उत्पादन की कमी रहती है। इसी कारण, साम्यवादी (Communist) देशों में अपने मतवाद को लेकर बड़ी-बड़ी बातें कहने के बावजूद आज भी पूँजीवादी देशों से खाद्य पदार्थों का आयात किये जा रहे हैं। वे लोग इस मुक्त व्यापार नीति का भी विरोध कर रहे हैं।

शीघ्र खराब न होने वाली उपभोक्ता सामग्री एवं कच्चा माल का यदि अतिरिक्त उत्पादन हो भी जाता है तो ध्यान देना होगा कि इन सामग्रियों का निर्यात दूसरे देशों को न होने पाये। उसके बदले उस कच्चे माल को स्थानीय रूप से बेचने लायक तैयार माल में बदलना होगा। उदाहरणस्वरूप राढ़ का पश्चिमांश, उड़ीसा राज्य, मध्यप्रदेश का कोई-कोई क्षेत्र, बिहार का दक्षिणांश, एवं तैलंगाना कच्चे माल का बहुत ही समृद्ध स्थान है। इन सब अविकशित क्षेत्रों को उपर्युक्त आर्थिक योजना के द्वारा जर्मनी के राइन के तरह विकशित क्षेत्रों में बदला जा सकता है। इन सभी पिछड़े स्थानों में कारखाना स्थापित करके कच्चे माल को बेचने के योग्य तैयार माल में बदलकर द्ररिद्र्य पीड़ित आम जनता के जीवन यापन का स्तर उन्नत हो सकता है। कोई देश यदि अपना कच्चा माल बाहर निर्यात करे, तब जान लेना होगा कि उस देश की आर्थिक स्थिति स्वस्थ नहीं है। यदि उन्नतशील वैज्ञानिक विधि प्रयोग से किसी देश की कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में अतिरिक्त उत्पादन करना सम्भव होता है, तो

उल्लिखित उपायों के अनुसार अतिरिक्त उपभोक्ता सामग्रियों के उपभोग की विधि या व्यवहार में विविधता लाकर अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन की समस्या का समाधान किया जा सकता है। इस तरह जनता की क्रयक्षमता बढ़ जायेगी। इस विषय पर प्रकृति के विपुल उदार प्राचुर्य साधारण जनता के जीवन में समृद्धि का आशिर्वाद लायेगा। अतएव प्रउत की आर्थिक संरचना में उत्पादन स्फीति (अतिरिक्त उत्पादन) की कोई समस्या नहीं है।

प्रउत सभी रोगों का मकरध्वज - मानव समाज के सुसन्तुलित सर्वात्मक विकाश के लिए प्रउत सभी रोगों की एकमात्र मकरध्वज (औषधि) है। अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण

पुनर्विन्यास करके, प्रउत समाज आर्थिक जीवन में भारगत-भारसाम्य एवं शक्तिगत-भारसाम्य लेकर आयेगा। प्रउत को छोड़ देने पर सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र की दुःख दुर्दशा से

मुक्ति पाने की आशा स्वप्न ही रह जायेगी। इसके अलावा, प्रउत वाह्यिक एवं आभ्यन्तरीण जड़ता या गतिहीनता (staticity) की त्रुटि से पूर्णरूपेण मुक्त एक गतिशील तत्त्व है। केवल प्रउत ही विश्व को मन्दी से बचा सकता है।

पूँजीवाद में वाह्यिक एवं आभ्यन्तरीण गतिहीनता है। साम्यवाद में भी व्यापक एवं गम्भीर परिमाण में उसकी अन्तर्निहित गतिहीनता है। प्रउत इन सब से विमुक्त है। लोग समाज की इस त्रुटि से पीड़ित होंगे। यही त्रुटियाँ ही निकट भविष्य में दुनिया के सभी तरह के मतवादों को समाप्त करेगी। इसलिए बुद्धिमान लोगों को वर्तमान समय का ठीक से सद्व्यवहार करना चाहिए। आज हम लोग वैश्य युग के अवशान काल के करीब पहुँच गये हैं। यदि अभी एक बड़ी तरंग उत्पन्न किया जाय तो उत्पीड़ित दुःख लोगों के भाग्य परिवर्तन में मदद करेगा। यही स्वर्णिम अवसर प्राप्ति का सही समय है। एक सर्वात्मक क्रान्ति करने के लिए इसका प्रयोग करना है। प्रउत

विचारधारा (दर्शन) का यह एक उपदर्शन है जिसे हम लोग गति विज्ञान या Science of dynamics नाम से पुकार सकते हैं।

कलिकाता, १३ सितम्बर १९८७

कणिका में प्रउत

(खण्ड १४)

अनुक्रमणिका

जन्मजात प्रतिभावान एवं तकनीक विद्

जो लोग समझते हैं कि उन्हें बहुत काम करने हैं, उनमें से ज़्यादातर लोग सोचते हैं कि काम तो ठीक ही ज्यादा करना है किन्तु मुझमे ज्ञान कितना कम है, विद्या कितनी थोड़ी है, बुद्धि बहुत ही अल्प है। दूसरे लोग मेरी बात क्यों सुनेंगे ? मानेंगे क्यों ? ये सभी बातें भी वे लोग सोचते हैं, निश्चित ही सोचते रहते हैं।

हाँ, यह सत्य है। है कि बहुत से काम करने हैं। मानव जाति, अपनी यात्रा पथ के आदि बिन्दु से बहुत ज्यादा आगे नहीं बढ़ पाई है, बहुत ही कम आगे बढ़ सकी है। मनुष्य का आविर्भाव धरती की गोद में, अनुमानतः दस लाख वर्ष पूर्व हुआ था। इन दस लाख सालों में मनुष्य ने ऐसी कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं की है, और इस प्रगति के पथ मे मनुष्य को अपने प्रारम्भिक दौर, बैलगाड़ी के युग से ही ज्ञानार्जन मे लगना पड़ा है।

तुम लोग जानते हो कि पृथ्वी की बहुत सी सभ्यताएँ काफी प्राचीन हैं। जैसे इजिप्सीयन सभ्यता, भारतीय सभ्यता, चैनिय सभ्यता एवं उत्तर अमेरिका के दक्षिणान्श एवं दक्षिण अमेरिका के उत्तरान्श की माया सभ्यता.

मनुष्य की यात्रा के आदि बिन्दु से अब तक के लम्बे अन्तराल पर दृष्टिपात करने से ऐसा नहीं लगता कि इन सभ्यताओं ने कोई बहुत ज्यादा प्रगति की है। फिर भी

तुलनात्मक दृष्टिकोण से इन सभ्यताओं ने कुछ प्रगति की थी। किन्तु इनमें कई सभ्यताएँ भी अन्त तक, समय के थपेड़ों से अपनी रक्षा नहीं कर सकीं। वे अपनी रक्षा इसीलिए नहीं कर सकीं, क्योंकि उनमें जीवन में सर्वात्मक समन्वय का अभाव था। वे सभी अपने को सम्भाल कर नहीं चल सकीं।

किसी ने पूरे समाज को ही परामर्श दिया था, कि सब कुछ छोड़कर हिमालय जाकर बैठे रहो। वैसा होने पर तो जीवन के अन्य सभी पहलू उपेक्षित हो गये। पुनः किसी ने कहा नहीं, संन्यास की कोई जरूरत नहीं है, सभी लोग अपने घरों मे ही रहो। घरों में लोगों को विभिन्न समस्याओं के साथ ही तो रहना होता है। मान लो, किसी को यदि कहूँ अभी, आज ही उत्तरी ध्रुव की ओर प्रस्थान करो, क्या वह ऐसा कर सकेगा ? वह कहेगा अभी नहीं रुको भाई अभी और तीन महीने इन्तजार कीजिए, लड़की की शादी करनी है। बेटे को परीक्षा देनी है। उसे इस तरह की अनगिनत समस्याओं को सम्भालना पड़ता है।

अनुक्रमणिका

पुनः कोई कहता है कि सन्मार्ग पर चलो का नीति वाक्य ही सबसे बड़ी बात है। प्रश्न है कि सन्मार्ग पर चलने से ही क्या सभी काम हो जायेंगे ? सोचते हो कि जिस रास्ते पर चल रहा हूँ, वह बहुत ही अच्छा है। किन्तु जिस रास्ता में चल रहे हैं वह रास्ता कहाँ जायेगा ? कैसे जायेगा, इसे तुम नहीं जानते हो। केवल सन्मार्ग में चलना ही पर्याप्त नहीं है। सन्मार्ग पर चलने के साथ ही लक्ष्य का सही होना भी तो जरूरी है। फिर सन्मार्ग पर चलने के नियम-कानूनों को भी तो सीखना होगा। अर्थात् चलते-चलते खाने-पीने रसद-पानी आदि की भी तो व्यवस्था करनी ही होगी। सभी पहलुओं को समझते हुए चलना होगा। इन सभी पहलुओं की ओर चलने का गुण न होने के कारण ही प्राचीन सभ्यताओं में से कोई समाप्त हो गई, कोई अन्तिम साँसें गिन रही है। तथा दूसरी सभ्यताओं के सम्पर्क में आकर किसी ने अपने को इस तरह से बदल लिया है कि उनके पुराने रंग को अब और पहचानना सम्भव नहीं है।

वैसे ही हुआ है - जैसे एक बार एक दूध बेचने वाले को एक व्यक्ति ने कहा कि तुम तो मुझे एक रुपये में एक सेर दूध देता हैं किन्तु फलाने व्यक्ति का ग्वाला उन्हें एक रुपये में २ सेर दूध देता है। तब उस दुग्ध विक्रेता ने कहा कोई बात नही हैं मैं भी एक रुपये में २ सेर दूध दे दूँगा और उस ने एक रुपए में २ सेर दूध देना शुरू कर दिया। तब कुछ दिनों के बाद उन्होंने पुनः दुग्ध विक्रेता को कहा कि अमुक व्यक्ति का ग्वाला उन्हें एक रुपए मैं सोलह सेर दूध देता है, तब ग्वाले ने कहा कोई बात नहीं है मैं भी एक रुपये में १६ किलो दूध दूँगा। पुनः उन्होंने - दुग्ध विक्रेता को कहा कि अमुक व्यक्ति का ग्वाला उन्हें १ रुपये में १८ सेर दूध देता है। तब उस ग्वाले ने कहा कि १ रुपये मैं १८ सेर दूध तो मैं भी दे सकता है किन्तु तब दूध का रंग सफेद रखना सम्भव नहीं हो सकेगा।

इसी तरह बहुत सी सभ्यताएँ, दूसरी सभ्यताओं के सम्पर्क में आकर इस तरह से बदल गई हैं कि उनकी असलियत अब खोजने पर भी नहीं मिल पा रही है। यह उसी तरह से है जैसे आर्य पूर्व बंगाल की प्रागैतिहासिक सभ्यता का असली रूप आज खोजने पर भी नहीं मिल रहा हैं। हाँ, इसे इस तरह से समझा जा सकता है कि उस प्राचीन युग में बंगाल की औरतें घूँघट नहीं उठाती थीं, क्योंकि उस युग की सभी औरतें अपने जुड़ों में कजरौटा खोंसती थीं। तुम लोग जानते हो कि जूड़ों में कजरौटा खोंसे रहने पर घूँघट को रखना सम्भव नहीं है। क्योंकि घूँघट उसी मे अटक जायेगा। आज कल औरतें सर में कजरौटा नहीं खोसती हैं। उस युग में सभी लड़कों की कमर में बटुआ रहता था, किन्तु अभी वे लोग बटुआ खौस कर नहीं रखते हैं। अभी केवल शादी करने के समय ही लड़के सरौता लेते हैं, लड़कियाँ सिर में कजरौटा खोंसती हैं। उसे देखकर ही पुरानी आदतों को पहचाना जा सकता है कि उस युग में जैसा था वैसा आज नहीं है। दुनिया में सभी कुछ परिवर्तनशील है,सब कुछ

इसी ढंग से ही बदलते हुए, आगे की ओर बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी में कुछ भी स्थिर नहीं है। दुनिया की सबसे प्राचीन मिश्र की इजिप्तियन सभ्यता, एवं दक्षिण अमेरिका की माया सभ्यता में इस प्रकार से तब्दीली हुई है कि इनकी पुरानी प्रथाओं के अवशेष आज खोजने पर भी लेश मात्र भी दिखाई नहीं देते हैं। इन दोनों के पतन के मुख्य कारण क्या है? माया सभ्यता इसीलिए पिछड़ गई, क्योंकि वह पहिया का अविष्कार नहीं कर पाई। उनकी स्लेज गाड़ी को हरिण खींचते थे। उत्तरी ध्रुव में अभी भी बिना पहिए की स्लेज गाड़ियाँ बर्फ पर उसी तरह खींच कर चलाई जाती हैं। पहिए की खोज नहीं कर सकने के कारण ही माया सभ्यता पिछड़ते-पिछड़ते पूरी तरह से ही मिट गई। पहिया गति का द्योतक है। पहिया की खोज न कर पाने के कारण ही गाड़ी का आविष्कार करना भी सम्भव नहीं हुआ। यातायात की सुविधा प्राप्त न होने से तथा यान्त्रिक ऊर्जा को काम में नहीं लगा पाने की वजह से ही पूरी माया सभ्यता समाप्त हो गई।

जिस इजिप्तियन सभ्यता ने एक समय बड़े-बड़े पिरामिड बनाए थे। ममी बनाकर मृत देहों को संरक्षित करने की व्यवस्था की थी और भी बहुत कुछ किया था। वह मिश्र की सभ्यता भी पिछड़ती गई। इसके पिछड़ने का मुख्य कारण यही था कि सभ्यता के संरक्षण के लिए, जिस क्षात्र शक्ति की जरूरत पड़ती है, उस पर इसने कोई ध्यान नहीं दिया था। चैनिक सभ्यता समाप्त नहीं हुई, केवल परिवर्तित हुई है और अभी भी होती ही जा रही है। भारतीय सभ्यता भी नष्ट नहीं हुई, यह भी परिवर्तनों के दौर से गुजर रही है। किन्तु भारतीय सभ्यता भी इतना ज्यादा परिवर्तित हुई है कि इसका पुराना रंग, सुचारू रूप से खोजने पर मिलना मुश्किल ही है। यह कहा जा सकता है कि वैदिक युग के जीवन या पूर्व वैदिक-द्राविड़ युग के जीवन के साथ आज के भारत का कोई सम्पर्क नहीं है। बहुत परेशानी उठा कर ही उस युग के अवशेषों को आज खोज कर निकाला जाता है। सभ्यता को बचाने के लिए उससे सम्बन्धित बहुत से पहलुओं पर नजर रखना जरूरी है। उसे अच्छी तरह से तभी बचाया जा सकता है

जब यदि वह सभी समय सभी पहलुओं के साथ सामञ्जस्य बना कर चले।

अब असली बात पर आया जाय मैं पहले बोल चुका हूँ की धर्म का तात्पर्य जीवन की सभी अभिव्यक्तियों का समन्वित रूप है। इसलिए, हम लोगों को अपने धार्मिक जीवन में किसी भी पहलू की उपेक्षा नहीं करनी है। किसी भी पहलू को नहीं छोड़ना है। हम लोगों के यहाँ संन्यासी हैं, गृही भी हैं। सभी को साथ लेकर ही हम लोगों का धर्मीय जीवन है। हम लोग कुछ को भी या किसी को भी अस्वीकार नहीं करते हैं। सभी की असली खूबी को स्वीकार किया हूँ, भविष्य में भी करूँगा। और भविष्य में ऐसा करेंगे कह कर ही दुनिया में सभी मनुष्यों को एक प्लेटफार्म पर खड़ा कर सकूँगा। कर सकूँगा क्यों कहूँगा, हम किये हैं तथा भविष्य में और भी अच्छी तरह से कर सकेंगे।

तुम सभी लोग इस बात को हमेशा याद रखकर ही दुनियावी कामों को करते चलो। याद रखो कि मानव जीवन एक फूल मात्र नहीं है, फूलों का एक गुलदस्ता है अथवा सोच सकते हैं कि मनुष्य का जीवन फूलों का एक बगीचा है। जिसमें विभिन्न प्रकार के फूल खिले हुए हैं और इन नाना प्रकार के फूलों के एक साथ खिलने से ही बगीचे की सामग्रिक शोभा है। पूरा बगीचा ही यदि केवल मैगनोलिया, ग्रानी फ्लोरा के फूल खिलते तो एक ही तरह के फूलों को देख कर अच्छा तो लगता, किन्तु पूरे बगीचे पर नजर दौड़ाने पर उतना अच्छा नहीं लगता। विभिन्न रंगों के गुलाब के फूल होने पर ही बगीचे की शोभा बढ़ती है, सौन्दर्य बढ़ता है।

मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के बीच भी उसी प्रकार से हम लोग सामञ्जस्य बनाकर आगे बढ़ते जायेंगे। सभी के समन्वय में एकता का अनुभव करेंगे। हम लोग ऐसा क्यों कहेंगे की भविष्य में अनुभव

करेंगे बल्कि हमलोग इसका अनुभव कर रहे हैं। इसीलिए हम लोग अपनी क्षुद्र शक्ति को संगठित कर सके हैं। छोटी-छोटी शक्तियाँ संगठित शक्ति के रूप में बहुत बड़ी शक्ति से भी शक्तिशाली होती हैं। सभी समय सतर्क रहना होगा कि हम लोगों के बीच में से कोई एक व्यक्ति भी थोड़ा भी अवहेलित एवं उपेक्षित न हो। कोई एक छोटा सा लड़का या लड़की भी मन-ही-मन यह न सोचे की कोई मुझ पर ध्यान ही नहीं देता है। कोई एक लड़का भी जैसे यह न सोच पाये की मैंने खाना खाया कि नहीं, यह किसी ने भी नहीं पूछा। इन सभी पर विशेष रूप से सतर्कता बरतोगे। विशेष करके तुम लोगों में से जिन्होंने बहुत सारे दायित्त्व लिए हैं, वे लोग याद रखेंगे कि "मैंने भोजन किया कि नहीं, किसी ने नहीं पूछा;" इस बात को अपने ऊपर प्रयोग नहीं करोगे। सोचोगे की कोई तो ऐसा नहीं सोचा कि मैंने खाया नहीं। यह सोचने की अपेक्षा स्वयं ही सभी की आवश्यकताओं एवं परेशानियों को दूर करने का दायित्त्व ले लो। अर्थात् अपने-अपने अधिकार के सम्बन्ध में ज्यादा मत सोचकर अपने

दायित्त्व के सम्बन्ध में ज्यादा सोचो। तथा औरतों का तो स्वभाव ही है की वे दूसरों की सुख-सुविधाओं का विशेष ख्याल करती हैं एवं आशा करता हूँ की हम लोगों की लड़कियाँ तो और भी ज्यादा ख्याल करेंगी। यह बात मैं लड़कियों के मन को खुश करने के लिए नहीं कह रहा हूँ। यह पूर्णतः सत्य है ऐसा ही होता रहता है। घर के लोगों को कम खिला कर अथवा अतिथि को कम खिलाकर स्वयं ज्यादा खाने का स्वभाव महिलाओं का नहीं है। तुम लोग सामग्रिक जीवन या सामूहिक जीवन में कड़ी नजर रखोगे, की कोई किसी भी तरह से उपेक्षित न हो। कोई, किसी भी तरह से वञ्चित न हो। समाज की वास्तविक प्रगति के बीज इस तथ्य के प्रति सतत सजगता में ही निहित हैं। दूसरों के भलाई के बारे में हमेशा सोचेंगे।

"सकलेर तरे सकलेर आमरा,

प्रत्येके आमरा परेर तरे ।।"

अनुक्रमणिका

हाँ मैंने कहा था की सु-प्राचीन माया सभ्यता में पहिए का आविष्कार नहीं हो सका। पहिए का आविष्कार न होने से गाड़ी का आविष्कार भी नहीं हो सका। कहीं किसी साधारण सी त्रुटि के वजह से यह हुआ है। यह घटना तो बहुत बड़ी है। किन्तु गलती बहुत ही छोटी एवं साधारण सी है। ऐसे बहुत से लोग हैं जो सोचते हैं कि कुछ करना उचित है किन्तु ऐसा अनुभव करके भी वास्तविक कार्य कर नहीं पाते हैं। ऐसे बहुत से लोग हैं जो सोचते हैं कि कार्य करना उचित है मुझे करना है। करने की प्रबल इच्छा भी है फिर भी कर नहीं पाते क्योंकि वे महसूस करते हैं कि उनमें बहुत ही खामियाँ हैं। इस काम को करने में बहुत ज्ञान की जरूरत है; और वैसा ज्ञान उनमें नहीं है। कार्य करने के लिए बहुत मेहनत मशक्कत करनी होगी और इतनी मेहनत मशक्कत वे नहीं कर सकेंगे। यही सब बहुत तरह के कारणों से व्यक्ति अपने जीवन में बहुत से सोचे हुए कार्यों को नहीं कर पाता है और बहुत समय ऐसा भी होता है कि क्या मैं ऐसा कर सकूँगा के संशय भाव के कारण भी काम करने की ठीक से इच्छा होने पर

भी व्यक्ति के मन में काम करने के लिए आत्मविश्वास का अभाव रहता है। मैं कैसे इस कार्य को कर सकूँगा? जबकि मुझसे भी कितने बुद्धिमान लोग हैं, मुझसे भी कितने साहसी लोग हैं, वे लोग तो उस कार्य को कर नहीं सके तो मैं कैसे कर सकूँगा ? मन में यही प्रश्न पैदा होता है।

मैंने पहले भी एक बार कह चुका हूँ कि जीवन में सफलता की प्राप्ति के लिए भगवान शिव द्वारा सुझाये गये अनेक कारकों में से पहला कारक है फलष्यतीति विश्वासः सिद्धेर प्रथमः लक्षलणम्" । मैं निश्चय ही कर सकूँगा, ऐसा दृढ़ विश्वास चाहिए। यह आत्मविश्वास ही किसी भी कार्य के सफलता की पहली योग्यता है और इस आत्मविश्वास को अपने मन में किस तरह निर्मित करोगे? इसे निर्मित करना क्या सम्भव है ? जैसे जीनियस (प्रतिभाशाली) निर्मित नहीं होते हैं, टेक्नीसियन निर्मित होते हैं। प्रतिभाशाली होना एक जन्मजात गुण है; और टेक्नीशियन अनवरत अभ्यास बाद ही निर्मित होते हैं। बहुत से

लोग प्रयत्न करके बन जाते हैं एवं बहुत लोग नहीं बन पाते हैं और जो जन्मजात प्रतिभाशाली हैं वे सुयोग न मिलने पर भी बन जाते हैं। रवीन्द्रनाथ स्वाभाविक रूप से कवि थे। और किसी में शौक जगने से ही दो-चार कविताएँ लिख लेता है तथा कोई लिख पाता है, कोई नहीं भी लिख पाता है। जो लिख पाने में सफल भी होते हैं उनकी कविताएँ कोई बहुत स्तरीय, न होकर औसत दर्जे की होती हैं। जिन की लाइनों को मिलाने मे बहुत ही मेहनत करनी पड़ती है। जैसे - 'पाताय पड़े निशिर शिशिर (रात की ओंस प्रत्येक पत्ते पर गिरती है।) उसके दो घन्टे बाद मन में आता है 'ताते किबा जाय आसे अमार पीसिर' (इससे हमारे चाची को कोई फर्क नहीं पड़ता।) इस तरह से जो गीत की रचना करते हैं वे टेक्नीशियन हैं। जीनीयस प्रतिभाशाली नहीं है। ऐसे बहुत से लोग हैं जिनमें मौलिक चिंतन नहीं है किन्तु कुछ लिखने का शौक है, उनके लिए दो रास्ते हैं पहला समालोचना का रास्ता है। समालोचक लोग शरदचन्द्र की समालोचना कर रहे हैं कि शरदचन्द्र यदि इस जगह में ऐसा न लिख कर यदि वैसा

लिखते, तो बहुत ही अच्छा होता। इस जगह में ऐसा लिखने से बहुत गलत हुआ है। ऐसा बोल तो देते हैं किन्तु स्वयं एक लाइन भी लिख नहीं सकेंगे। उनमें मौलिक लेखन का पूर्णतया अभाव है किन्तु उन्हें बैठे-बैठे समालोचना की ही सूझती है। ऐसे समालोचकों की समालोचना आज पूरी तरह से नकारात्मक स्तर में पहुँच चुकी है। जब उन्हें साहित्यकार के पास से न तो कुछ मिल ही पाता है या न ही मिलने की कुछ आशा करते हैं तब वे लोग समालोचक बन जाते हैं। यह बहुत ही गलत है। अथवा वे लोग पैरोडी लिखते हैं - दूसरों के विषयों पर कलम चला कर इधर-उधर या उल्टा पल्टा मन्तव्य देना-

"पाखी सब करे रब राति पोहाइल"

"रात गुजरने पर "सभी चिड़ियाँ चहचहा रही हैं" पैरोडी के रूप में लिखे जाने पर लिखेंगे - "पाखी करे रब फजर होइल।" "सुबह होने पर चिड़ियाँ चहचहा रही है।" पुनः "उठ शिशु

मुख धोड पर निज वेश। आपन पाठे ते मन करह निवेश।" इस को पैरोडी के रूप में लिखेंगे - "उठ शिशु उजू करे। पर लुन्गी फेज। आपन किताबे मन करह आमेज।" ओ बच्चे जागो और उज़ु करो, अपनी लुंगी टोपी पहनकर अपने मन को किताबों में लगाने की कोशिश करो।

रवीन्द्रनाथ एवं उनके जैसे दूसरे प्रतिभाशालियों ने स्वयं ही अपनी रचनाओं की पैरोडी की है। एक बहुत बड़े संगीतज्ञ रवीन्द्रनाथ के विशेष अनुरागी थे उनका नाम मालूम होने पर भी बताऊँगा नहीं। उनके साथ रवीन्द्रनाथ स्टार थियेटर में नाटक देखने गये थे। रवीन्द्रनाथ उस दौरान उनके सामने नहीं हुए, और किसी दूसरी जगह में बैठ गये। रवीन्द्रनाथ थोड़ी देर बाद बोले "नीचे की जेने एकटा चक-चक कर दे" (नीचे कुछ चक-चक कर रहा है") कुछ देर बाद जब उनकी उनसे मुलाकात हुई तब रवीन्द्रनाथ ने उनसे कहा मैंने तुमको खोजा था। तभी कुछ चक-चक देख कर समझा तुम आये हो। तब उन्होंने कहा कि क्या

चक-चक कर रहा था। उन्होंने कहा कि तुम्हारे सिर में रोशनी पड़ने से तुम्हारी चाँद चक-चक करके चमक रही थी। उसके बाद रवीन्द्रनाथ ने लिखा- अगल धवल पाले लेगे छे मन्द मधुर हाउआ चमकदार सफेद पाल लगी नाव पर मन्द मधुर हवा बह रही है। उसके बाद अपने ही गायी गयी इस पंक्ति की उन्होंने पैरोडी कर के साथ ही साथ सुना दिया "तेलालो चेटालो टाके लेगे छे मंझलो रो देर हाउआ" चमकीले गंजे सिर पर तेज गर्म धूप पड़ रही है। किन्तु यह पैरोडी उनकी उस प्रतिभा का अभिस्फुरण नहीं है। जो प्रतिभा रवीन्द्रनाथ मे कवि के रूप में थी यह टेक्नीशियन का कार्य है जीनियस का कार्य नहीं है। जीनियस हमेशा मौलिक लेखन करते हैं एवं नवीन रचनात्मक कार्य ही करते हैं।

यहाँ हम टेक्नीशियन की चर्चा नहीं कर रहे हैं। यहाँ पर हम लोग जीनियस (प्रतिभाशाली) की चर्चा कर रहे हैं। जीनियस (प्रतिभाशाली) होना जन्म जात योग्यता है। सभी लोगों के पास

अनुक्रमणिका

यह योग्यता नहीं होती है। किन्तु जिन लोगों में जितनी क्षमता है उतनी को काम में लगा सके वैसा प्रयत्न करना होगा, और इस चेष्टा करने का सबसे श्रेष्ठ पथ है कि यह स्मरण रखना कि परमपुरुष मेरे साथ हैं। मैं उनकी शक्ति से ही शक्तिशाली हूँ। मुझमें सामर्थ्य नहीं है तो क्या हुआ बल्कि सोचना होगा कि जब परमपुरुष के सानिध्य भाव का अनुभव कर रहा हूँ तो परमपुरुष से शक्ति का स्रोत प्रवाहित होकर मेरे माध्यम से चारों तरफ परिस्फुटित होता जाएगा। मैं उस काम को क्यों नहीं कर सकूँगा जिसको दूसरे लोग कर सकते हैं, निश्चित ही मैं कर सकूँगा।

किसी मनुष्य की सामर्थ्य या योग्यता कितनी ही कम क्यों न हो, किन्तु वह यदि हर समय याद रखे कि परमपुरुष उसके साथ हैं वह परमपुरुष के सम्पर्क में है, तो उसके द्वारा बहुत कुछ हो सकता है। वह अपने को जितना ही छोटा क्यों न समझे वह उतना छोटा अब है नहीं और जितनी देर तक परमपुरुष के साथ एकाकार का भाव उसके मन में रहता है उतनी देर तक वह

साधारण मनुष्य से बहुत ज्यादा काम करता है, बहुत ज्यादा काम कर सकता है और यह भाव जब स्थायी हो जाता है तब वह भी महान हो जाता है, इसीलिए किसी भी मनुष्य को किसी भी अवस्था में हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मनुष्य अच्छा काम करे एवं हमेशा स्मरण रखे कि मेरे सामर्थ्य का स्रोत्र परमपुरुष के पास से ही आ रहा है और मैं निश्चय ही सभी कार्य कर सकूँगा। हम लोग जिन्हें जीनियस कहते हैं वे भी तो उसी तरह से ही परमपुरुष के सामर्थ्य के एक माध्यम हैं परमपुरुष ने किसी विशेष सामर्थ्य को किसी विशेष मनुष्य के भीतर कुछ ज्यादा मात्रा में दे दिया है। बहुत ज्यादा मात्रा में नहीं कुछ ही ज्यादा मात्रा में दिये हैं। इसका कारण अभी मैंने कुछ पहले ही बताया है कि मनुष्य के अन्दर जो सामर्थ्य है उसे वह बहुत ही थोड़ी मात्रा में ही व्यवहार करता है। किसी मनुष्य में जितना भी सामर्थ्य है वह उसका मात्र एक प्रतिशत या दो प्रतिशत ही व्यवहार करता है तथा सौ में से अट्ठानबे प्रतिशत

बिना व्यवहार किए रह जाता है। रवीन्द्रनाथ का ही उदाहरण लीजिए हम लोग सोचते हैं कि कवि रवीन्द्रनाथ कितने बड़े कवि हैं। किन्तु रवीन्द्रनाथ की जितनी सामर्थ्य थी, उन्होंने उसका मात्र १० या १५ प्रतिशत ही व्यवहार किया था उससे ज़्यादा व्यवहार नहीं कर सके थे। हम लोगों ने उनको अपनी ज्यादा सामर्थ्य व्यवहार करने का सुयोग ही नहीं दिया। बहुत से झंझटों के साथ उनको अपना जीवन व्यतीत करना पड़ा था। हमलोग यदि उन्हें उन झंझटों से बचा पाते तो हो सकता है वे और भी ज्यादा लिख पाते। व्यष्टिगत रूप से मेरा यही मत है कि हम लोगों को चेष्टा करनी होगी कि लोगों में जो जीनियस (प्रतिभाशाली) हैं वे अपनी क्षमता का पूरा सद्व्यवहार कर सकें। इसलिए दुनियावी झंझटों से हमेशा उन्हें बचाते रहेंगे। क्योंकि जागतिक उलझनों का सामना करने में मनुष्य की इतनी उर्जा खप जाती है कि वह फिर अपनी उच्चतर क्षमताओं को और काम में लगाने का मौका नहीं पाता है। शरदचन्द्र को अपने जीवन में यदि उस तरह

के जीवन बुद्ध से जूझना नहीं पड़ता तो हो संकता है और भी ज्यादा लिख सकते थे।

रविन्द्रनाथ के साथ भी वही बात लागू होती है। वस्तुतः अधिकांश जीनियसों (प्रतिभाशालियों) के सम्बन्ध में यही बात कही जा सकती है। प्रतिभाशाली लोगों को हम लोग पहचान नहीं पाते हैं। बहुत बार उनके साथ शत्रुता कर लेते हैं। कई बार उनके कार्यों को ही क्षति पहुँचा देते हैं जिसकी वजह से मानव समाज का ही अन्त में नुकसान होता है। रविन्द्रनाथ को भी नोबुल प्राइज पाने के पहले, छोटा करने की बहुत सी ओछी एवं भोड़ी हरकतें हुई थी। इसी तरह की हरकतें माइकेल मधुसूदन दत्त के साथ भी हुई थीं।

माइकेल जैसे जीनियस (प्रतिभाशाली) ने पहली बार किसी भारतीय भाषा में अमित्राक्षर छन्द की शुरुआत की थी- अमित्राक्षर छन्द पहले से ही थे तब आधुनिक भारतीय भाषाओं

में पहली बार किये थे। किन्तु उन्हें इसके कारण समालोचनाओं से इतना परेशान होना पड़ा, कि वे ठीक से अपना कार्य पूरा नहीं कर सके। माइकेल ने पहले पहल नाम धातु (संज्ञा का क्रिया के रूप में प्रयोग) का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग किया था जैसे-

"चलेछो कि नर नाथ यूझिते समरे
प्रवीर पुत्रेर मृत्यु प्रतिविधित्सिते ?"

'प्रतिविधान करने के लिए इत्यार्धे प्रति विधित्सिते' – इस तरह से नाम धातु का व्यवहार इसके पहले बहुत ज्यादा कोई नहीं करता था। बहुत ज्यादा क्यों? करता ही नहीं था, उनको मजाक करके कहा जाता था –

'हुड़ हुड़ करि हुड़ुकिला, मशारिला मशा'।

अनुक्रमणिका

अर्थात सब में ही नाम धातु का प्रयोग हुआ है। हम लोग अपने स्वभाव को इस तरह से तैयार करें कि जो जीनियस (प्रतिभाशाली) हैं उनकी प्रतिभा की सम्यक अभिव्यक्ति हो, न कि हम लोग, उनके सामने बाधाएँ उत्पन्न करके उनको हतोत्साहित कर दें। मनुष्य के बहुत से दोषों में मुख्य दोष इर्ष्या है अथवा असूया इस दोष से सभी लोग मुक्त रहें। कोई बड़ा होना चाहता है तो उसे यह कहते हुए पीछे खींच कर बैठा देना कि तू बैठ, तू बड़ा बनने के लिए प्रयत्नशील ही क्यों हुआ तुम्हारा बड़ा बनना मुझे सहन नहीं है, इस मानसिकता से हमेशा दूर रहना होगा। इससे पूरे मानव समाज का उपकार होगा। किसी एक विशेष जीनियस (प्रतिभाशाली) को हम लोग उनकी अभिव्यक्ति के पथ में आगे बढ़ने की प्रेरणा देने से पूरा मानव समाज उपकृत होगा और जो थोड़ा कम जीनियस हैं या जो जीनियस नहीं हैं, वे भी यदि यह सोचें कि परमपुरुष हमारे साथ हैं मुझको वे सामर्थ्य प्रदान करेंगे, यह सोचकर वे यदि काम शुरू कर दें तो वे भी बहुत कुछ करने में सफल होंगे। साधारण मनुष्य से दो चार गुणा

नहीं दो सौ-पाँच सौ गुणा ज्यादा वे काम करेंगे। टेक्नीशियन एवं जीनियस में अन्तर क्या है ? Genius is an inborn faculty; it cannot be created. A technician possesses an ordinary qualification, developed to an extraordinary degree of efficiency. जीनियस होना एक साधारण योग्यता है जो अति साधारण स्तर की दक्षता का ही विकास है। यही जीनियस एवं टेक्नीशियन के बीच का मुख्य (मूल) पार्थक्य है।

१९ जून कलिकाता

अणुमानस का सतत् प्रसारित प्रक्षेत्र

आज का आलोच्य विषय है- अणुमन का सतत् प्रसारित प्रक्षेत्र। सभी अणुमनों के प्रक्षेत्र समान नहीं है और वह सभी क्षेत्रों मे ही प्रसारित हो रहा है— इस तरह की बात कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि कोई-कोई अणुमानस अपने लक्ष्य के अनुसार अपने मानस-विस्तार को क्रमशः खोते जा रहे हैं, क्रमशः छोटे होते जा रहे हैं। उनकी मानसिक परिधि का आयतन जिस तरह क्रमशः छोटा होता जाता है, उनकी सत्ता भी उसी तरह जड़ में परिणत होती जाती है। जिसके कारण, वे क्रमशः अपनी मानसिक संवेदना के सुयोग को खोते जा रहें हैं, किन्तु इसके बावजूद यह बात कह सकते हैं, कि प्रागैतिहासिक युग के

मनुष्य की जो अणुमानस सत्ता थी, वह बहुत ही संकीर्ण परिधि के मध्य में कार्यरत थी।

सुप्राचीन काल में सृष्टि के एकदम प्रारंभिक काल के दौरान मनुष्य बिल्कुल पशु के समान; पूरे दिन केवल खाने की चिन्ता में, शत्रुओं से अपनी आत्मरक्षा के उपाय खोजने में घूमता रहता था। इसके अलावा उसका और कोई अन्य कार्य नहीं था। संघर्ष एवं समिति के माध्यम से अणुमानस का आयतन क्रमशः विकशित होता गया तथा अणुमानस का वाहक यह मानव शरीर क्रमशः जटिल होता गया। यहाँ दिलचस्प बात यही है, कि उन्नत अणुमानस का आधार यह मानव शरीर अपनी पञ्चभौतिक संरचना की जटिलता से हॉलाकि और भी जटिल होता गया, किन्तु इस वजह से इसकी शारीरिक शक्ति तदनुसार नहीं बढ़ी वरन् इसके विपरीत शारीरिक शक्ति क्रमशः कम होती गई किन्तु अणुमानस का आधार यह मानव शरीर क्रमशः जटिल से जटिलतर होता जा रहा है। इसके हाथ-पैरों की शक्ति, नाखूनों-

दाँतों की शक्ति एवं देखने की शक्ति-स्वाभाविक रूप से कम होती जा रही है। लेकिन अणुमानस की साधारणतया जो अग्रगति हो रही है, वह मूलतः संघर्ष एवं समिति के माध्यम से ही हो रही है। उसका प्रक्षेत्र विस्तारित होता जा रहा है, उसकी (मानस) शक्ति भी बढ़ती जा रही है।

प्राचीनकाल में उन दिनों के मनुष्य समूहबद्ध होकर छोटे-छोटे दलों में विभक्त थे। दिन के समय मैदान में उतर आते थे एवं शाम होते ही पेड़ों या पहाड़ों के ऊपर चढ़ जाते थे। पक्षियों के घोसलों की तरह पेड़ों पर वे लोग घास-फूस की सहायता से छोटे-छोटे घर तैयार करते थे। इसीलिए आज भी बोलचाल की कथ्य भाषा में विशेष कर बंगाल में घर बनना' न कहकर 'घर बाँधना' कहते हैं। ये लोग अपने को उस समय लोग जिस तरह से अपने घरों को बाधते थे आज भी भाषा में इसका प्रयोग वैसा ही हो रहा है

जीवन के संघर्ष जिस तरह से बढ़ते गये, उसी तरह से विभिन्न विषयों को लेकर मनुष्य का चिन्तन-मनन भी बढ़ता गया, और इस चिन्तन-मनन के बढ़ने के साथ-साथ उसके विस्तारित मानसिक प्रक्षेत्र की आवश्यकतानुरूप उसके स्नायुकोष विकशित होने लगे, तथा उसके स्नायु तन्त्र भी विकशित होने लगे एवं उनमें परिवर्तन भी होने शुरू हुए। शरीर की त्वचा एवं विभिन्न अंग-प्रत्यंगों में परिवर्तन होने शुरू हुए। आदिम युगीन मनुष्यों ने किसी दूसरे जंगल एवं पहाड़ पर घर बाँध कर रहनेवाले दूसरे गोत्र या दल के लोगों के साथ शत्रुवत व्यवहार शुरू किया। इसी रूप से वे लोग, अपने शत्रुओं की पहचान रखते थे।

काल क्रम में इसी तरह किसी विशेष क्षेत्र एवं निवास के आधार पर गोत्र परम्परा के अनुरूप ही विभिन्न गोत्रों के लोगों की विशेष-विशेष पहचान कायम होनी शुरू हुई एवं कारण-अकारण एक गोत्र या दल के लोग दूसरे गोत्र या दल के लोगों

के साथ संघर्षरत होने लगे। ये दल या गोत्र जितने बढ़ते गये, लोगों में संघर्ष भी उतना ही बढ़ता गया, तथा उसके मानस क्षेत्र की सक्रियता भी इससे विस्तारित होती गई।

मैंने कहा था कि मानसिक या पाञ्चभौतिक जगत् में मनुष्य की कोई वास्तविक प्रगति नहीं होती। प्रगति केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही होती है। किन्तु मानसिक क्षेत्र की परिधि के विस्तार के कारण मनुष्य की व्यस्तता बढ़ गई है। इस व्यस्तता एवं सक्रियता बढ़ने के अनेक कारणों मे से एक कारण यह है कि लोगों के बीच पारंपरिक अविश्वास और भी बढ़ गया है। पहले यह अविश्वास मारकाट एवं लड़ाई झगड़ों के साथ ही समाप्त हो जाता था, किन्तु आज वैसा नहीं है। आज मन में कुछ सोचा जाता है, मुँह से कुछ और बोला जाता है, तथा आचरण में कुछ दूसरा ही किया जाता है। जिसको सभ्य भाषा में कूटनीति (diplomacy) कहते हैं, वह आज बढ़ गई है। उसकी वजह से मनुष्य की व्यस्तता बढ़ने पर शान्ति भी नष्ट हो गई तथा उसकी

व्यवस्तता जितनी ज्यादा बढ़ती है, उसकी शान्ति उतनी ही ज्यादा नष्ट होती जाती है। इन दोनों के एक साथ लगातार बढ़ने से क्या परिणाम हो रहा है ? लोगों का मानसिक असन्तुलन जितना बढ़ रहा है, उतने ही ज्यादा लोग पागल होते जा रहे हैं। केवल इतना ही नहीं आजकल मानव समाज में मतवादों एवं विचारधाराओं की संख्या भी बढ़ती जा रही है।

उदाहरणार्थ बुद्ध विशेष कुछ भी लिखित रूप से देकर नहीं गये। इसके कारण कुछ दिनों बाद ही भिक्षुओं के बीच तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गये। परिणामतः, स्थाविरवादी एवं महासांघिक नाम के दो बड़े दल बने जो बाद में हीनयान एवं महायान के नाम से मशहूर हुए। किन्तु इतने पर भी अन्त नहीं हुआ, उनके बीच में अजस्र शाखा प्रशाखा के रूप में अजस्र दर्शन यथा - स्थविरवाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद, महाशून्यवाद अति शून्यवाद इत्यादि उत्पन्न हो गये। हर एक अपने आदर्श एवं मतवाद को लेकर इतना व्यस्त हो गये कि उनको और अच्छा

कार्य करने का कोई समय ही नहीं मिला सभी लोग एक दूसरे के मतवाद का खण्डन-मण्डन में अत्यधिक व्यस्त हो गये। अर्थात् मौलिक सिद्धान्त से ही इतना दूर हो गये जिसे कह पाना और सम्भव नहीं है।

वह अवस्था जो मुख्यतः बौद्ध युग में शुरू हुई थी आज भी तदनुरूप बनी हुई है। यह अवस्था आज केवल बौद्धों के बीच ही नहीं है बल्कि यह सभी और, सभी जगहों में है। जहाँ भी दो लोग हैं वही पर दो दल उत्पन्न हो गये हैं और अपने-अपने मतवाद को लेकर संघर्ष करना आजकल अपरिहार्य हो गया है। इसका यही कारण है कि मनुष्य मानसिक क्षेत्र में भी प्रगति करने के बावजूद आध्यात्मिक क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं कर पाये हैं। सभी का आध्यात्मिक लक्ष्य एक है। इस आध्यात्मिक लक्ष्य के नहीं रहने के कारण इस संश्लेषणात्मक लक्ष्य के न रहने के कारण ही इस तरह की दल बन्दी हो रही है। इस दलबन्दी का मतलब गुटबन्दी नहीं है; यह अपने-अपने सिद्धान्तों का भी

संघर्ष है। तथा यह ऐसे ही चलता रहेगा, जब तक लोग एकात्मक सत्ता को अपने चरम सत्ता के रूप में नहीं ग्रहण कर रहे हैं। रुको-रुको संघर्ष करने से कोई लाभ नहीं है, लड़ाई - झगड़ा मत करो, शान्ति, शान्ति जैसी बातों को बोलकर संघर्ष को रोक पाना सम्भव नहीं है। ऐसा करने से हो सकता है थोड़ी देर के लिए शान्ति कायम हो जाय, किन्तु स्थायी शान्ति कायम नहीं होती। राख ढँकी आग की तरह ही संघर्ष की यह अनि धधकते रहने से अशान्ति बढ़ती रहेगी। इस विपद से मनुष्य यदि खुद बचना चाहे तो उसे एक निर्धारित एकात्म लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ना होगा। संश्लेषण का रास्ता अपनाना होगा विश्लेषण का नहीं।

इसके बाद, मनुष्य के मन में मनुष्य के प्रति सौहार्द का भी अभाव है। इस अभाव का भी वही एक कारण है कि लोगों का दृष्टिकोण संश्लेषणात्मक नहीं है, विश्लेषणात्मक है, एवं विश्लेषणात्मक होने के कारण ही, लोग विभिन्न

विच्छिन्नतावादी भावनाओं के आधार पर प्रान्त व राष्ट्र के विभाजन का प्रयत्न कर रहे हैं। एक ही मनुष्य जाति में आर्य, निग्रो, मंगोलियन तो हैं ही, फिर आर्यों में भी मेडिटेरियन, नार्डिक, अलपाइन हैं पुनः उसमें भी लतिन एवं गैर लतिन का विभाजन है इस विश्लेषण की वजह से लोग इस विभाजन की ओर बढ़ते हैं तथा विभाजन की ओर बढ़ने के कारण ही शान्ति विघ्नित होती है। अब इस शान्ति की प्राप्ति में व्याप्त विघ्न बाधाओं से मनुष्य को बचने के लिए संश्लेषण का पथ अपनाने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है- 'नान्य पन्था विद्यते अयनाय' अर्थात् यही एक मात्र रास्ता है।

'कोई कहते हैं कि मनुष्य की उन्नत मनीषा ने मानव कल्याण के लिए ही धर्ममतों का अविष्कार किया है। जो लोग इस बात को कहते हैं वे सभ्य एवं भद्र हैं, उनका ऐसा कहना ठीक ही है। किन्तु मैं इतनी चिकनी-चुपडी भाषा का प्रयोग नहीं करता हूँ। मैं स्पष्ट वादी हूँ। इसीलिए मैं स्पष्ट कहता हूँ कि मजहब

के निर्माण में मनुष्य के कल्याण की भावना की अपेक्षा दलबन्दी की भावना ही ज़्यादा है। उनमें से यदि मनुष्य के कल्याण का ही व्रत रहता तो वे कपटाचरण की बदनामी में नहीं फँसे होते। मैं किसी के मन को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता हूँ एवं न ही भविष्य में ही पहुँचाना चाहूँगा, किन्तु स्पष्ट भाषा में ही कहूँगा कि अनेक धर्म शास्त्रों में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो तर्क पूर्ण नहीं हैं। इन्हें यदि मानवता की कसौटी में कसा जाय तो ये सब निरर्थक सिद्ध होकर खारिज हो जायेंगी। इसलिए मानव कल्याण के लिए यदि कुछ करना है तो संश्लेषण के रास्ते को अपनाना होगा, विश्लेषण के रास्ते को नहीं. "केवल तुम्हारे ही ईश्वर, ईश्वर हैं... तुम्हीं ईश्वर के बड़े पुत्र हो और बाकी सभी नरक की आग में जल कर मरेंगे" इस तरह की बातों को प्रचारित करके लोगों के बीच एकता कायम करना सम्भव नहीं है। मानवीय सत्ता निश्चित ही देश-काल पात्र की सीमा से बंधी है और इस देश-काल पात्र की सीमा से देशातीत कालातीत एवं पात्रातीत होने का प्रयास करना होगा, और यह प्रयास करके इन सीमा के बन्धनों से मुक्त होकर

असीम की ओर जाना ही होगा। असीम की प्राप्ति के लिए संश्लेषणात्मक पथ के अनुसरण के अलावा और कोई दूसरा विकल्प नहीं है। इसलिए साहित्यिक तौर से कहने पर मनुष्य को मिष्टिकवाद (mystism) के रास्ते में ले जाना होगा, सीमा के बन्धनों से मुक्त होकर असीम में मिल जाने की आकुलता के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

किन्तु अभी ऐसा तो नहीं हो रहा है। सीमा बद्ध मनुष्य अपने को और भी छोटी-छोटी सीमाओं में बाँधते जा रहे हैं। जिसकी वजह से बहुत प्रकार के मतवाद उत्पन्न हो रहे हैं। किसी क्षेत्र विशेष एवं किसी देश विशेष के निवासी के रूप में मनुष्य की एक विशेष पहचान निरूपित हो रही है। यह केवल एक विशेष पहचान तक ही नहीं है बल्कि इसी तरह के अन्य पहचान वाले लोगों को अपना आत्मीय नहीं कह पा रहे हैं। तथा दूसरों को अपनाने के लिए, वे जितने दिनों तक संश्लेषणात्मक पथ का अनुसरण नहीं करते उतने दिनों तक मानव समाज में शान्ति

स्थापित नहीं हो सकती है। ऐसी स्थिति में शान्ति-शान्ति की पुकार खाली एक ढोंग मात्र है। यह ढोंग उसी तरह से है जैसे कोई यदि पेड़ों की जड़ों को मिट्टी के भीतर ही काट दे तथा पुनः मिट्टी में लगाकर ऊपर से पानी डालने का दिखावा करें तो उससे पेड़ कभी भी हरा भरा नहीं हो सकता है। विश्लेषण का पथ त्यागकर तथा पूर्णरूपेण संश्लेषण का पथ अपना करके मानवीय एकता पर जोर देना होगा मनुष्य के लिए यही उचित है कि अच्छे एवं उन्नत भावों को अपना कर आगे बढ़े। लोग जब, मानव जाति के बीच एकता लाने की कोशिश करेंगे, तब वे उनकी मूल्यवान निधि सत्तात्मक -शक्ति का अनुभव करेंगे एवं तभी वह सत्तात्मक शक्ति, सम्यक रूप से अभिव्यक्त होगी। तथा उस की स्वतः अभिव्यक्ति ही उनको संश्लेषण की और ले जायेगी। इसलिए उनको बहुत कुछ जानना होगा, बहुत कुछ समझना होगा, बहुत सारी चर्चाएँ भी करनी होगी तथा हमेशा ध्यान रखना होगा की सभी को साथ लेकर एक परमसत्ता में प्रतिक्षित होना है, सभी को एक प्लेटफार्म पर लाना होगा एवं

ऐसा करने में उनको अपने वैचारिक क्षेत्र को उन्नत करना होगा। इसीलिए विचार जगत् के अभिव्यक्ति के अनुरूष भाषा को भी उन्नत करना होगा।

आज दुनिया के लोग भाषागत रूप से बहुत ही दीन-हीन है तथा उनकी भाषाओं का शब्द भण्डार भी अत्यन्त सीमित है। जर्मन, इंग्लिश एवं संस्कृत भाषा में वर्ग-उपवर्ग, प्रत्यय एव उपसर्ग युक्त पाँच लाख से ज्यादा शब्द नहीं प्राप्त है, किन्तु अधिकांश भाषाएँ अभी भी दीन-हीन ही हैं। उनका शब्द भण्डार अत्यन्त नगण्य है। हम लोग इस ओर ध्यान नहीं देते हैं। यदि ध्यान देते, तो वैचारिक अभिव्यक्ति ज्यादा होती एवं अभिव्यक्ति ज़्यादा होने से हम लोग सभी को एक परमसत्ता की ओर ले जा सकते। हम लोगों की भारतीय भाषाओं में से सर्वाधिक शब्द भण्डार बांला बाला भाषा में है। बांला भाषा में एक लाख २५ हजार के करीब शब्द हैं। शब्द भण्डार में समृद्ध द्वितीय भारतीय भाषा, गुजराती है जिसमे एक लाख चार हजार

शब्द है। जबकि सबसे उन्नत स्वभाव एवं उन्नत प्रजाति के बादरों (ape) की शब्द संख्या या आवाजे आठ सौ के करीब है तथा सबसे अनुन्नत जनजाति के मनुष्यों की शब्द सख्या नौ सौ के करीब है। अर्थात् शब्द भण्डार की दृष्टि से अनुन्नत मनुष्य एवं बन्दर मे बहुत थोड़ा ही फर्क है। कह सकते हैं कुछ भी फर्क नहीं है। किन्तु जिन लोगों का शब्द भण्डार नौ सौ के करीब है, उन लोगों को हम लोग अपनी ओर खींच नहीं पाये हैं। हमलोग उन्हें पास नहीं खींच सके हैं। इसका कारण यही है कि हम लोग ने संश्लेषण के पथ का अनुसरण नहीं किया है। इस पथ का अनुसरण नहीं करने का फल हम लोग आज आपसी अविश्वास की वृद्धि रूप में भोग रहे हैं।

इसलिए उचित यही है कि जिनका शब्द भण्डार ज्यादा हैं उनको और भी आगे आकर जिनका शब्द भण्डार कम है उन्हें सहायता करनी होगी। उसके प्रभाव से वे लोग भी मुखर हो जाएँगे, उनके मुखर होने से उनकी भाषाई अभिव्यक्ति बढ़ने

लगेगी, ये सब हम लोगों को ही करना होगा। लेकिन हम लोगों ने ऐसा नहीं किया है, अर्थात् अणुमानस की शाश्वत मूल्य विस्तारित परिधि को इतने दिनों से हम लोगों ने कल्याण मूलक कार्यों में नहीं लगाया, बल्कि इसे अपने लाभ (प्रेय) में व्यवहार किया है। चूंकि विश्लेषण का रास्ता अपनाया गया था इसी कारण से मानव धर्मशास्त्र एवं धर्मग्रन्थ उतना प्रगतिशील नहीं बनी सके जितना होना उचित था। जिस तरह से हम लोग पुरातात्त्विक खोज में ही बहुत कम आगे बढ़ पाये हैं। अभी भी मनुष्य बहुत पुरानी लिपियों को पढ़ सकने में असमर्थ है। अभी भी बहुत से शास्त्र सम्पूर्ण रूप से अज्ञात ही रह गये हैं। अभी भी विभिन्न इतिहास, भूगोल, दर्शन इत्यादि के पढ़ने की उपयुक्त पद्धति का अविष्कार मनुष्य नहीं कर सका है। यद्यपि मानव मनीषा की उन्नति ठीक ही हुई है, फिर भी यह बात बहुत गौरव की नहीं है, यह बिल्कुल ही लज्जास्पद है।

भौतिक विज्ञान या विज्ञान के क्षेत्र में हम लोग कितनी प्रगति किया है ? हमलोग जितनी प्रगति किए हैं, उसे जितना कल्याण के कार्यों में लगाये हैं, उससे ज्यादा अकल्याण के कार्यों में लगाये हैं। जिसके कारण ही आज के भौतिक वैज्ञानिक साधारण लोगों के लिए क्य के पात्र बने हुए हैं कोन जाने कब कौन से, किस तरह के बम का अविष्कार कर दे। विज्ञान के क्षेत्र में जो सबसे उन्नत चीज़ है वह व्यावहारिक मनोविज्ञान है। उसको भी बहुत ज़्यादा परिष्कृत एवं संवर्धित नहीं किये ये हैं। हैं। जिसके वजह से मानसिक सन्तुलन के अभाव में आज दुनिया के अधिकांश देशों में विभिन्न जनसमुदाय के अधिक संख्यक लोग उन्मादग्रस्त हो रहे हैं, उनका ठीक से इलाज भी हम लोग नहीं कर पा रहे हैं। व्यवहारिक मनोविज्ञान की और हम लोगों की नजर नहीं होने के कारण ही मनुष्य में मनुष्य के प्रति प्रेम भाव का अभाव है। हम लोगों ने विश्लेषण का पथ अपनाया है, संश्लेषण का पथ नहीं अपनाया है। मानवसभ्यता के इन पन्द्रह हजार सालों के दौरान हमलोगों ने बीच-बीच में बहुत ही कम

समय के लिए संश्लेषण का पथ चुना है। अधिकांश समय में ही विश्लेषण के पथ पर चलकर हम लोगों ने एक सुन्दर समाज के निर्माण की बहुत बड़ी सम्भावना को लापरवाही के चलते खो दिया है। मनुष्य, अपनी सहजात-वृत्तियों के द्वारा व्यष्टि जगत् में, वर्हिजगत में एवं भाव जगत् में, जो कुछ भी सूक्ष्म है जो कुछ भी सुन्दर है, उसे प्यार करते हैं उसकी चर्चा को प्यार करते हैं। प्यार करना ही नन्दन विज्ञान का मूल मन्त्र है। लेकिन हम लोगों ने विभिन्न मतवादों की छाप से इसे भी छिन्न-भिन्न कर दिया है। बल्कि इस नन्दन विज्ञान को हम लोग आज; अपनी इस उन्नत बुद्धि द्वारा निश्चय ही सही कार्यों में लगा सकते थे। इस नन्दन विज्ञान का आधार बना कर, लोगों को संश्लेषण के रास्ते में ले जा सकते थे, जिसे हम लोग कर नहीं सके।

मैं कहूँगा कि आज जिन लोगों की बुद्धि उन्नत है, जिनकी प्रज्ञा क्रमशः विस्तारित हो रही है वे स्वयं तो उपलब्धि किये ही हैं तथा उनके लिए यही उचित है कि वे अपने पहले

प्रयास में ही नन्दन विज्ञान को उन्नत कर लें। एक तरफ नन्दन विज्ञान को उन्नत कर लें और दूसरी तरफ निरलस एवं निष्पक्ष ज्ञानार्जन के द्वारा इस नन्दन विज्ञान की मदद करें। इस नन्दन विज्ञान के द्वारा मनुष्य इस स्थूल जगत् की धूल-धूसरित धरती से ऊपर उठकर सूक्ष्मतर दुनिया की अनुभूति करता है। इसीलिए नन्दन विज्ञान को निश्चित ही सभी प्रकार से पूरी प्रचेष्टा करके और भी आगे ले जाना होगा। जो आज मनुष्य के लिए बहुत कठिन कार्य नहीं है। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि मनुष्य के ज्ञान एवं बुद्धि की परिधि बढ़ती जा रही है। मनुष्य की बुद्धि का प्रक्षेत्र भी क्रमशः तेज गति से बढ़ता जा रहा है। इस समय मनुष्य बहुत सहजता से बड़े-बड़े कार्य पूरा कर सकेगा। मनुष्य के स्थूल जगत् एवं मानसिक जगत् में मनुष्य को बौद्धिक संवर्धन को इस नन्दन विज्ञान के संवर्धन से बहुत ही नज़दीक से मदद करेगा।

विभिन्न प्रकार के मानवीय शास्त्र पाण्डुलिपियाँ एवं मौलिक दस्तावेजों का निष्पक्ष अध्ययन एवं चर्चा हो, तथा इस

चर्चा एवं अध्ययन के परिणाम को नन्दन विज्ञान के लिए प्रयोग किया जाय इससे मनुष्य बड़ी तेजी से आगे बढेंगे। आज देश-देश में, समाज-समाज में वर्ग-वर्ग में जो लड़ाई-झगड़ा हो रहा है, वह थोड़े ही समय में समाप्त हो जायेगा। इस विषय में लोगों के दुश्चिन्ताग्रस्त होने का कोई कारण नहीं है। मनुष्य को केवल मजबूत कदमों से संश्लेषणात्मक लक्ष्य की सामने रख कर आगे बढ़ना होगा।

"चरैवेति - चरैवेति" बढ़ते चलो, बढ़ते चलो ! यही आज के मनुष्य का मूल मन्त्र

१६ जून १९७९ कोलिकाता।

वास्तविकता एवं बौद्धिकता

आज का आलोच्य विषय वास्तविकता एवं बौद्धिकता है। हम लोग बातचीत या बहस के दौरान प्रायः ही वास्तविकता या वस्तुतः या सारांशतः जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। वास्तविकता के भाव को व्यक्त करने के लिए ही, हम लोग इस तरह के विभिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं। अब हम लोग वास्तविकता एवं बौद्धिकता के असली तात्पर्य को जान लें कि यथार्थ में वास्तविकता क्या है ? बौद्धिकता क्या है ?

लोग कहते है "He is highly intellectual" वह बहुत बुद्धिमान व्यक्ति है। बुद्धिजीवियों के विषय में इस प्रकार की बातें लोग प्रायः ही बोलते हैं। बौद्धिकता की चर्चा करने के पूर्व हम लोग वास्तविकता के विषय में जान लें। मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो कुछ जानता - समझता है वही

वास्तविकता है। मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों से वस्तु को किस तरह से ग्रहण करते हैं। वस्तु का कोई भी तन्मान्त्र शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विभिन्न तारंगिक स्पन्दनों के माध्यम से इन्द्रिय द्वारों में पहुँच जाते हैं यह जो तरंगें हैं यह जो स्पान्दनिक अभिव्यक्ति है वह सरल रेखीय नहीं है।

These movemet are not straight but they are systaltic order in every phase there is pulsation, there is systaltion. प्रत्येक स्पान्दनिक अभिव्यक्ति संकोच - विकाशी होती है। हम लोग इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी ग्रहण या अभिव्यक्त करते हैं वह सभी संकोच विकाशी तौर तरीकों के द्वारा ही होता है। प्रत्येक तारंगिक अभिव्यक्ति क्षण-क्षण में प्रकट व विलोपित होती है। जब कोई व्यक्ति अस्ति भाव से काम करता है तब उन्हें हम लोग अभिव्यक्ति के रूप में पाते हैं।

When the action is there when the object is there, we observe it, we obserb it and in the pause phase we neither observe it nor obsorb it. 'जब कर्म है, जब विषय है, तो हम इसे देखते हैं, इसे ग्रहण करते हैं और इसे आत्मसात करते हैं, तथा विरति के स्तर में हम न तो इसे देखते हैं न ही आत्मसात करते हैं।" उदाहरणार्थ, जब हम कहते हैं की हम एक हाथी देख रहे हैं या एक ऊँट देख रहे हैं, तो हम उन्हें अविराम (अविच्छन्त) रूप से नहीं देखते हैं, इस समय वे दिखाई देते हैं अगले क्षण ही वे लुप्त हो जाते हैं, इन समस्त दृश्यों (हाथी या ऊँट) के दिखाई पड़ने वाले रूप को संघटित करती है तथा हम उसे देखते हैं। मानवीय मन का मौलिक गुण है कुछ ग्रहण करना, कुछ आत्मसात करना, अर्थात सामान्यतः किसी वस्तु को देखने की, छूने की, सूँघने की या चखने (स्वाद लेने की) की एक सकारात्मक प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार क्रियात्मक स्तर में यानी कुछ देखने या कुछ स्त्रहण करने के दौरान जब हम किसी बस्तु के अनेक (असंख्य) अंशों या टुकड़ों को देखते हैं

तो उन्हें एक रूप में संघटित करते हैं तथा इसके बाद ही हम उस वस्तु को देख पाते हैं, स्पर्श कर पाते है या सूँघ पाते हैं।

यदि मन में कोई नकारात्मक प्रवृत्ति हो तो यह नकारात्मक प्रवृत्ति तांरगिक प्रवाह के समस्त विरति स्तर को संघटित करेगी तथा हाथी या ऊँट को देखने के बाद भी वह कहेगा कि उसने बिल्कुल ही कोई हाथी या उँट नहीं देखा है। यह दर्शाता है कि मन मे सकारात्ताकी प्रवृत्तियाँ एवं नकारात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। सामान्यतः मम मे जव सकारात्मक प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं, तो इस अवस्था में ही हम कुछ देख सकते हैं या स्पर्श कर सकत हैं या स्वाद ले सकते हैं। किन्तु, यदि किसी कारण से मम नकारात्मक प्रवृत्तियों से ग्रसित हो जाता है तो यह किसी वस्तु को महसूस नहीं कर पाता है ।

अतः जिसे हम वास्तविकता कहते हैं, उसके दो भाग है। पहला सकारात्मक तथा दूसरा नकारात्मक। वास्तविकता में द्वैत

हमेशा ही रहता है। द्वैत के अस्तित्व के कारण वास्तविकता परम् (निस्पेक्ष) सत्ता नहीं हो सकती है। वास्तविकता द्वैत की ऐसी अवस्था में अपना प्रमाणीकरण नहीं कर पाती है। एवं जिस प्रकट अवस्था को हम वास्तविकता कहते हैं वह बिल्कुल ही वास्तविक नहीं है, चूंकि हमारे मन में सकारात्मक प्रवृत्तियों है, इसलिए हम कुछ महसूस करते हैं।

इस संदर्भी में एक बात का जिक्र किया जाना उचित है कि ऐन्द्रिक ज्ञान (अनुभूति) त्रुटिपूर्ण भी हो सकता है। मान लो कि तुम रात में कहीं दूर से रेगिस्तान के बालू की ओर देख रहे हो। अंधकार में बालू समुद्र के पानी की तरह या नालीदार टीन के चाद्दरों जैसा दिखाई दे सकती है इस तरह का दृष्टि भ्रम तुम्हारी आँखी की त्रुटिपूर्ण क्रिया के कारण घटित होता है। ज्ञानेन्द्रियों की क्षमता सीमित है, जिसके बाहर वे सही रूप से कार्य नहीं सकती हैं। इसके अतिरिक्त, हम कुछ वस्तुओं को सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखते हैं पर साधारणतः उन्हें नहीं देख

सकते हैं। हम विद्युत चुम्बकीय तरंगों की सहायता से किसी वस्तु या विषय का अनुभव करते हैं। तब क्या हम इस तरह के ऐन्द्रिक अनुभूति को अपनी " आँखों की अनुभूति कह सकते हैं? नहीं, हम यह यह नहीं कह सकते। इसीलिए जिसे हम वास्तविकता या जड़ (स्थूल) वास्तविकता कहते है तथा जिस पर जड़वाद की पूरी अवधारण खड़ी है, वह बिल्कुल ही वास्तविक नहीं है। अतः जडवाद अपना आधार किस तरह से एवं कहाँ प्राप्त कर सकता है? जड़वाद स्वयं ही जड़ वास्तविकता पर आधारित है, किन्तु यह जड़ वास्तविकता त्रुटिपूर्ण है, तथा द्वैत से विकृत (प्रान्त) हो चुकी है।

अब हम जिसको बौद्धिकता कहते हैं, वह क्या है? चैतिक तरंगों का प्रवाह सत्तत् प्रवाहशील है तथा ये तरंगें हमेशा चलायमान हैं इन तरंगों के कारण ही बौद्धिकता कभी सत्य प्रतीत होती है एवं कभी नहीं होती है, किन्तु जब मानव मन सकारात्मक प्रवृत्तियों से सम्पूरित होता है, तो यह सभी कुछ को

संघटित करता है, जिसे यह वास्तविक समझकर ग्रहण करता है, तथा दावा करता है कि इसने एक वस्तु को अर्थात् हाथी या ऊँट को देखा है। अब, मान लीजिए कि मन जब नकारात्मक प्रवृत्तियों से ग्रसित होता है तो क्या होता है? उस परिस्थिति में यद्यपि मन अपने मन-ही-मन में एक हाथी की कल्पना करता है, तब भी वह उस हाथी को देख नहीं पाता है। भले ही मन उसका चिन्तन करता रहे, तो भी यह उस वस्तु को देख नहीं पाता है। इस मानसिक त्रुटि (विकार) के कारण ही मन संकीरात्मक या नकारात्मक दृष्टि श्रम से (आक्रान्त) होता है। तुम्हारे मानसिक विचारों, मैं भी कभी इसार तरह के सकारात्मक या नकारत्मिक दृष्टि भ्रम घटित हो सकते हैं। सुस्पष्ट रूप से कोई बुद्धिजीवी जो कुछ अपने बुद्धि के दायरे में सोचता है, वह पूर्णतयाः त्रुटिपूर्ण है। बौद्धिकता में सन्देह के लिए हमेशा गुँजाइस बनी रहती है। अतः बौद्धिकता भी आधारहीन है क्योंकि पूरी चैत्तिक गति ही निराधार है।

बुद्धिजीवी लोग सोचते हैं कि वे साधारण व्यक्ति नहीं हैं। वे सोचते हैं।कि ये बहुती कुछ कर सकते हैं या ब्रहुत कुछ जानते हैं, किन्तु उन्हें मन में यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके विचार त्रुटिपूर्ण हो सकते हैं क्योंकि उनकी विचार तरंगो में आरोह अवरोह, उतार - चढ़ाव हमेशा ही हो रहा है। किसी समय मानव मन सोचता है, किसी समय यह नहीं सोचता है, उस समय यह मानसिक विराम की स्थिति में रहता है। यदि इन समस्त मानसिक विरामों (विरतियों) का योग एकत्र करते हैं तो बौद्धिकता बिल्कुल नहीं के बराबर होती है।

बौद्धिकता विचार तरंगों पर निर्भर नहीं होती है। यहाँ समस्या का मूलप्रश्न यह नहीं है कि विचार तरंगें त्रुटिपूर्ण हैं, बल्कि यह है कि इस तरह की विचार तरंगें त्रुटिपूर्ण हो जाती हैं क्योंकि मन का अपने विषय भूत मानस प्रकोष्ठ पर कोई नियन्त्रण नहीं रहता है। परिणाम स्वरूप मन सोचता है कि कोई वस्तु (विषय) अविद्यमान है, हालांकि यह वास्तव में विद्यमान होती

है। इसी तरह कभी-कभी कोई वस्तु (विषय) मन को प्रतीत होती है कि अस्तित्व में है, यद्यपि, भौतिक रूप में वह अस्तित्व में होती नहीं है। इस तरह की बौद्धिकता अस्पष्टता से संक्रमित है, तथा इस तरह की अस्पष्टता (संदिग्धता) की सम्भावना बनी रहती है क्योंकि मन की सकारात्मक प्रवृत्तियाँ संकोच-विकाशी (प्रकुञ्चक) हैं।

अब हमारा अन्तिम निष्कर्ष क्या होना चाहिए? न तो बौद्धिकता, न ही वास्तविकता का कोई अस्तित्व है। हम निश्चित रूप से, कह सकते हैं इस संसार में दोनों में से किसी का भी अस्तित्व नहीं है। अतः प्रबुद्ध एवं ज्ञानी लोगों को इस संहार में क्या रास्ता अपनाना चाहिए? उन्हें समस्त संकोच विकाशी (प्रकुञ्चक) गति के बाहर, गति की इन समस्त भिन्न स्थितियों के बाहर कोई रास्ता खोजना चाहिए और वह रास्ता आध्यात्मिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अनुक्रमणिका

आध्यात्मिकता की गति कभी स्पन्दकारी स्वरूप की नहीं बल्कि सरल रेखीय है। यह एक सीधी रेखा में प्रवाहित होती है। इस सहजता, सरलता के कारण ही इसमें कोई धनात्मक (सकारात्मक) एवं कोई ऋणात्मक (नकारात्मक) वक्रता नहीं है। फिर भी हम कह सकते हैं कि धनात्मिकता (सकारात्मिकता) के चरम बिन्दु पर ही मानव अस्तित्व निहित होता है। कोई बुद्धिजीवी है या नहीं है व्यक्तिगत प्रगति का प्रारंभिक बिन्दु चरम ऋणात्मिकता (नकारात्मिक) है। अतः किसी जीवित सत्ता की गति चरम ऋणात्मिकता से शुरू होती है तथा जैसे ही यह चरम धनात्मिकता की ओर अर्थात आध्यात्मिकता की ओर प्रवाहित होती है, वैसे ही इसके गति का पथ सीधा हो जाता है। यही वास्तविक पथ है। अन्त में कुछ भी नहीं रहता, न तो बौद्धिकता, न ही वास्तविकता, केवल आध्यात्मिकता ही सभी कुछ में फैल जाती है। बाह्य जगत् में कोई भी सत्ता चरम सत्ता की स्थिति (प्रतिष्ठा) का दावा नहीं कर सकती है। केवल आध्यात्मिकता ही चरम अवस्थिति है और इसको खोजना ही वास्तविक

बौद्धिकता है। इसके अलावा लोग जो कुछ भी करते हैं वह अपनी विकृत (भ्रान्त) वृत्तियों की अभिव्यक्ति के अलावा और कुछ भी नहीं है।

१७ मई - १९८० वाराणसी

मनुष्य का आदर्श

संस्कृत 'कुणाल' शब्द का एक और अर्थ हुआ कलात्मक या वैचारिक या सैद्धान्तिक क्षेत्र में जिनको बौद्धिक विशिष्टता प्राप्त है तथा जो तदानुसार योजना बना करके आगे बढ़ते हैं। इस तरह की विशिष्टता या कुशल योजना से बहुत से

लोग भयभीत होते हैं। अन्य सिद्धान्तों के समर्थक गण विशिष्ट विचारों की ओर से विशेष रूप से भयभीत होते हैं तथा जिन्होंने उन विचारों का प्रतिपादन किया है उन असाधारण (विशेष) लोगों के विरुद्ध विष-वमन करते हैं। इस विषय पर हमें एक निष्पक्ष समालोचक या एक तटस्थ विचारक (न्यायकर्ता) के समान इस प्रकार के लोगों के विषय में अपना मूल्यांकन पूरा करना होगा।

भारतीय स्वतन्त्रता की पूर्व संध्या में प्रकटतः जिस संघर्ष के तौर - तरीकों ने भारतीय जन-मानस को सर्वाधिक आलोड़ित, आन्दोलित एवं उत्तेजित किया था, वह सुभाषचन्द्र बोस द्वारा प्रयुक्त (विकशित) राजनैतिक संघर्ष की एक विशिष्ट तकनीक (कौलालिक भूमिका) थी। इस विवादित मुद्दा के उचित मूल्यांकन करने का एवं इस विषय को आगे बढ़ाने का समय अब उन लोगों के लिए आ चुका है जो लोग इस तरह की रणनीति के उपयोग के विषय में तटस्थ रहे हैं।

स्वतन्त्रता संग्राम के नेताओं के प्रति थोड़ी भी अश्रद्धा न प्रदर्शित करते हुए मैं कहना चाहता हूँ कि उन नेताओं में कोई क्रान्तिकारी उत्साह एवं सामाजिक बोध तथा कोई स्पष्ट रचनात्मक राजनैतिक रणनीति या सामाजिक-आर्थिक योजना नहीं थी। उन्होंने विभिन्न तरीकों से अंग्रेजों के विरुद्ध जन मनोभावों को भड़काना चाहा था तथा जनता को आक्रोशित करके उन्होंने देश में राजनैतिक आन्दोलन रूपी हँसिया का लापरवाही से प्रयोग करते हुए राजनैतिक स्वतन्त्रता की फसल भी काटना चाहा था। वे नेता लोग इस तथ्य से अवगत थे कि उनके द्वारा किये गये इस तरह के आन्दोलनों से न तो साँप ही मरेगा न लाठी ही टूटेगी।

कुछ लोग सोच सकते हैं की अहिंसा का रास्ता बिल्कुल ही कोई रास्ता नहीं है अर्थात् यह एक असहाय व्यक्ति की राजनैतिक चाल (कलाबाजी) मात्र है, किन्तु उन्हें याद रखना

चाहिए कि स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेताओं की मानसिकता किसी असहाय अवस्था में से नहीं उत्पन्न हुई थी। जनता के ऊपर उन लोगों का जो प्रभाव था, उस प्रभाव की सहायता से वे लोग जन चेतना को व्यापक रूप से आन्दोलित करके स्वाधीनता प्राप्त करने की चेष्टा कर सकते थे। हालांकि यह सुस्पष्ट है कि महात्मा गांधी ने ही जन चेतना को जाग्रत किया किन्तु उन्होंने इस जागृत जनचेतना को संघर्ष के रास्ते मे मोड़ने का प्रयास नहीं किया। बल्कि उनकी सभी नीतियों एवं सिद्धान्तों की तथा कथित मौलिकता निष्क्रिय एवं नकारात्मक आन्दोलन तक ही निर्देशित थी जो संघर्ष के लिए प्रतिकूल थी।

दूसरी तरफ सुभाषचन्द्र बोस के क्रिया कलापों का तरीका इसके ठीक विपरीत था। उन्होंने उपलब्ध अवसरों का सर्वोत्तम उपयोग करना चाहा था। इसे और स्पष्ट रूप से कहने पर कहना होगा कि उन्होंने अपने प्रतिद्वन्दियों को असमर्थ (प्रभावहीन) बना करके स्वतन्त्रता हासिल करनी चाही थी,

अर्थात् वे चाहते थे कि दुश्मन पर आक्रमण तब किया जाय जब लोहा गरम हो।

अहिंसा की तथाकथित गांधी-बादि नीति में सरलता का यदि संपूर्ण रूप से अभाव नहीं था तो कुछ हद तक सरलता का अभाव निश्चित ही था। शायद गांधी जी के कुछ अनुयायी गांधी की तरह सरल नहीं थे । परिनामस्वरूप, दोनों समूहों के बीच वैचारिक मतभेद जनता के सामने और भी अधिक स्पष्ट हो गये। असल में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में (कांग्रेस अध्यक्ष को उसे समय राष्ट्रपति बोला जाता था। राष्ट्र ना होने पर भी राष्ट्रपति पुकारा वैसे ही हास्यप्रद था जैसे माथा ना होने पर भी मुकुट) कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए डॉक्टर पट्टूभी सीतारमैया एवं सुभाष चंद्र बोस के बीच चुनावी प्रतिद्वंदिता इन्हीं दो वैचारिक पद्धतियों के बीच संघर्ष था। सम्भवतः गांधीजी एक सरल इंसान थे इसलिए सुभाष चंद्र बोस की जीत एवं सीतारमैया की हार पर उन्होंने बेबाक शब्दों में टिप्पणी की थी कि "सीतारमैया की

हार मेरी हार है“ (Sitaramaiya’s defeat is my defeat)। सुभाष बोस ने गांधीजी के साथ अपने वैचारिक मतभेदों को कभी भी वैयष्टिक स्तर तक नहीं गिरने दिया। गांधीजी ने भी नहीं दी। किंतु कांग्रेस के कुछ महत्वाकांक्षी नेताओं ने दिये थे। और अहिंसा का नाम से छिपी हुइ उन लोगों में जो जहरीली मानसिकता थी, वह सुभाष बोस के देश छोड़ने के कई कारणों में से एक कारण थे।

कुछ राजनेता लोग सुभाष चंद्र बोस की निंदा करने की अपनी अभिलाषा और राजनीति के अपने स्वयं के सातही ज्ञान के कारण ही और ज्यादा अर्थपूर्ण राजनीति में प्रवेश करने के बदले उन्हें एक भ्रमित देशभक्ति एवं शत्रु मोशी के रूप में कलंकित करते हैं। उदयपुर नॉर्थ वे समझ नहीं पाए कि ब्रिटेन फ्रांस एवं अमेरिका जब अपने घोषित अर्थनीतियों के विपरीत गामी अर्थनीति के मामले वाले सोवियत रूस के साथ मिल बैठकर अपने-अपने देश की संप्रभुता की चर्चा कर सकते हैं तब सुभाष चंद्र बोस ने क्या गलत किया जो भी उन्होंने स्वतंत्र प्रेमी

एवं मुक्तिकांशी 100 शक्ति विभिन्न देश के प्रतिनिधि के रूप में धुरी राष्ट्र जर्मनी इटली एवं जापान की सहायता लेने का प्रोजेक्ट नोकिया? वास्तव में द्वितीय विश्व युद्ध दो प्रकार की शक्तियों, एक बिस्तर बड़ी एवं दूसरी साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच में लड़ा गया युद्ध था। धुरी राष्ट्र एवं मित्र राष्ट्र, दोनों पक्षों में से कोई भी परिस्थिति एवं पवित्र नहीं था। देश की स्वतंत्रता के लिए सुभाष चंद्र बोस जीस किसी भी पक्ष का सहयोग लेते उसके विरोधी उनकी निंदा निःसन्देह करते थे। जिन लोगों ने सुभाष चंद्र बोस की कर्जोशीली एवं उनके आदर्शों को सुभाषबाद घोषित किया है वह पूर्णतया गलत है क्योंकि सुभाषवाद जैसा कुछ भी नहीं है।

सुभाषचन्द्र बोस केवल अपने देश की आजादी के लिए लालायित थे और बहुत जोशीले होकर वे इसके लिए लालायित थे। यही कारण व्या की भारत की आजादी के लिए जो भी मौका मिला उससे उन्होंने लाभ प्राप्त किया। यदि कोई

व्यक्ति उनकी आलोचना करते हैं तो हम समझ सकते हैं कि ऐसे आलोचना से लोगों ने अपने शरीर में कोई खरोच लगने का खतरा लिए बिना ही केवल अपना राजनैतिक फायदा उठानाचीहा जिब मित्र शक्तियों, ब्रिटेन, फ्रान्स एवं अमेरिका ने अपने राजनैतिक एवीसामाजिक मिकशद से सुभाषचन्द्र बोस की निन्दा किया तथा (उन्हें) टीजो (TOJO) को युद्ध अपराधी घोषित किया, तब वे भारतीय लोग जो सुभाषचन्द्र बोस एवं उनके युद्ध तकनीक (शैली) से मतभेद रखते थे   क्या उन लोगों के लिए भी मित्र शक्तियों के दुष्ठ प्रचार के सुर में सुर मिलाकर उनकी निन्दा करना उचित था?

वास्तविकृती। यह है की जहाँ लोगों के दृष्टिकोण या कार्य पद्धति के बीच कोई गम्भीर मतभेव होता है वहाँ स्पष्ट-दृष्टि एवं विवेकपूर्ण बुद्धि धूमिल हो जाती है। यह सामाजिक सीजन की प्रत्येक तरंग स्पन्दने को ही अस्पष्ट या धुँधली करती है तथा उग्र चिन्तन के लिए बिल्कुल ही सहायक नहीं है। यह विच्छिन्न

भौम मानसिकता भाव प्रवणता (Sentiment) की सर्वाधिक घिनौनी अभिव्यक्ति है तथा लोगों के विपरीत ध्रुवीय दृष्टि कोणों को प्रदर्शित करति है।

मई १९८६ कोलकाता

माइक्रोवाइटा (अणुजीवों) - सम्भावित प्रभाव

अनुक्रमणिका

अणुजीवत् (Microvitum) जैव जीवन का गूढ़ रहस्य है। जीवन को भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति का गूढ़ रहस्य भी यही अणुजीवत् है।

अणुजीवत् के सिद्धान्त की उपेक्षा किसी भी सूरत में नहीं होनी चाहिए। तुम्हें इस सिद्धान्त अर्थात् अणुजीव के निर्गमन एवं नामकरण की स्थापना एवं प्रचार सही रूप से करना चाहिए। इसकी वजह से बहुत से रासायनिक सूत्र बदल जायेंगे, सम्पूर्ण विश्व में बहुत सी संरचनाओं में रूपान्तरण (परिवर्तन) की प्रक्रिया शुरू हो जायेंगी। सर्वांगीण (चौतरफा) परिवर्तन लाने के लिए पूरी दुनिया ही बहुत उत्सुकतापूर्वक तुम्हारी प्रतिक्षा कर रही है। अब, प्रश्न है कि रासायनिक सूत्रों में परिवर्तन क्यों घटित होंगे ?

अभी मैंने तुरन्त ही तुम्हें कहा है कि व्यावहारिक क्षेत्र में अणुजीवत् के प्रयोग से विभिन्न रासायनिक सूत्रों में आमूल-

चूल परिवर्तन घटित होगा। अब प्रश्न है कि किस तरह का परिवर्तन या रूपान्तरण घटित होगा ? उत्तर में मैं यही कहना चाहूँगा की अभी तक भौतिक विज्ञान इसी प्रचलित धारणा पर आधारित था, कि जीवन के उद्भव के लिए Carbon atoms अपरिहार्य है। अणुजीवत् के विषय में परिचित हो जाने के बाद लोग carbon atom की पुरानी अवधारणा का और ज्यादा समर्थन नहीं करेंगे, एवं वस्तुओं की आन्तरिक संरचना के सम्बन्ध में और ज्यादा उन्नत एवं सूक्ष्म सूत्रों को प्रवर्तित करेंगे। इस विषय को और अधिक विस्तृत ढंग से समझाने के लिए हम कसीस (Green vitriol) का ही उदाहरण लेते हैं। अभी तक कसीस (Ferrus sulphite) के लिए प्रचलित सूत्र (Formula) FeSO, 7H,O है। किन्तु अणुजीवत् (Microvita) के सिद्धांत के साथ प्रचलित होने के बाद कोई भी रसायनज्ञ (chemist) यह सूत्र और ज्यादा प्रयोग नहीं करेंगे। वह नया सूत्र - FeSO, H_2O (group AMV 20 Million) का प्रयोग करना पसन्द करेंगे। दूसरा उदाहरण तूतिया (copper sulphate) Bule

vitriol का लीजिए। इसका वर्तमान में रासायनिक सूत्र $CuSO_1$ $5H_2O$ है, किन्तु अणुजीवत् के सिद्धांत की अच्छी तरह स्थापना के बाद कोई रसायनज्ञ नये सूत्र CuSO, $5H_2O$ (group B MV 20 Million) को प्रयोग करेंगे। पदार्थों (वस्तुओं) की आन्तरिक संरचना से सम्बंधित रासायनिक सूत्र बहुत तेजी से परिवर्तित होंगे। निःसन्देह, यह सत्य है कि इन सूत्रों का आकार वर्तमान सूत्रों की अपेक्षा बड़ा हो जायेगा। यह भी सत्य है कि वस्तु का नाम (परिचय) एवं इसका आन्तरिक गुण परिवर्तित नहीं होगा, केवल रासायनिक सूत्र में ही परिवर्तन होगा। अणुजीवत् (Microvitium) के युग में वैज्ञानिक जीवन के उद्भव के रूप में carbon atom को स्वीकार करने से इन्कार कर देंगे। उनके लिए कोई अंगाराणु करोड़ों स्थूलीकृत अणुजीवत के अतिरिक्त कुछ और नहीं होगा।

सभी अणुजीवत् (Microvita) एक जैसे नहीं हैं।

अणुजीवत् (Microvita) के विभिन्न प्रजातियों के बीच गुणगत

विभिन्नताएँ हैं। आधुनिक जीवविज्ञान के अनुसार जीव द्रव्यीय कोश carbon atom द्वारा निर्मित हैं। किन्तु अणुजीवत् के युग में जीवविज्ञान का कथन होगा कि जीव द्रव्यीय कोश अंगाराणुओं द्वारा निर्मित न होकर असंख्य अणुजीवत् के सामूहिक स्थूलीकृत रूप हैं। जीव द्रव्यीय कोशों के अणुजीवत् को नियन्त्रित करने पर मानव शरीर के अन्दर एक बहुत बड़ा परिवर्तन घटित (उत्पत्र) हो सकता है, साधारण मनुष्य असाधारण मनुष्य हो सकते हैं, पर्याप्त मात्रा में अणुजीवत् (Microvita) की आपूर्ति करने से उनके मानसिक गुणों एवं क्षमताओं को बर्धित किया जा सकता है, अर्थात् मानव समाज में अनेक परिवर्तन शुरू करने के लिए अणुजीवत् के सिद्धान्त में अपरमित क्षमताएँ हैं। अणुजीवत् (Microvita) के परिवर्तन से चित्ताणुविक परिवर्तन भी उत्पन्न होंगे, और इस प्रकार मन अच्छे ढंग से शारीरिक संरचना एवं शारीरिक अवयवों को नियन्त्रित करने में सक्षम होगा।

परिणामस्वरूप मनुष्यों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में असाधारण परिवर्तन होंगे। यह परिवर्तन जितना आन्तरिक स्तर में घटित होगा उतना ही वाह्यिक संरचना में भी घटित होगा। उनके व्यक्तित्व जिस तरह से आज हैं वैसे नहीं रह जायेंगे। स्नायुकोशों में परिवर्तनों के साथ चित्ताणुविक परिवर्तन भी उत्पन्न होंगे। अणुजीवत् के युग में शारीरिक संरचना बदल जायेगी। मनुष्य तुलनात्मक रूप से शारीरिक की अपेक्षा ज्यादा मानसिक हो जायेंगे एवं अगले स्तर में वे मानसिक की तुलना मे ज्यादा आध्यात्मिक हो जायेंगे।

१५ सितम्बर १९८७

माइक्रोवाइटा – रासायनिक सूत्रों में परिवर्तन

अणुजीवत् पर गहन शोध के परिणामस्वरूप विभिन्न पदार्थों के रासायनिक सूत्रों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होंगे। रासायनिक प्रयोगशाला में वैज्ञानिक प्रयोगों के दौरान, तुमने ध्यान दिया होगा की तापमान, वायुमण्डलीय दबाव एवं अन्य शर्तों के शामिल रहने के बावजूद रासायनिक क्रियाएँ हमेशा एक जैसी नहीं होती हैं। यह प्रतिदर्शी (Samples) में उपस्थित अणुजीवत् (Microvita) कोटि (वर्ग) एवं संख्या में भिन्नता के कारण होता है। मान लीजिए कि कैल्शियम फास्फेट (Calcium phosphate ($CaPo_1$) के दो प्रतिदर्श (Samples) हैं।

रासायनिक तौर पर दोनों प्रतिदर्श ऑक्सीजन की बराबर मात्रा रखते हैं, फिर भी प्रतिदर्श A की ऑक्सीजन में उपस्थित अणुजीवत् की संख्या प्रतिदर्श B की तुलना से 10 लाख ज़्यादा हो सकती है। प्रकटतयाः रासायनिक क्रियाओं में नतीजे बदल जायेंगे बाह्य रासायनिक संरचना चाहे जो भी हो, पर आन्तरिक संरचना अणुजीवत्. की संख्या में वृद्धि होने के कारण अत्यधिक बदल जायेगी।

शोड़ा ही गहन शोध से स्थिति और स्पष्ट बनेगी। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि कैल्शियम सल्फेट के दो प्रतिदर्श हैं। दोनों प्रतिदर्शों का सूत्र एक ही है अर्थात् CaSo, ही है। मान लीजिए प्रतिदर्श A में प्रतिदर्श B की तुलना में २ करोड़ (२० मिलियन) अणुजीवत् ज़्यादा हैं। उस स्थिति में प्रतिदर्श (Samples) A के लिए नया सूत्र CaSo, (group A MV 20 मिलियन) के रूप में लिखा जायेगा। बदली हुई परिस्थिति में रासायनिक सूत्रों के आकार वर्तमान की तुलना में बड़े हो जायेंगे

एवं तदानुसार वे और अधिक जानकारी प्रदान करेंगे। सोडियम कार्बोनेट ($Na,_2CO_3$) एवं सोडियम - बाई - कार्बोनेट (NaHCO,) के उदाहरण में यह अधिक लागू है। बाहरी संरचना में कोई परिवर्तन अपने आप वस्तु में गुणात्मक परिवर्तनों को उत्पन्न करेगा। उदाहरणार्थ, जब हाइड्रोजन मोनो ऑक्साइड (H_2O), हाइड्रोजन परॉक्साइड (H_2O_2) में बदल जाता है, तब बाहरी संरचना में एक परिवर्तन होता है अर्थात एक अनुकूल गुणात्मक परिवर्तन होता है।

क्या अणुजैविक (Microvital) शोध इस पृथ्वी के वाणिज्यिक लेन देन (कार्य विवरण) को प्रभावित करेगा ? यदि नहीं तो क्यों नहीं ?

अणुजीवत् पर गहन शोध से निश्चित ही वाणिज्यिक कार्यविवरण में परिवर्तन उत्पन्न होंगे। मान लीजिए कोई देश

सोडियम नाइट्रेड बेचकर बहुत अधिक मुनाफा कमा रहा है। अब, यदि सोडियम नाइट्रेड की ऑक्सीजन में उपस्थित अणुजीवत् की संख्या एवं वर्ग (कोटि) को दूसरे देश की सोडियम नाइट्रेड से कारखाने में ही घटा या बढ़ा दिया जाय तो ख़रीददार लोग उस देश द्वारा आपूर्तित सोडियम नाइट्रेड को ख़रीरदना नहीं भी पसन्द कर सकते हैं। स्वाभाविक रूप में अणुजीवत् की संख्या में घटत या बढ़त के साथ ही साथ वस्तुओं के उत्पादन के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक कार्य-विवरण (लेन-देन) के प्रतिमान में एक परिवर्तन हो जायेगा।

पुनः जूट का उदाहरण लेते हैं। बंगाल के विभिन्न जिलों में एक जैसे बीज का प्रयोग होने के बावजूद भी जूट का गुण बदल जाता है। बंगाल में इस वास्तविकता से सभी लोग परिचित हैं कि मयमनसिंह, जलपाईगुड़ी एंव मुर्शिदाबाद जिलों में जूट के गुणों में एक स्पष्ट भिन्नता होती है। इसका कारण अणुजीवत् की संख्या का बदलना है।

अनुक्रमणिका

दूसरा उदाहरण आलू का लेते हैं। एक जैसी रासायनिक खाद के प्रयोग करने पर भी आलू का स्वाद एवं उत्पादन की मात्रा हमेशा एक जैसी नहीं होती है। शायद बहुत से लोग एक स्थान से दूसरे स्थान में आलू के स्वाद एवं उत्पादन की मात्रा में पायी जाने वाली भिन्नताओं के कारणों से अवगत नहीं है। इसका कारण अणुजीवत् के वर्ग एवं संख्या में निहित है। ऑक्सीजन में अणुजीवत् की संख्या में भिन्नता ही इस परिवर्तन के लिए जिम्मेदार होती है। संयोग से, यह उल्लिखित हो सकता है कि सोडियम नाइट्रेड में उपस्थित ऑक्सीजन भूमि में एक उर्वरक (खाद) के रूप में काम करती है। बोलचाल की भाषा में सोडियम नाइट्रेड को शोड़ा कहते हैं। भारत में बिहार राज्य में फल्गु नदी की तुलना में सोन नदी बड़ी है। दोनों ही नदियों में शोड़ा या अच्छा निक्षेप (भण्डार) है। किन्तु फल्गु नदी सोन नदी की तुलना में ज़्यादा शोड़ा उत्पादक है। इसीलिए मोकामा टाड़ की भूमि, जो फल्गु नदी के बाढ़ के पानी से डूबी रहती है, सोन

के पानी से डूबी भूमि की तुलना में ज़्यादा अच्छी फसल का उत्पादन करती है। दक्षिण अमेरिका में चिली (chili) विश्व बाजार में सोडियम नाईट्रेड का सबसे बड़ा आपूर्तिकर्ता देश है। भारत में ताँबा एवं टीन की निरन्तर कमी है। अणुजीवत् के प्रयोग से वस्तुओं की आन्तरिक भौतिक संरचना में परिवर्तन लाकर आवश्यक तत्त्वों का सृजन (निर्माण) हो सकता है। वस्तुओं की आन्तरिक संरचना में परिवर्तन होने से ही इस प्रकार के परिवर्तन होते हैं। धातुओं में अधातुओं की तुलना से परिवर्तन की सम्भावना अत्यधिक होंगी। भविष्य में नई किस्म के विस्फोटक उत्पन्न होंगे। वास्तव में, ताप-तकनीक, या आतिशबाजी तकनीक (Pyro-Gechnology) के क्षेत्र में अमूल परिवर्तन होंगे।रार

अणुजीवत् का सिद्धांत जैव- प्रोद्योगिकी एवं औषधि - रसायन को किस तरह से प्रभावित करेगा ?

जैव-प्रोद्योगिकी एवं औषधि-रसायन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन होंगे। प्राकृतिक रूप से विशेष-विशेष वस्तु में विशेष विशेष औषधीय गुण होते हैं। उदाहरणार्थ कॉपर सल्फेट को ही लेते हैं। इसमें कॉपर (ताँबा) सल्फेट एवं ऑक्सीजन रहती है। आणुविक अनुपात में कोई विभिन्नता औषधि की प्रभावकारिता एवं गुण में बदलाव (परिवर्तन) उत्पन्न करती है। अणुजीवत् की संख्या में हेर-फेर से ही एक गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न होता है। औषधि-रसायन में गहन शोध करने से यह ज्ञात होगा कि अणुजीवत् की कितनी मात्रा से किस तरह का औषधीय प्रभाव उत्पन्न होगा एवं तदनुसार ही कोई वैज्ञानिक विभिन्न औषधियों के लिए प्रभावकारी सूत्र ठीक-ठीक विकशित करने में सक्षम होंगे। निःसन्देह ही पुराने एवं पिछड़े हुए सूत्रों को हटा दिया जायेगा। इसलिए, औषधि-रसायन निश्चित ही प्रभावित होती हैं।

प्रायः ही यह देखने में आता है कि अलग-अलग कम्पनियों द्वारा निर्मित एक ही तरह की दवा में कैम-ज्यादा असर होता है। एक कम्पनी द्वारा उत्पादित औषधि दूसरी कम्पनी द्वारा उत्पादित होने पर तुलनात्मक रूप से ज़्यादा प्रभावी होती है। यहाँ भी अणुजीवत् का वर्गीकरण एवं संख्या में भिन्नता ही इस तरह की भिन्नताओं के लिए जिम्मेवार है।

उसी तरह से, अणुजीवत् सिद्धान्त आतिशबाजी तकनीकी को भी प्रभावित करेगा। किसी विशेष कम्पनी द्वारा निर्मित पटाखे अन्य कम्पनियों की तुलना में कम या ज़्यादा आवाज़ पैदा करते हैं। जिन वस्तुओं में आन्तरिक क्रिया (internal Movement) ज्यादा होती है, उनमे आवृत्ति भी उच्चतर होती है, जिससे उसकी विस्फोटक क्षमता अधिक तीव्र हो जाती है, परिणामस्वरूप बहुत तेज आवाज़ उत्पन्न होती है। अणुजीवत् की गतिशीलता ही आन्तरिक गति को प्रभावित करती है। फलस्वरूप अत्यन्त शक्तिशाली विस्फोटकों के

उत्पादन एवं नियंत्रण के सम्बंध में बहुत बड़े परिवर्तन घटित होंगे। चूँकि अणुजीवत् गति सम्बन्धित है इसलिए ये रॉकेट (Rockets) के गति की प्रणाली एवं प्रकार को भी प्रभावित करेंगे।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि अणुजीवत् का सिद्धान्त जैव-रसायन को किस प्रकार प्रभावित करता है ?

आन्तरिक जीव द्रव्यीय सूत्र बदल जायेंगे। अणुजीवत् से सभी नाभिक भी प्रभावित होंगे। अणुजीवत् के सहारे केन्द्रक में कोई परिवर्तन लाने से जीवद्रव्य में भी प्रभाव पड़ेगा। अणुजीवत् की सहायता से केन्द्रक को स्थानान्तरित किया जा सकता है। जिससे आन्तरिक संरचना में गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न होंगे। ये आन्तरिक रूप से ग्रन्थिरों को प्रभावित करेंगे तथा इसी तरह से बाह्य रूप से शारीरिक संरचना को भी प्रभावित करेंगे। सभी प्रकार के जीवद्रव्यों की आयु २१ दिन होती है। इस सम्बन्ध में

भी परिवर्तन घटित हो सकते हैं। मानवीय स्वरूप में निश्चित ही एक परिवर्तन होता है।

नकारात्मक एवं सकारात्मक अणुजीवत् के अन्तर-रूपान्तरण के फलस्वरूप क्या एक आम को एक अण्डे में बदला जा सकता है?

हाँ बदला जा सकता है। यदि आम के जीवद्रव्यीय कोश में केन्द्रक के द्रव्यमान (मात्रा) में परिवर्तन उत्पन्न किया जाय एवं संश्लिष्ट अणुजीवत् के गुणगत मूल्य को सही ढंग से काम में लगाया जाय तो यह परिवर्तन लाया जा सकता है, अर्थात् आम को अण्डे में बदला जा सकता है।

साधारण तापमान पर यदि अणुजीवत् सिद्धान्त का सही प्रयोग किया जाय तो (Cater piller) में परिवर्तन संभव है। यह

संभव है यदि दाब पर परिवर्तन की प्रक्रिया लागू किया जाय। बिना तापमान परिवर्तन के वातावरणीय दबाव में परिवर्तन संभव है। यह परिवर्तन कैलोरी में होगा इसका अर्थ तापमान में परिवर्तन नहीं है।

१८ सितम्बर १९८७

गणतन्त्र का विभागीकरण

आज से लगभग दस लाख वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर प्रथम मानव शिशु का जन्म हुआ था, किन्तु उन दिनों के मनुष्यों ने इस पृथ्वी को आज की पृथ्वी के समान सुरक्षित स्थान के रूप में

नहीं पाया था। उस समय प्रकृति अत्यधिक निर्मम थी, इसलिए मनुष्य को इस करुणाहीन प्रकृति से अपने को बचाने के लिए अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग करना पड़ता था। मानव समाज के उस आदिम युग को 'शुद्र युग' के नाम से पुकार सकते हैं।

उस संघर्षशील आदिम समाज में दैहिक शक्ति की भूमिका ही मुख्य थी। स्वाभाविक रूप से उस प्रागैतिहासिक मानव समाज में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की ही नाति का बोलबाला था। नवजात शिशु के जन्म लेने के समय से ही उस समय की भयानक प्राकृतिक शक्ति ने उस शिशु की जीवनी शक्ति के अंकुरण को निष्ठुरतापूर्वकविनष्ट करना चाहा था। इसीलिए मनुष्य ने तब अनुभव किया कि इस निष्ठुर प्रकृति के विरुद्ध एकांकी - होकर संग्राम करने में टिक पाना असम्भव है। इसी वजह से उसने सामूहिक रूप से समूहबद्ध होकर रहना शुरू किया था। दैहिक शक्ति कि प्रधानता वाले उस युग मे जो व्यक्ति दैहिक शक्ति में सर्वाधिक बलवान था वही उस समूह का नेता

बन गया। इस प्रकार धरती पर क्षत्रियों के प्रभुत्व वाले समाज कि रचना हुई एवं राजतन्त्र का अस्तित्व कायम हुआ । तथाकथित शूद्र समाज कोई संगठित एवं व्यवस्थित समाज नहीं था। राजतन्त्र के दौरान ही एक शक्तिशाली संगठित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हुई।

क्षत्रिय युग के बाद विप्र युग का आगमन हुआ। राजतन्त्र के दौरान बुद्धिजीवियों ने अपने बुद्धि के द्वारा विशाल शक्ति संगठित करना शुरू किया जिसके फलस्वरूप राजतन्त्र के छद्म आवरण में पुरोहितों (पादरियों या मौलिवियों) का समाज स्थापित हुआ था। इस तरह सामाजिक शासन की बागडोर पुरोहितों के हाथों में आ गई। जब तक राजतन्त्र दोषरहित था, किसी ने भी इसका विरोध नहीं किया, किन्तु जैसे ही पादरी-पुरोहितों (बुद्धिजीवियों) ने मजहबी ढोंग रचकर समाज का शोषण करना शुरू किया, वैसे ही लोगों का धैर्य खत्म हो गया तथा उन लोगों ने धर्माडम्बरी शोषकों के विरुद्ध क्रांति का

विगुल फूंक दिया। इन्हीं क्रान्ति के परिणाम स्वरूप ही लोकतन्त्र (प्रजातन्त्र) की स्थापना हुई थी।

प्रचलित परिभाषा के अनुसार गणतन्त्र को जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता के शासन के रूप में परिभाषित किया गया है। गणतन्त्र में वयस्क मताधिकार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गणतान्त्रिक सरकार की स्थापना के नाम पर भिन्न-भिन्न राजनैतिक एवं साम्प्रदायिक दल चुनावी प्रकिया में भाग लेते हैं। अपनी जीत को ध्यान में रखकर ही प्रत्येक दल मतदाताओं को लुभाने के ख्याल से अपना-अपना चुनावी घोषणापत्र जारी करते हैं। इसी तरह से विभिन्न राजनैतिक दल चुनावी प्रचार के द्वारा मतदाताओं को लुभाते हैं। जहाँ पर शिक्षित लोगों का बहुमत होता है तथा जहाँ लोगों में पर्याप्त राजनैतिक चेतना होती है, वहाँ किसी राजनैतिक पार्टी के घोषणापत्र के गुण-दोषों कि जाँच करना तथा लोगों के सर्वोत्तम हित का आँकलन करना बहुत कठिन नहीं है, किन्तु जहाँ पर

शिक्षा एवं राजनैतिक चेतना का अभाव है, तथा जहाँ लोग घोषणा पत्रों की असलियत को जानने में असफल होते हैं और मिथ्या प्रचार के द्वारा बरगलाए जाते हैं, वहाँ वे अपने मताधिकारों का प्रयोग वैसे राजनैतिक पार्टियों के समर्थन में करते हैं, जिनके आदर्श सामाजिक हित के प्रतिकूल होते हैं। फलस्वरूप, जो राजनैतिक पार्टियाँ सत्तासीन होती हैं, वे लोगों के हितों के विरुद्ध कार्य करती हैं।

वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था में मताधिकार का प्रयोग उम्र सीमा पर निर्भर है, मान लीजिए लोग २१ वर्ष की उम्र में वोट देने का अधिकार पाते हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि २१ वर्ष की उम्रवाले सभी व्यक्तियों में जनता की मौलिक समस्याओं की समझदारी होती है, किन्तु वास्तविकता में २१ वर्ष से ऊपर वाले बहुत से लोग भी राजनैतिक चेतना के अभाव की वजह से इन समस्याओं से अन्जान रहते हैं। इसलिए मताधिकार के प्रयोग का अधिकार उम्र पर आधारित नहीं होना चाहिए। यह अधिकार

उन्हीं लोगों को प्राप्त होना चाहिए जो लोग शिक्षित एवं राजनैतिक सचेष्ट हैं। उम्र के आधार पर मताधिकार प्रदान करने का तात्पर्य है कि लोग ज्ञान (जानकारी) एवं सही समझ के अभाव में भी अपने मतों का प्रयोग कर सकते हैं जबकि बहुत से राजनैतिक सचेष्ट एवं शिक्षित लोग अपने उम्र के कारण मतदान करने से वंचित किए जाते हैं। यह गणतन्त्र (लोकतन्त्र) की सबसे बड़ी कमी है।

गणतान्त्रिक व्यवस्था की दूसरी बड़ी कमी यह है कि जनता को गुमराह करने वाले थोथे एवं उबाऊ भाषणों को प्रायः सुनना पड़ता है। नेताओं को अपने पक्ष में जनमत प्राप्ति के लिए बहुत प्रकार से प्रचार करना पड़ता है। उन्हें चोरों, डकैतों, लुटेरों एवं ठगों (कपटाचारियों) को संतुष्ट करता पड़ता है क्योंकि वे लोग मतदान कराने की बहुत बड़ी शक्ति रखते हैं। इसीलिए तो प्रजातन्त्र में चोर, लुटेरों एवं ठगों की सरकार होती है। ऐसी सरकार इन लोगों के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं कर सकती है

क्योंकि जो सरकार इनके जघन्य क्रिया-कलापों को नियन्त्रित करती है, वह बहुत दिनों तक टिक नहीं पाती है।

गणतान्त्रिक सरकार में यह सम्भव है कि कोई पार्टी (दल) कुल सदस्य संख्या के ५० प्रतिशत से ज्यादा सदस्यों या प्रतिनिधियों की विजय तो सुनिश्चित कर लेती है किन्तु उनके दल को कुल मतों का ५० प्रतिशत से भी कम मत प्राप्त होता है। इस अवस्था में गठित सरकार को कहने के लिए तो बहुमत प्राप्त दल की सरकार कहा जाता है पर वास्तविकता में ऐसी सरकारें किसी अल्पमत दल की ही सरकारें होती हैं। चूँकि एक विशेष दल की सरकार गठित होती है इसलिए विधान सभा या संसद में अन्य दल या दलों सम्मति (राय) पर ध्यान नहीं दिया जाता है। यद्यपि सभी दल विधान पारित करने में भाग लेते हैं किन्तु जो सरकार बहुमत में होती है उसी दल के इच्छा अनुसार ही विधेयक पारित होते हैं। जब किसी विशेष दल द्वारा कानून

पारित होते हैं तब प्रायः वही दल ही पारित कानूनों से लाभप्राप्त करते हैं, जब कि अधिसंख्यक लोग इससे वंचित होते हैं।

चूँकि सरकार किसी विशिष्ट दल द्वारा ही गठित होती है इसलिए सरकारी सेवकों की स्वाधीनता भी कम हो जाती है। शासक दल के नेता लोग एवं सदस्य गण प्रशासन के कार्यों में दखल देते हैं तथा प्रशासन को दलगत नीति के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य करते हैं। प्रायः ही दबाव देकर बहुत से कार्य कराये जाते हैं जिससे एक विशेष दल ही लाभान्वित होता है किन्तु बहुसंख्यक लोगों के हितों को नुकसान पहुँचता है। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में सरकारी अधिकारी सत्ता पक्ष के नेताओं की इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकते हैं क्योंकि वे लोग उसी सचिवालय के निर्देश के तहत कार्य करते हैं जो शासकीय दल द्वारा गठित मंत्रिमण्डल से नियंत्रित होता है।

तथाकथित गणतन्त्रों (प्रजातन्त्र) में न्यायपालिका भी स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं कर पाती है क्योंकि शासन करने वाले दल न्यायिक अधिकारियों एवं न्यायाधीशों को दबाव देते रहते हैं। इस तरह से न्याय का गला घोंटने वाले फैसले भी कभी-कभी सुनाए जाते हैं।

लेखा परीक्षण (अंकेक्षण) विभाग कि स्वतन्त्रता भी सरकारी राजकोष के उचित ढंग से चलाने के लिए अपरिहार्य है। किन्तु शासकीय दल के दबाव की वजह से यह भी प्रायः स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में असफल होता है। लेखा परीक्षण के अभाव में जनता के धन (सरकारी धन) का दुरूपयोग एवं अपव्यय होता है। परिणामस्वरूप राष्ट्र निर्माण के कार्य सही ढंग से नहीं हो पाते हैं।

कोई सरकार जनता की सेवा करने एवं जनता पर शासन करने के लिये ही चुनी जाती है, किन्तु गणतान्त्रिक व्यवस्था में

शासन करना सम्भव नहीं है, क्योंकि वहाँ शासित होने के लिए कौन है ? जनमत प्राप्ति के लिए ही जनता को तुष्ट करके अनुकूल बना लेना होता है, जो होने वाले शासकों को शासन करने के अयोग्य (अक्षम) बनाता है। इसके फलस्वरूप होने वाले शासक लोग जो स्वयं अक्षम, अनैतिक, लम्पट शोषक या कैसे भी क्यों न हों चुन लिए जाते हैं, वे धूर्त एवं कुटिल रणनीति एवं पैसों की ताकत से चुनावी वैतरणी पार करना चाहते हैं। इसीलिए इस व्यवस्था में योग्य नेतृत्व प्रदान करने वाले नेताओं का नितान्त अभाव हो जाता है। किन्तु जहाँ तक यह प्रश्न जनता से सम्बन्धित है, गणतन्त्र में इसका कोई मूल्य नहीं है। इस व्यवस्था में दल एवं नेता लोग हर तरह से अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहते हैं।

इस तरह से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि गणतान्त्रिक सरकार में ढेरों खामियाँ भरी पड़ी हैं। इनको हटाए बिना किसी देश में सही ढंग से प्रशासन चलाना सम्भव नहीं है।

अनुक्रमणिका

अब गणतन्त्र के कुछ सुधारों की चर्चा की जाय। गणतन्त्र उस देश में सफल नहीं हो सकता जहाँ लोग निरक्षर, अनैतिक एवं पिछड़े हैं। अमेरिका इग्लैण्ड एवं फ्रान्स जैसे देश गणतन्त्र के लिए उपयुक्त हैं। किन्तु इन देशों में भी कुछ सुधारों की आवश्यकता है।

प्रथम सभी राज्यों की विधान सभाओं एवं देश की केन्द्रीय संसद में विधायकों एवं सांसदों को अधिसंख्य लोगों की अनुराक्षा पर ही चुना जाना चाहिए। जन प्रतिनिधियो को चुनने के समय लोगों को (जनता) सही शिक्षा, नैतिक मानदण्ड एवं समाज के प्रति उनके त्याग आदि पर ध्यान देना चाहिए। यदि इन कारकों को ध्यान में रखकर जनप्रतिनिधी लोग चुने जाते हैं तो वे दलगत हितों से निर्देशित न होकर सामूहिक हितों से निर्देशित होंगे। उनके मत में किसी वर्ग हित की अपेक्षा सम्पूर्ण मानव समाज के हित सर्वोपरि होंगे। वे छोटी-बड़ी समस्याओं को मन

में रख कर ही कानूनों का निर्माण करने में सक्षम होंगे, फलस्वरूप सामाजिक पुनर्निर्माण की गति तीव्र हो जायेगी। उनकी निष्पक्ष सेवा सभी के लिए सुख-शान्ति लायेगी।

जनता की समस्याओं के प्रति सजग एवं जागरूक शिक्षित लोगों को ही मतदान का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। मताधिकार के लिए उम्र सीमा की कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। यदि अशिक्षित लोगों को मताधिकार प्रदान किया जाता है तो असामाजिक एवं, अयोग्य जनप्रतिनिधियों के चुने जाने की सम्भावना होती है।

प्रशासन के लिए निर्भीक एवं स्वतन्त्र (स्वावलम्बी) परिवेश प्रदान करने के लिए सचिवालय को मन्त्रिमण्डल के दबावों से मुक्त रखना चाहिए। मन्त्रिमण्डल को विधि -निर्माण, बजट के पारण एवं स्वीकृति, इनकी नीतियों एवं योजनाओं के क्रियान्वयन एवं रक्षा आदि तक ही अपने को सीमित रखना

चाहिए। मन्त्रियों के अधिकार संसद या विधान सभाओं तक ही सीमित रहने चाहिए तथा उन्हें सचिवालय के कार्यों में अपनी नाक नहीं घुसेड़नी चाहिए। मुख्य सचिव को राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री (मुख्यमंत्री) के अधीन नहीं होना चाहिए बल्कि उन्हें, कार्यपालिका प्रधान के रूप में स्वतन्त्र रूप से कार्य करना चाहिए। सभी सचिवों को मुख्य सचिव के अधीन काम करना चाहिए। मन्त्रिमण्डल के दबाव से मुक्त होकर सभी विभागों को जनता की अच्छे तरीके से सेवा करनी चाहिए।

वर्तमान व्यवस्था में न्यायपालिका एक कबीना मन्त्री के अधीन कार्य करती है, मन्त्री के दबाव के कारण न्यायपालिका प्रायः स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं कर पाती है। इस कमी को दूर करने के लिए तथा निष्पन्न न्याय प्राप्त करने के लिए, न्यायपालिका को स्वतन्त्र रूप से कार्य करना चाहिए। किसी भी सूरत में देश के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री से कम महत्त्व नहीं देना चाहिए। केवल नीतिवान

एवं ईमानदार लोगों को ही न्याय के इस पवित्र आसन में बिठाना उचित है। देशवासी लोग यदि इस विषय पर कड़ी नजर रखने में असफल हुए तो न्यायालयों में न्याय के बदले अन्याय ही ज्यादा होंगे।

अंत में सरकारी खजाने के सद् व्यवहार हेतु लेखा परीक्षण (Audit) विभाग की स्वतन्त्रता अनिवार्य होनी चाहिए। लेखा महापरीक्षक (Auditor genaral) को राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री के हस्तक्षेप से मुक्त रखकर काम करने की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। केवल, स्वतन्त्र लेखा परीक्षक विभाग ही सभी विभागों के लेखा-जोखा ठीक ढंग से रख सकते हैं।

इस तरह, एक उचित रूप से गठित प्रजातन्त्र (लोकतन्त्र) में चार विभाग, विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं अर्थ-विभाग है, तथा इनमें से सभी को एक दूसरे से स्वतन्त्र होना चाहिए। किन्तु इस स्थिति में भी शोषण एवं अन्याय की

सम्भावना बनी रहती है। इसलिए इन चारों विभागों की देख-रेख एवं पर्यवेक्षण हेतु सद्‌विप्रों के परिषद् के सद्भावपूर्ण अधिनायकत्व की आवश्यकता है, जिससे आध्यात्मिकता का सर्वोपरि आधिपत्य कायम हो।

१७ जुलाई १९६१ बेतिया, बिहार

गणतन्त्र एवं गोष्ठीतन्त्र

गण + तन + त्रै + ड = गणतन्त्र। तन्त्र शब्द का अर्थ है, उचित गतिवर्धन के साथ व्यवस्थित या नियंत्रित तरीके से ही

कुछ कार्य करना। इसे तन त्रै ड से भी व्युतपन्न किया जा सकता है। यहाँ तन्त्र शब्द का अर्थ हुआ जड़ता के बन्धन से मुक्ति। गणतन्त्र माने जनता के प्रतिनिधियों के सहारे जड़ता के बन्धनों से जनता को मुक्त करना। यद्यपि गणतन्त्र शब्द Democracy का यथार्थ भाव वहन नहीं करता है फिर भी काम चलाऊ ढंग से इसे व्यवहार किया जा सकता है।

मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही मानवता को बहुत सी सामाजिक समस्याओं से सम्मुखीन होना पड़ा था। विभिन्न गाँवों एवं पहाड़ों में रहने वाले प्रतिद्वंदी समूहों एवं गोत्रों के बीच चल रहा संघर्ष उन लोगों की पहली एवं प्रमुख समस्या थी। अग्नि की खोज के पूर्व मानव सभ्यता के प्रारम्भिक अवस्था में लोग सुरक्षा हेतु गुफाओं में रहा करते थे। गहन रात्रि के डर से लोग रात्रि में एक बड़े पत्थर से गुफा के द्वार को बन्द कर देते थे। उस समय के मनुष्य बहुत ही असहाय थे तथा दूसरे अन्य जानवरों की तुलना में शारीरिक रूप में भी कम शक्तिशाली थे। यद्यपि

आदिमानवो में अन्य जानवरों की तुलना में ज्यादा बुध्दि थी, पर उन्हें आज के मनुष्यों की तुलना में बहुत कम बुध्दि थी। इसके अतिरिक्त, अधिकांश दूसरे जानवरों की तुलना में उनके दाँतों एवं नाखूनों में भी कम शक्ति थी। वे अपनी प्यास बुझाने के लिए झरनों के पास रहते थे किन्तु गुफाएँ वहाँ सर्वदा ही उपलब्ध नहीं होती थीं। नदियों में जल का कोई अभाव नहीं था, किन्तु नदियों के किनारे रात्रि के गहन अन्धकार में कोई सुरक्षा की व्यवस्था नहीं थी। आदिम लोगों ने धीरे-धीरे छोटी घाटियों में या लम्बी चट्टानों के बीच बसना शुरू किया तथा कुछ समय के बाद लम्बी घासों एवं लकड़ी के डण्डों के द्वारा पेड़ों की शाखाओं में घरों का निर्माण करना शुरू किया। मानव सभ्यता के पहले कदम के शायद यही चिह्न थे।

उन दिनों गुफाओं, घाटियों एवं पेड़ों के अधिकार हेतु विभिन्न समूहों के बीच प्रायः लड़ाइयाँ होती रहती थीं। उन लड़ाइयों में उनके हथियार उनके दाँत एवं नाखून थे। प्राचीन

ब्रिटेन एवं प्राचीन आइबेरिया के बीच एक सन्धि हुई थी कि वे एक दूसरे को नाखूनों एवं दाँतो से मदद करेंगे। आज भी लोग नाखूनों एवं दाँतों से लड़ने के सन्दर्भ में मुहावरा - To Fight teeth and nail का प्रयोग करते हैं। उन दिनों लोग अपनी संख्या वृध्दि की आवश्यकता का अनुभव करते थे। इसके लिए वे लोग हमेशा अपने समूह में औरतों की संख्या बढ़ाने की कोशिश करते थे। शक्तिशाली महिलाओं को गोष्ठी माता के रूप में जाना जाता था तथा जिस तरह से रानी मधुमक्खियों एवं रानी चींटियों के चारों ओर सभी क्रिया कलाप केन्द्रित होते हैं, उसी तरह से गोष्ठी माताओं के आस-पास भी सभी क्रियाकलाप केन्द्रित थे। यदि एक व्यक्ति के पास दस पत्नियाँ हों, तो दसों पत्नियों से एक ही समय में दस बच्चों का जन्म हो सकता है, किन्तु यदि एक औरत को दस पति हैं तो वह केवल एक बच्चे को ही जन्म दे सकती है। इसी कारण से आदिम लोग अपनी बारम्बार होने वाली लड़ाइयों के दौरान हमेशा प्रतिद्वन्दी समूहों की औरतों का अपहरण करने की कोशिश किया करते थे।

परिणामस्वरूप औरतें आदमियों की दासियाँ बनकर रहती थीं। इसी युग में लोगों ने इस विश्वास के साथ लिंग पूजा की शुरूआत किया कि यह पूजा उनकी संख्या वृध्दि में सहायक होगी।

परवर्ती अवस्था में औरतें विजेता पुरुषों की सम्पत्ति के रूप में मान्य हुईं, और उन्हें गोष्ठी माता के रूप मे स्वीकृति नहीं दी गई। बल्कि इनके स्थान पर लोगों ने शूरवीर बलवान एवं सक्षम व्यक्ति का नेतृत्व स्वीकार किया। ये शूरवीर नेता लोग एक परामर्शदाताओं के, समूह से सहायता प्राप्त करते थे, राजतंत्र के क्रमः विकाश की यह पहली अवस्था थी। कभी-कभी राजा या गोष्ठी नेता अपने परामर्श समिति से अप्रसन्न हो जाते थे। तब वैसी हालत में वे उन लोगों को हटाकर एक नई परामर्श दात्री समिति की नियुक्ति उसी तरह से करते थे, जैसा कि इग्लैण्ड के राजा हेनरी अष्टम ने किया था। दूसरी तरफ कभी-कभी यदि परामर्शदात्री समिति (मंत्रिमण्डल) राजतन्त्र से असन्तुष्ट हुई तो

उसने राजा के अधिकार सीमित कर दिया, जैसा कि इंग्लैण्ड के राजा जान के समय हुआ था। वैशाली के लिच्छिवियों ने प्राय २५०० वर्षों पूर्व राजतन्त्र को हटा कर प्रथम गणतन्त्र की स्थापना किया था। जनता के प्रतिनिधियों को लिच्छिवियों के नाम से जाना जाता था, तथा उनके द्वारा गठित कार्य परिषद् को महालिच्छिवि के रूप में जाना जाता था। पूर्व में राजतन्त्र द्वारा नियंत्रित शासन तब लिच्छिवियों के नियन्त्रण में था। क्षत्रिय युग में ही राजतन्त्र के कुछ क्रमिक स्तरों के बाद राजतन्त्र क्रमशः एक गणतन्त्र में रूपान्तरित हुआ। यह रूपान्तर स्वाभाविक रूप से ही घटित हुआ।

साधारणतया यह दावा किया जाता है कि गणतन्त्र एक विशेष समूह या राजतन्त्र की इच्छाओं के अनुसार कार्य नहीं करता है। बल्कि यह जनता की इच्छाओं द्वारा चुने गये पवित्र एवं विश्वस्त जन प्रतिनिधियों की व्यवस्था द्वारा कार्य करता है। जनता के द्वारा, जनता के लिए, जन नेता लोग जो शासन करते

हैं, उसे ही गणतन्त्र कहते हैं। गणतन्त्र अपने सिर के ऊपर प्रतीकात्मक रूप से राजतन्त्र को तिलक की तरह रख सकता है, जैसा कि ब्रिटेन एवं स्वीडन में है। जैसे भारत एवं अमेरिका में है नहीं भी रख सकता। जहाँ गणतन्त्र, राजतन्त्र को बनाए रखता है वहाँ राजतन्त्र का महत्व सैध्दान्तिक हो सकता है किन्तु व्यवहार में यह गणतान्त्रिक व्यवस्था में अपनी सहमति की मोहर लगाने के लिए एक साधन मात्र होता है। सैद्धान्तिक रूप से यह इग्लैण्ड के राजा या रानी के अधिकार क्षेत्र में है कि वे इच्छा होने पर रॉयलनैवी (राजकीय नौसेना) को बेच सकते हैं किन्तु व्यवहार में वे एक जहाज से एक डेक चेयर का एक टुकड़ा भी नहीं बेच सकते हैं।

अब, एक प्रश्न पैदा होता है, क्या जिसे हम गणतन्त्र कहते हैं वह वास्तव में एक गणतन्त्र है? उत्तर है नहीं। यह निश्चित ही गणतन्त्र नहीं है। बहुत से देश जिन्होंने बहुत समय पहले ही राजतन्त्र को समाप्त कर दिया था तथा अभी अपने को गणतन्त्र

कहते हैं, किन्तु इन देशों में साधारण लोगों को, दूसरे अधिकारों की क्या बात की जाय, बोलने तक की आजादी भी नहीं है। लोगों की क्रियाशीलता एवं गतिविधियों पर राजकीय पुलिस एवं गुप्तचर दस्ता की नज़र रहती है। यद्यपि ऐसे देश अपने को गणतन्त्र कहते हैं किन्तु वास्तविकता में केवल समूह शासित राज्य हैं। क्या उनके लोग गणतान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा नहीं चुने जाते हैं? नहीं, वे लोग गणतान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा नहीं चुने जाते हैं। इन समूह शासित राज्यों के नेता लोग निर्वाचन तन्त्र को इस ढंग से अपने पक्ष में ठीक कर लेते हैं ताकि उनके विरोधी लोग बहुमत न जुटा सकें वे अपने अवैधानिक शासन को बनाए रखने के प्रयास में बल प्रयोग से, मतों में हेरा-फेरी करके या अन्य अनैतिक साधनों से चुनावों को तहस-नहस करते हैं। अतः उन्हें गणतन्त्र का प्रवक्ता नहीं कहा जा सकता है, बल्कि वे अपने गुट (समूह) या दल के लोगों द्वारा चुने गये मात्र समूह (दल) नेता है। गणतन्त्र के बारे में उनके सभी दावे उनके घोषित आदर्शों एवं चाल-चलन के साथ पूर्णतः परस्पर विरोधी हैं। उनकी स्थिति

उसी तरह की है, जैसे कि कोई व्यक्ति अपने चेहरे पर तारकोल चुपड़ने के बाद पुनः उस पर टेलकम पाउडर मलता हो तथा दुनिया को दिखाता हो कि देखो मेरा चेहरा कितना गोरा है, कितना सफेद है।

गणतन्त्र के समर्थकों के बीच कुछ लोग ऐसे भी हैं जो समूह तानाशाही का समर्थन नहीं करते हैं। फिर भी क्या वे शपथ लेकर दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि उनका आदर्श गणतन्त्र दुनिया के किसी देश में है? नहीं, वे ऐसा नहीं कह सकते। जो लोग गणतान्त्रिक मूल्यों के पालक नहीं हैं तथा जिनमें राजनैतिक चेतना का ज्ञान ठीक से उन्नत नहीं हुआ है, वैसे मतदाताओं के मतों का क्या मूल्य ? और इसीलिए उनके बीच में विभिन्न प्रकार के मनोभावों (Sentiments) को जगा कर उनके वोटों (मतों) को खरीद लेना या हथिया लेना कोई कठिन काम नहीं है। ऐसी परिस्थितियों के तहत गणतन्त्र

(Democracy) किसी भी क्षण दानवतन्त्र (Demonocracy) में रूपान्तरित हो सकता है।

आज दुनिया में जैसी-अवस्था मौजूद है, इस विवादास्पद समस्या के लिए प्रउत द्वारा समर्थित सद्विप्रों का शासन ही एक मात्र समाधान है। फिर भी, यह सत्य है कि सद्विप्रों का शासन, अनेक उच्चस्तरीय बुद्धिमान लोगों द्वारा, केवल प्रउत के व्यवस्थित एवं युक्तिपूर्ण (विवेकपूर्ण) प्रयोग के द्वारा ही आयेगा। सद्विप्रों के शासन की स्थापना अन्धा-धुन्ध जड़ शक्ति या निरर्थक बौद्धिक शक्ति के बेतुके प्रयोग से सम्भव नहीं है। अतः मानव समाज के अगुआ लोगों का यह कर्त्तव्य है कि लोगों को समाज की वर्तमान दुर्दशा को बताएँ, जिससे जनता वास्तविक सच्चाई को जान सके। उन्हें यथाशीघ्र लोगों की चेतना जगाने के लिए हर सम्भव प्रयास करना चाहिए।

१७ - अप्रैल- १९८८ कोलकाता

अनुक्रमणिका

सहकारी व्यवस्था

जैसा कि तुम जानते हो कि मानव समाज एक और अविभाज्य है। कोई मनुष्य अकेला नहीं रह सकता है, वह एकक-जीवी जीव नहीं है। यदि कोई व्यक्ति कुएँ से पानी पीना चाहता है तो उसे एक रस्सी एवं एक बाल्टी की आवश्यकता होती है तथा रस्सी से बाल्टी बाँध कर पानी खींचने के कुछ यन्त्र आवश्यक होते हैं। इन सभी उपकरणों के लिए प्यासे मनुष्य को दूसरों की मदद लेना आवश्यक हो जाता हैं। समाज में लोगों को दूसरों के साथ मिलकर काम करना पड़ता है ताकि प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक रूप से आगे बढ़ सके।

" समानं एजति इति समाजः" एक मत से एक ही लक्ष्य की ओर व्यष्टियों के समूह की सामूहिक गति को समाज कहते हैं।

यदि लोग जीवन के उन कुछ पहलुओं को छोड़कर जो नितान्त व्यक्तिगत हैं, बाकी सभी पहलुओं में निकटतापूर्वक मिल-जुलकर आगे बढ़ते हैं तो समाज के कल्याण के लिए यह अच्छा होगा। जिन कार्यों को सामूहिक रूप से करना सम्भव नहीं है केवल उन्हीं को व्यष्टिगत तौर पर करना उचित है। जहाँ तक सम्भव हो हमेशा एक साथ काम करना चाहिए जितना अधिक हम लोग एक साथ काम करते हैं उतना ही अच्छा है। यदि इस सिद्धान्त का पालन नहीं किया जाता है तो समाज का अभिप्राय ही विघटित हो जायेगा तथा लोगों का अस्तित्व बुरी तरह प्रभावित हो जायेगा। लोग अपना खाना व्यक्तिगत रूप से अकेले ही खाते हैं क्योकि कोई दूसरा आपके लिए आपका भोजन नहीं खा सकता है। किसी भोजन को मिल-बाँटकर

सामूहिक रूप से खाया जा सकता है। जब व्यष्टित्व मानव जीवन पर शासन करता है तब इससे विभिन्न जनगोष्ठियों का कल्याण पर्यावरण, अड़ोस-पड़ोस एवं मानवता का सतत् अस्तित्व भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकता है।

समन्वित सहकारिता - Operation (क्रिया) शब्द का अर्थ है किसी एक माध्यम या एकाधिक माध्यमों की सहायता से किसी विशेष कार्य को सम्पन्न करना। मान लो, तुम कोई कार्य करने के लिए कोई यन्त्र चला रहे हो। यदि इस तरह का कार्य सामूहिक प्रयास से किया जाय तो उसे सहकारिता कहते हैं। सहकारिता के अन्तर्गत की स्थिति में, जो कुछ किया जाता है वह समान अधिकार, समान मानवीय मर्यादा एवं समान कानूनी अधिकारिता के साथ किया जाता है। सामूहिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाज के सदस्यों के बीच में सहयोगिता होनी चाहिए। जहाँ यह सहयोगिता स्वतन्त्र लोगों के बीच समान अधिकार - पारस्परिक सम्मान एवं कल्याण की भित्ति पर आधारित हो तो

उसे समन्वित सहकारिता कहते हैं। जहाँ लोग व्यष्टिगत या सामूहिक रूप से कुछ करते हैं, किन्तु स्वयं को दूसरे लोगों की देख-रेख के अधीन रखते हैं, वहाँ इसे अधीनस्थ (आश्रित) सहकारिता (सहयोग) कहते हैं। जीवन के प्रत्येक स्तर में हमें समन्वित सहकारिता के साथ ही सभी कार्य करने चाहिए। हमें अधीनस्थ (आश्रित) सहकारिता से सदैव बच कर रहना चाहिए।

आज दुनिया में विभिन्न सामाजिक आर्थिक व्यवस्थाएँ प्रचलन में हैं किन्तु इनमें से कोई भी व्यवस्था समन्वित सहकारिता पर आधारित नहीं है, वरन् इन व्यवस्थाओं में सामाजिक सम्बन्ध मुख्यतः आश्रित सहकारिता पर आधारित है, जिसका परिणाम आज समाज के नैतिक ताना-बाना की विकृति के रूप में सर्वत्र दिखाई पड़ रही है। उदाहरणार्थ, कुछ देशों में जातीय समानता का सुस्पष्ट अभाव है तथा वहाँ मौजूद भिन्न नस्लीय समूहों के बीच बिल्कुल ही समन्वित सहकारिता नहीं है। सामाजिक जीवन में सामञ्जस्य एवं सन्तुलन के इस

अभाव की वजह से समाज की पूरी संरचना ही विखण्डित हो गई है।

कुछ देश कम्यून व्यवस्था का अनुकरण करते हैं। कम्यून व्यवस्था में समाज सैनिक व्यवस्था के नियन्त्रण के आधीन उत्पादन वितरण के एक यन्त्र में परिवर्तित हो जाता है। उत्पादन बढ़ाने के बदले कम्यून व्यवस्था वास्तव में उत्पादन कम करने को बाध्य करती है। खाद्य अभाव के रूप में इसका नतीजा प्रायः सभी कम्यूनिष्ट देशों में देखा जा सकता है। आस्ट्रेलिया, कनाडा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे पूँजीवादी देश अपने खाद्यान्न चीन व रुस को बेच रहे हैं। इसे अतिरिक्त कम्यून में रहने वाले लोग अपने कार्यों के प्रति अपनत्व अनुभव नहीं करते हैं, और न ही वे अपनी समस्त क्षमताओं को खुलकर व्यक्त कर पाते हैं। इसके तरह की घुटनभरी एवं यान्त्रिक व्यवस्था जड़वादी दृष्टिकोण का पोषण करती है तथा निरीश्वरवादी (अधार्मिक) नेतृत्व तैयार करती है। कम्यून व्यवस्था में कोई व्यक्तिगत

मालिकाना (स्वामित्व) नहीं होता है। व्यक्तिगत स्वामित्व के अभाव में लोग कठोर श्रम तो करते ही नहीं, कोई सम्पत्ति की भी चाह नहीं करते हैं। यदि किसान लोग यह अनुभव करें कि उन्हें स्थायी रूप से भूमि का भोगाधिकार प्राप्त है तो वे और अधिक उत्पादन करेंगे। कम्यून व्यवस्था में इस तरह का दमित मनोभाव, मानसिक दमन एवं मन्द उत्पादन में परिणत होता है। बुद्धिजीवी लोगों को वैसे कार्य करने को बाध्य किया जाता है जो उनके लिए अनुपयुक्त है तथा उन्हें साधारण मज़दूरों जैसा ही वेतन दिया जाता है। कोई प्रेरणादायक व्यवस्था एवं व्यक्तिगत पहल से कुशल लोगों को प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। इसीलिए लोग स्वाभाविक रूप से ही कठोर श्रम नहीं करते हैं। इस तरह की व्यवस्था कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में समाज की आर्थिक समस्याओं का समाधान कभी नहीं कर सकती हैं। बल्कि यह व्यवस्था इन दोनों क्षेत्रों में नई समस्याएँ उत्पन्न करेंगी एवं मौजूदा समस्याओं को केवल ज़्यादा बढ़ायेंगी। किसी भी कम्यून व्यवस्था में उत्पादन एवं वितरण पद्धतियाँ मौलिक

रूप से त्रुटिपूर्ण, शोषणकारी एवं अमानवीय होती हैं। इसलिए, कम्यून व्यवस्था में समन्वित सहकारिता का नितान्त अभाव रहता है। कम्यून व्यवस्था आश्रित सहकारिता पर आधारित है अर्थात यह व्यवस्था मालिक एवं सेवक या पर्यवेक्षक एवं पर्यवेक्षित के सम्बन्धों पर आधारित है। ये सम्बन्ध मानवीय प्रगति के लिए हानिकारक है तथा प्रगतिशील गति की किसी सम्भावना को विलम्बित करते हैं। यह व्यवस्था मानवीय मन के स्वभाव एवं अभ्यास के ठीक उल्टा है।

प्रउत सहकारी व्यवस्था को लागू करने का हिमायती है। इसका आन्तरिक भाव समन्वित सहकारिता का है और केवल यह प्रउत व्यवस्था ही मानवता के स्वस्थ एवं एकीकृत प्रगति को सुनिश्चित कर सकती है। सहकारी व्यवस्था मानव जाति के बीच स्थायी एवं सम्पूर्ण एकता स्थापित करने के लिए आवश्यक है। सहकारी व्यवस्था की प्रतिष्ठा से अच्छे-अच्छे

लाभ प्राप्त करने हेतु लोगों को इसके लिए कार्य करना चाहिए। इसीलिए प्रउत का नारा है। जि

हम सहकारिता चाहते हैं, कम्यून नहीं।

हम कम्यून के गुलाम नहीं ।

कृषि सहकारिता - सहकारिता का अन्तर्निहित भाव यही सुझाव देता है कि सभी अत्यावश्यक सामूहिक आवश्यकताएँ यथा खाद्य, वस्त्र, आवास चिकित्सा एवं शिक्षा आदि को सहकारी ढंग से उत्पादित होना चाहिए। साधारणतया किसी देश का मुख्य भोजन ही उस देश की मुख्य खाद्य फसल होती है। उदाहरण के लिए बंगाल के निवासियों का प्रधान खाद्य भात (चावल) है, इसीलिए वहाँ की मुख्य फसल धान है। इसी तरह से पंजाब की मुख्य फसल गेहूँ आयरलैण्ड की मुख्य फसल आलू तथा स्काटलैण्ड की मुख्य फसल राई, ओट (जई) एवं जौ है।

खाद्य का सर्वाधिक महत्त्व होने के कारण ही अर्थनीति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र कृषि है। कृषि भूमि के अधिकतम एवं सुरक्षित उपयोग हेतु तथा इसके उचित पुनर्गठन हेतु सहकारी व्यवस्था ही सर्वाधिक बेहतर है।

किसी भी कृषि भूमि की उर्वरता उस क्षेत्र के भू-प्राकृतिक परिवेश के ऊपर निर्भर करती है तथा वहाँ की फसल का उत्पादन भूमि के जल धारण क्षमता पर निर्भर करता है। साधारणतया ऊँची भूमि उपजाऊ होने के बावजूद बहुत अधिक उत्पादन नहीं दे पाती है। कम उपजाऊ होने के बावजूद भी पानी जमा होने के कारण निचली भूमि मे अच्छा उत्पादन सम्भव है। तुलनात्मक विचार से जो सब भूखण्ड समतल हैं उनको ऐसे टुकड़ों में बाँटना या बनाना चाहिए जिससे जल ऊँचे से नीचे की ओर बहने का सुयोग पा सके।

कृषकों को अपनी भूमि के प्रति बहुत अधिक आकर्षण होता है। किसान लोग अपने उत्पादन का सैकड़ों कि.ग्रा. अनाज दान कर सकते हैं किन्तु वे अपनी भूमि का कुछ वर्ग मीटर भाग भी स्वेच्छापूर्वक दान देने को कभी राजी नहीं होंगे। मान लो बहुत से किसानों के पास कुल २०० एकड़ भूमि है। वे सभी मिलकर यदि एक कृषि सहकारी समिति का गठन करें तथा अपने व्यक्तिगत जोत क्षेत्र के परिमाण पर आधारित अपने-अपने हिस्सों का लेखा-जोखा रखें तो स्वामित्व का भाव भी बचा रहता है। यदि समस्त भूमि समान स्तर (Level) पर है तो उस स्थिति में छोटे-छोटे भूखण्डों के बीच जितनी मेड़ें हैं, उन्हें तोड़कर खेती योग्य भूमि के एक बड़े भू-क्षेत्र में रूपान्तरित करना होगा। इस तरह की व्यवस्था में किसानों की मानसिकता प्रभावित नहीं होगी और वे कोई असुरक्षा अनुभव नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त वे लोग अनुपजाऊ बञ्जर जमीन को वैज्ञानिक तरीके से खेती करके तथा बहुत से जोतों को छोटे-छोटे टुकड़ो में बाँटनेवाली उन मेड़ों को हटा करके कृषि योग्य जमीन का

क्षेत्रफल बढ़ाने में सक्षम होंगे। एक किसान जिसके पास केवल दो कठ्ठा जमीन है वह हल और बैल नहीं रख सकता है। उसे अपनी जमीन किसी को देनी पड़ेगी जो उसे बटाईदार के रूप में जोत सके। यदि वह अपनी जमीन बटाईदार को देता है तो उसको शायद ही अपनी जमीन के बदले कुछ वापस मिले। यह दुर्दशा इसलिए उत्पन्न होती है कि जमीन का क्षेत्रफल बहुत ही कम है। यदि कृषि सहकारी तरीके से की जाती तो बहुत सारे छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर एक बड़ा भू-खण्ड निर्मित किया जा सकता है और किसानों के लिए यह एक बहुत बड़ा सम्मलित लाभ होगा।

अकबर के समय भारत में एक व्यवस्था प्रचलित हुई थी जिसमें भूमि के रकबा के चारों ओर मेड़ें निर्मित हुई थीं। अकबर ने एक नई पद्धति शुरू की थी जिसमें प्रत्येक रकबा की उत्तरी एवं पश्चिमी मेड़ उस रकबा के मालिक के स्वामित्व में थी। जब सहकारी व्यवस्था में कृषि भूमि को विस्तृत रूप प्रदान करने के

अनुक्रमणिका

लिए मेड़ों को हटाया जायेगा, तब प्रत्येक रकबे की उत्तरी एवं पश्चिमी मेड़ों से अधिकृत भूमि उस रकबा के मालिक को प्राप्त हो जायेगी।

आजकल भूमि में खेती करने के लिए खाद, ट्रैक्टर, सिंचाई व्यवस्था आदि की आवश्यकता होती है। गोबर की खाद अपर्याप्त होने के कारण, किसानों को रासायनिक खाद की आवश्यकता होती है, किन्तु जहाँ पर लगातार रासायनिक खाद का प्रयोग किया जाता है वहाँ कुछ समय बाद भूमि जञ्जर एवं बेकार हो जाती है। रासायनिक खाद भूमि की प्राण शक्ति या उर्वर शक्ति को नष्ट कर देती है और अन्ततोगत्वा भूमि सीमेन्ट के समान प्राणहीन या उर्वराहीन हो जाती है। भूमि पर किसी दुष्प्रभाव के बिना खेती में रासायनिक खादों के प्रयोग पर गहन शोध करने की आवश्यकता है। व्यष्टिगत खेती करने की पद्धति में रासायनिक खादों के दुष्प्रभाव से बचने की सम्भावना नहीं है। फिर भी सहकारी व्यवस्था में भूमि की उर्वरता को लम्बे समय

तक बनाए रखने एवं अच्छे तरह से उपयोग करने की नई खोज हेतु विकाश एवं कृषि शोध की काफी अधिक सम्भावनाएँ हैं। सहकारी व्यवस्था का यही लाभ है कि यह बहुत से व्यक्तियों की सम्पत्ति एवं संसाधनों को तथा सामूहिक रूप में उपयोग हेतु प्रबन्ध करती है। एक समय था जब किसान लोग बहुत वर्षों की लगातार खेती के बाद एक साल के लिए अपनी भूमि को बिना खेती के छोड़ देते थे। किन्तु यह आज सम्भव नहीं है। अतः आज एक ऐसी व्यवस्था को अपनाना आवश्यक है जिसमें या तो रासायनिक खादों के प्रयोग से भूमि की उर्वरता कम नहीं हो, या रासायनिक खादों के बिना ही अच्छी उपज प्राप्त की जा सके। मैं आश्वस्त हूँ कि निकट भविष्य में यह हासिल हो जायेगा।

कृषि को उद्योग के समान ही दर्जा प्राप्त होना चाहिए। आज बहुत से विकशितं एवं अविकशित देशों में इस नीति का पालन नहीं होता है। तथा इसे सहकारी व्यवस्था के जरिये सर्वोंतम ढंग से लागू किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, हिमाचल

प्रदेश के सेब बगानों को व्यष्टिगत खेती की अपेक्षा सहकारी व्यवस्था के रूप में कार्य करना चाहिए। अतः सेब की ढुलाई एवं विपणन हेतु पैकेजिंग उद्योग होना चाहिए। सेबों के पैकेजिंग एवं प्रसंस्करण को कृषि उद्योग के हिस्से के रूप में मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। कृषि में कार्यरत लोगों को उद्योगों के समान ही लाभान्श प्राप्त होना चाहिए। ठीक इसी तरह ही रेशम कीट पालन (Sericulture) में रेशम उत्पादन एवं नियन्त्रण को भी उद्योग के तरह सहकारी व्यवस्था से चलाना चाहिए। इस तरह कृषकों या कृषि सहकारी समितियों को उद्योग के आधार पर ही सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र की अर्थव्यवस्था संचालित करनी चाहिए।

कृषि - सहकारिता : - प्रउत एक चरणबद्ध योजना के अनुसार समस्त कृषि भूमि के क्रमिक सामाजीकरण का समर्थन करता है। पहले चरण में समस्त अलाभकारी कृषि भूमि को भूमि मालिकों से लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से सहकारी प्रबन्धन में ले लिया जाना चाहिए। दूसरे चरण में सभी भूमिपतियों को सहकारी

व्यवस्था में शामिल होने का अनुरोध करना चाहिए। इसके बाद तीसरे चरण में स्वामित्व का पुनर्निर्धारण एवं भूमि का विवेक सम्मत वितरण होना चाहिए। अन्ततः चौथे चरण में कृषि भूमि के स्वामित्व को लेकर और कोई संशय या विरोध नहीं रहेगा। इस तरह लोग भी एक-एक स्तर में धीरे-धीरे अपने व्यक्तिगत हितों (स्वार्थों) की अपेक्षा सामूहिक कल्याण के प्रति प्रेरित होने की शिक्षा प्राप्त कर लेंगे। यह मानसिक विस्तार एक सुन्दर अनुकूल सामाजिक परिवेश निर्मित करेगा। निश्चित ही सामूहिक मानसिकता में इस तरह का परिवर्तन रातों रात नहीं आयेगा, बल्कि लोगों के मनोभावों के अनुसार धीरे धीरे उत्पन्न होगा। इस तरह की सहकारी व्यवस्था के लागू हो जाने पर जमीनदारों एवं भूमिहीन ग्रामीण मजदूरों के बीच का संघर्ष और अधिक नहीं रह जायेगा।

प्रथम अवस्था में कृषि सहकारी समितियाँ किसानों के विभिन्न समूहों की आपसी सहकारिता से गठित होगी। मान

लिया जाय, क, ख, ग एवं घ चार किसानों ने निम्नलिखित अनुपात में अपनी जमीन एक सहकारी संस्था में समाहित करते हैं-

क द्वारा प्रदत्त जमीन का परिमाण - २ एकड़

ख द्वारा प्रदत्त जमीन का परिमाण - ५ एकड़

ग द्वारा प्रदत्त जमीन का परिमाण १० एकड़

घ द्वारा प्रदत्त जमीन का परिमाण - १५ एकड़

उक्त सहकारी संस्था द्वारा उत्पादित फसल को बाजार में बिक्री करने पर जो कुल

मुनाफा अर्जित होगा, उसे निम्नोक्त दो नीतियों के अनुसार चारों किसानों में बाँट दिया जायेगा।

(१) सहकारी समिति में व्यवहृत कुल जमीन जिस परिमाण में थी, सहकारी समिति का लाभांश भी उसी अनुपात में उन चारों किसानों के बीच बाँट दिया जायेगा।

(२) सहकारी समिति के कुल कृषि उत्पादन में चारों किसानों ने व्यष्टिगत रूप से जिस परिमाण में अपना अपना दायित्व या श्रम किया है उसी अनुपात पर लाभांश का वितरण होगा।

इस प्रकार किसान लोग अपने श्रम एवं सहकारी संस्था में हिस्से की गणना के अनुसार लाभांश एवं उत्पादन प्राप्त करेंगे। जैसे जैसे उन्नत वैज्ञानिक तकनीक के निरन्तर विकशित होने के कारण भूमि के उत्पादन में वृध्दि होती जाती है, वैसे वैसे किसान लोग उत्पादन की वृध्दि एवं अत्यधिक समृद्धि की आशा कर सकेंगे।

सहकारी समिति में शामिल सभी भूमि की उत्पादन क्षमता का लेखा-जोखा रखा जाना चाहिए। इस उत्पादकता के आधार पर ही शेयर निर्धारित होने चाहिए। उदाहरणार्थ एक किसान की ३० एकड़ भूमि में, १५ एकड़ भूमि ज़्यादा उपजाऊ एवं १५ एकड़ भूमि कम उपजाऊ है, तब उसका हिस्सा उत्पादकता की भिन्नता की गणना के अनुसार होना चाहिए। यदि कुछ जमींदार लोग किसी कृषि सहकारी स्मिति में काम करना नहीं चाहते तो भी उनकी भूमि सहकारी समिति में शामिल होना चाहिए। उन्हें सहकारी समिति का सदस्य माना जायेगा तथा वे अपनी जमीन के उत्पादन एवं परिमाण के आधार पर हिस्सा प्राप्त 1st) for Help करेंगे।

जो जमींदार लोग सहकारी समिती में कार्य नहीं करते हैं, वे वेतन (मजदूरी) पाने के हकदार अवश्य नहीं होंगे।

सहकारी व्यवस्था में किसान लोग परिस्थितियों के दबाव के कारण फसल काटने के तुरन्त बाद अपनी उपज बेचने को बाध्य नहीं होंगे। व्यष्टिगत एवं निजी कृषि व्यवस्था में अधिकांश किसान लोग अपने जीवनोपयोगी जरूरतों की पूर्ति हेतु फसल प्राप्ति के बाद तुरन्त ही अपनी उपज को बेंच दिया करते हैं। किन्तु सहकारी व्यवस्था में किसान लोग

११६ । कणिका में प्रउत

और आर्थिक रूप से सुरक्षित होंगे, क्योंकि सहकारी समिति व्यष्टिगत किसानों को अग्रिम धन भुगतान कर देगी तथा फसल की अच्छी कीमत हेतु सर्वाधिक उपयुक्त समय पर ही फसलों की उपज को बेचेगी, अर्थात् सहकारी समिति निश्चित कर लेगी कि अच्छा लाभप्राप्त करने के लिए कितनी उपज किस समय

बेचना है। सहकारी समितियाँ एक निश्चित मूल्य सीमा के तहत ही अपने उत्पादनों का मूल्य निर्धारण करने में सक्षम होंगी। इस प्रकार सहकारी समितियाँ स्वयं ही पूँजीवादी एवं निजी व्यवस्था में बिचौलियों एवं मुनाफाखोरों द्वारा लिए जा रहे लाभ को प्राप्त कर लेगी।

वर्तमान व्यवस्था में, फसल काटने के बाद गरीब किसानों को अपने फसलों को पैदा करने हेतु मजदूरी, बीज, सिंचाई आदि हेतु लिए गये कर्ज को अदा करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, उन्हें प्रायः पूरे साल के लिए अपने परिवार वालों को कपड़े खरीदना होता है। अपने आवश्यक ज़रूरतों के लिए उन्हें अक्सर ही वास्तविक कीमत से कम पर अपनी ऊपज बेचने को बाध्य होना पड़ता है। परिस्थितियों के दबाव में इस तरह की बिक्री को विपत्ति - बिक्री - (Distress Sale) कहा जाता है। इस तरह की विपत्ति - बिक्री -(Distress Sale) से किसानों को बचाने के लिए सहकारी व्यवस्था अत्यावश्यक है। एक सहकारी

समिति में किसान लोग एक साल की अपनी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि - उत्पादन की आवश्यक मात्रा रख लेते हैं एवं अतिरिक्त उत्पादन को सहकारी समिति द्वारा निर्धारित दर पर सहकारी समिति को ही बेच देते हैं। जब बाजार मूल्य ठीक होता है तभी सहकारी समिति द्वारा उत्पादों को बेचा जायेगा। इसके बाद किसान लोग लाभांश का अपना अंश प्राप्त करेंगे जो सहकारी समिति में अपने भूमि के हिस्से के परिमाण के अनुसार निर्धारित होगा।

कर, उद्ग्रहण (उगाही), उत्पाद शुल्क आदि सहकारी समिति द्वारा सामूहिक रूप से अदा किया जायेगा। इस तरह आर्थिक शोषण एवं वित्तीय दबाव से किसान लोग मुक्त हो जायेंगे। बहुत से विकशित देशों में किसी प्रकार का कोई भूमि कर नहीं है क्योंकि इस तरह के करों से प्राप्त राजस्व संग्रह कुल राजस्व का एक बहुत छोटा अंश मात्र होता है। सहकारी व्यवस्था में कार्य शक्ति अंश धारक श्रमिकों एवं अंश धारक

किसानों से मिल कर बनेगी। इससे दोनों समूह ही लाभान्वित होंगे। अर्थात् अंश धारक कृषकों को अपने काम के नियमित वेतन के साथ साथ अपने शेयर का लाभांश भी प्राप्त होगा जबकि श्रमिक लोग अनुकूल वेतन एवं स्थायी रोजगार का लाभ उठायेंगे।

कृषि सहकारी समिति में दो प्रकार के गैरअंशधारी श्रमिक काम करेंगे। एक वे हैं जो स्थायी रूप से कार्य करेंगे तथा दूसरे जो आकस्मिक या अनुबन्ध पर काम करेंगे। स्थायी श्रमिक लोग अपने वेतन के अतिरिक्त प्रोत्साहन के रूप में लाभांश एवं बोनस भी प्राप्त करेंगे। जबकि आकस्मिक श्रमिक लोग अपने श्रम के बदले केवल वेतन प्राप्त करेंगे। वे श्रमिक जो सहकारी समिति को अधिक श्रम प्रदान करते हैं उन्हे बोनस भी अधिक प्राप्त होना चाहिए कुशल श्रमिकों को अकुशल श्रमिकों की तुलना में ज्यादा वेतन प्राप्त होना चाहिए। कठोर श्रम करने एवं कुशल श्रमिक बनने हेतु यह सभी श्रमिकों के लिए एक

प्रोत्साहन होगा। श्रमिकों की उत्पादकता एवं कुशलता, दोनों के प्रदर्शन को देखकर ही वेतन की मात्रा के अनुसार बोनस दिया जाना चाहिए।

वे सदस्यगण जो कृषि सहकारी समिति में शेयरों को खरीदते हैं, उन्हें कृषि सहकारी समिति की अनुमति के बिना अपने शेयरों को हस्तान्तरित करने का अधिकार नहीं है, किन्तु उनके शेयर वंशानुगत हो सकते हैं। यदि सहकारी समिति के कुछ सदस्यगणों का कोई वारिस नहीं है तो उनके शेयर उनके वैध अधिकृत उत्तराधिकारियों को प्राप्त हो जाने चाहिए और ये लोग यदि सहकारी समिति के पहले से सदस्य नहीं हैं तो सहकारी समिति के सदस्य हो जायेंगे। इस नीति के पीछे यही तर्क है कि सहकारिता के क्षेत्र में पूँजीवादी उद्योगपति लोग रुपये के बल पर अपनी इच्छानुसार बहुत से शेयर न खरीद सकें तथा सहकारिता के बाजार में अनैतिकता का कु-परिवेश बनाने का सुयोग न पा

सकें। इस प्रकार बेलगाम ढंग से शेयरों की खरीद बिक्री के कुफल से ही आर्थिक मन्दी दिखाई देती है।

भिन्न - भिन्न देशों में उत्तराधिकार की भिन्न भिन्न पध्दतियाँ हैं, अतः उत्तराधिकार का अधिकार किसी विशेष देश मे प्रचलित पध्दति के अनुसार ही निश्चित होना चाहिए। उदाहरणार्थ बंगाल में दायभाग पध्दति को माना जाता है तथा भारत में दूसरे स्थानों में हिन्दू कोड़ - बिल लागू है, जबकि दूसरे देशों में दूसरी पध्दतियाँ अपनायी जाती हैं। यदि इस व्यवस्था को अपनाया जाता है तो सहकारी सदस्यों को पहले के जमींदारों की तरह कानूनी पचड़ों में पड़ने की या कोर्ट जाने की आवश्यकता नहीं होगी। चूँकि सहकारी समिति के सभी सदस्य उसी गाँव या उसी अड़ोस पड़ोस से होंगे इसलिए वे सभी एक दूसरे के साथ अच्छे ढंग से परिचित होंगे और इस तरह शेयरों के वैधानिक रूप से नियुक्त प्राप्तकर्ता के निर्धारण में कोई परेशानी नहीं होगी। सहकारी समिति के सदस्यगण स्वयं ही निर्णय करने में सक्षम

होंगे कि मृतक सदस्यों द्वारा स्वामित्व प्राप्त शेयरों हेतु उत्तराधिकार का दावेदार कौन हो सकता है।

वंचित अथवा छोटे-छोटे भू-खण्डों के स्वामी लोग भी सहकारी व्यवस्था में लाभान्वित होंगे। विधवा, विकलांग किसान या कोई अवयस्क लड़का-लड़की, जिनके पास कुछ भूमि है, वे भी सहकारी समिति में अपनी भूमि के शेयरों के आधार पर लाभांश अर्जित करेंगे। व्यष्टिगत मालिकाना व्यवस्था में उनकी भूमि बिना खेती के बेकार पड़ी रह जाती है, और वे गरीब के ग़रीब बने रहते हैं। इस प्रकार यदि सहकारी सदस्य गण कोई कार्य करने के अयोग्य हैं तो भी वे सहकारी समितियों के कुल लाभ से आय प्राप्त करने के हकदार होंगे।

किसान लोग विभिन्न उद्योगों की आवश्यकता के अनुसार भिन्न-भिन्न वस्तुएँ पैदा करने के लिए उत्पादक सहकारी समितियों का गठन भी कर सकते हैं। इस प्रकार कुछ

कृषक सहकारी समितियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जो उत्पादक सहकारी समितियाँ एवं कृषक सहकारी समितियाँ दोनों ही रूप में कार्य कर सकती हैं। कच्चे माल जो गैर कृषि जाते हैं, यथा सिमेंट के उत्पादन हेतु प्रयुक्त होने वाला चूना पत्थर उत्पादक सहकारी समितियों द्वारा प्रसंस्करित होना चाहिए। वे सहकारी समितियाँ जो केवल कृषि सहकारी समितियाँ हैं उन्हें उत्पादक सहकारी समितियाँ को सीधे ही अपना उत्पाद बेचना चाहिए, जो बदले में विभिन्न उपभोक्ता वस्तुएँ निर्मित कर सकते हैं। जो कृषक सहकारी समितियाँ उत्पादक सहकारी समितियाँ के रूप में भी कार्य करती हैं, वे विभिन्न तरीके से अपनी लाभप्रदता बढ़ा सकती है। उदाहरणार्थ - इस तरह की सहकारी समितियाँ चावल की भूसी से तेल उत्पादित कर सकती हैं। इससे लाभार्जित धन कृषक सह-उत्पादक सहकारी समिति में पुनः निवेशित एवं पुनः आबंटित हो सकता है, अथवा विकाश एवं शोध के लिए उपयोग किया जा सकता है।

कृषि सहकारिता समिति में किसान लोग अपने हितों एवं सुविधाओं हेतु केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों पर सामूहिक दबाव डालने में सक्षम होंगे। उदाहरणार्थ व्यक्तिगत रूप से किसान लोग सामान्यतया फलों के खेती के लिए गहरे नलकूप का प्रयोग करते हैं। किन्तु इस तरह की सिंचाई से उनके फल उत्पादन में प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है। क्योंकि यदि जल-स्तर पेड़ों की जड़ों से बहुत अधिक नीचे चला जाता है तो। फलों के पेड़ धीरे-धीरे मुरझा कर सूख जायेंगे। इस तरह की परिस्थिति में कम गहरे नलकूप (Shallow tubewell) का प्रयोग ही ज्यादा उचित है किन्तु ऐसे नलकूपों से सिंचाई के लिए पर्याप्त जल आपूर्ति नहीं हो सकती है। किसानों को तालाब, बाँध, लिफ्ट (lift) एवं सिफ्ट (Shift) सिंचाई की सुविधाओं की आवश्यकता है और इसके लिए उन्हें सरकारी सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है। जब भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा एवं चिकित्सा जैसी न्यूनतम आवश्यकताएँ सुनिश्चित होना लोगों का मौलिक अधिकार है। तब सिंचाई के जल की उचित आपूर्ति

भी मौलिक अधिकार है क्योंकि पानी बिना खाद्यान्न का उत्पादन सम्भव नहीं है और खाद्य (भोजन) न्यूनतम आवश्यकताओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। एक लड्डू ठीक जिस तरह अपनी धूरी पर खड़ा होकर रन-रन करके घूमता है तथा धूरी नहीं रहने पर जैसे लड्डू नहीं घूम सकेगा उसी तरह कृषि रूपी लड्डू की धूरी सिंचाई का जल है, सिंचाई का जल नहीं रहने से कृषि की गति या अग्रगति रूक जाने को बाध्य है।

(Irrigation water is like the apex point of a spinning top without which the top cannot spin.)

उत्पादन-सहकारिता एवं उपभोक्ता सहकारिता - कृषि एवं कृषक सहकारिता के अलावा भी प्रउत अन्य तरह की सहकारी समितियों के गठन का समर्थन करता है जिसमें उत्पादन सहकारिता एवं उपभोक्ता सहकारिता शामिल है। उत्पादन सहकारिता के अन्तर्गत कृषि आधारित सहकारी उद्योग, कृषि

सहायक सहकारी उद्योग एवं गैर कृषि उत्पाद आधारित सहकारी उद्योग शामिल हैं। इस तरह की समस्त सहकारी संस्थाओं का लाभांश उसमें कार्यरत श्रमिकों एवं उसके सदस्यों के बीच उनकी व्यक्तिगत पूँजी निवेश एवं उत्पादन एवं प्रबन्धन में प्रदान की गई उनकी सेवा के अनुरूप वितरित होना चाहिए। इ

इसी तरह उपभोक्ता सहकारी समिति समान रूचि रखने वाले उन लोगों द्वारा गठित होनी चाहिए, जो लोग अपने पूँजी निवेश एवं अपने व्यष्टिगत श्रम के अनुसार लाभांश का बँटवारा करेंगे। जो लोग इस तरह की सहकारी संस्था के प्रबन्धन कार्या में लगे हुए हैं, वे भी अपने योगदान के आधार पर वेतन प्राप्त करेंगे। उपभोक्ता सहकारी संस्था उचित मूल्य पर समिति के सदस्यों को उपभोक्ता वस्तुएँ प्रदान करेगी।

उपभोक्ता वस्तुएँ तीन श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं।

१) अत्यावश्यक उपभोक्ता वस्तुएँ (Essential Commodities) जैसे दाल, चावल, नमक, कपड़ा, आदि। 1915

२) अर्ध आवश्यकीय उपभोक्ता वस्तुएँ (Demi Essential commodities) जैसे -तेल, साबुन, जूता आदि ।.

३) गैर आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएँ या विलासिता की वस्तुएँ जैसे स्नो, पाउडर आदि।

यदि विलासिता की वस्तुओं को गोदाम में जमा करके जमाखोर व्यवसायी लोग बाजार में कृत्रिम अभाव उत्पन्न करें तो उससे साधारण मनुष्यों को कोई परेशानी नहीं होगी। किन्तु यदि जमाखोर व्यवसायी अत्यावश्यक उपभोक्ता वस्तुएँ यथा चावल, दाल, तेल, नमक आदि गोदाम में छुपा कर कृत्रिम अभाव उत्पन्न करें तो साधारण लोगों को भीषण परेशानियों का सामना करना पड़ेगा। जिससे इस तरह की कोई परिस्थिति उत्पन्न न हो सके, इसलिए उपभोक्ता सहकारी संस्थाएँ उत्पादक

सहकारी समितियों एवं कृषि सहकारी समितियों से सीधे अत्यावश्यक वस्तुओं को खरीदेंगी। पूँजीपतियों का यह स्वभाव है कि वे अत्यावश्यक वस्तुओं की जमाखोरी द्वारा बाजार में कृत्रिम अभाव करके ज्यादा से ज्यादा मुनाफाखोरी करते हैं। परिणामस्वरूप उपभोक्ता लोग अत्यावश्यक वस्तुओं के लिए अतिरिक्त बढ़ी हुई कीमत अदा करते हैं। तथा कभी-कभी तो ऐसी वस्तुएँ बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। दलाल एवं मुन्नाफाखोर लोग यह जानते हुए कि लोग निश्चित ही इन वस्तुओं को कर्ज लेकर भी खरीदेंगे इसीलिए इन अत्यावश्यक वस्तुओं का अभाव बाजार में सृष्ट कर देते हैं। फिर भी कुछ लोग विलासिता की वस्तुएँ खरीदने के लिए कर्ज लेते हैं। यदि अत्यावश्यक एवं आवश्यक वस्तुओं का विपणन उपभोक्ता सहकारी संस्थाओं के माध्यम से हो तो बिचौलिए दलाल एवं मुनाफाखोर व्यवसायी निर्मूल हो जायेंगे।

उपभोक्ता सहकारी संस्थाओं को कृषि सहकारी समितियों एवं उत्पादन सहकारी समितियों से. ही उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति होनी चाहिए। वे वस्तुएँ जो कृषि सहकारी संस्थान से सीधे नहीं प्राप्त होती हैं, उन्हें उत्पादक सहकारी संस्थान द्वारा उत्पादित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त गैर कृषि जात वस्तुएँ अनिवार्य रूप से उत्पादक सहकारी समितियों द्वारा उत्पादित होनी चाहिए। उदाहरणार्थ जो कृषि या उत्पादक सहकारी समितियाँ सूती या रेशम धागे उत्पादित करते हैं, उन्हें अपने धागों को बुनकर सहकारी समितियों को ही बेचना चाहिए, जिससे ये समितियाँ अपने पावर लूमों पर इन धागों से कपड़ा उत्पादित कर सकें। जहाँ पर सूक्ष्म जटिल डिजाइन का काम हाथ से करने की जरूरत पड़े वहाँ पर हथकरघा का व्यवहार किया जा सकता है। किन्तु, बुनकर सहकारी समितियों को अत्याधुनिक पावर लूमों को ही व्यापक रूप से लगाना चाहिए।

अनुक्रमणिका

अत्यावश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की संख्या देश, काल एवं पात्र के परिवर्तन के साथ निरंतर एवं उत्तरोत्तर संशोधित तथा क्रम-वर्धित होनी चाहिए। ये संशोधन किसी विशेष सहकारी समिति के निर्देशक मण्डल द्वारा न होकर सरकार द्वारा होने चाहिए। जिन्हें आज अर्ध आवश्यक वस्तुएँ माना जाता है, आने वाले दिनों में उन्हें अत्यावश्यक वस्तुओं के रूप में जाना जा सकता है। वे अर्ध आवश्यक वस्तुएँ जो कृत्रिम अभाव सृष्टि से प्रभावित होकर आम जनता की तकलीफ का कारण हो सकती हैं, उन्हें भी उत्पादक सहकारी समितियों द्वारा उत्पादित होना चाहिए। विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन निजी क्षेत्र के हाथों छोड़ा जा सकता है। गैर-कृषिजात अत्यावश्यक वस्तुएँ या सेवाएँ जो उत्पादक सहकारी समिति के परिधि (क्षेत्र) में आती हैं, तथा इनमें से जिसमें बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, उन सभी को सरकार द्वारा संचालित किया जायेगा। रेलवे व्यवस्था इसका एक सुंदर उदाहरण है।

अतः स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए कृषि सहकारी समितियों, अत्यावश्यक वस्तु उत्पादक सहकारी समितियों एवं अत्यावश्यक वस्तु उपभोक्ता सहकारी समितियों का विस्तार व्यापक रूप से अवश्य होना चाहिए।

सहकारिता-प्रबन्धन प्रत्येक सहकारी संस्था के सदस्यों को अपने-अपने सहकारी संस्थान के लिए एक निर्देशक मण्डल का गठन करना चाहिए। निर्देशक मण्डल को सदस्यों के बीच वितरित होने वाले लाभ की मात्रा का निर्णय करना चाहिए। अर्थात लाभांश को प्रत्येक अंश धारक (Share holder) को दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुल लाभको लाभांशों के रूप में बाँट दिया जाना चाहिए तथा इसमें से कुछ राशि को ट्रेक्टर, खाद आदि की ख़रीद या निवेश के लिए रखा जाना चाहिए, कुछ राशि को अधिकृत पूँजी को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त होना चाहिए तथा कुछ राशि सुरक्षित कोष में जमा होनी चाहिए। सुरक्षित कोष का उपयोग उत्पादन कम होनेवाले वर्ष में लाभांश

के मूल्य को बढ़ाने के लिए करना चाहिए। यदि इस पद्धति का पालन किया जाता है तो अधिकृत पूँजी प्रभावित नहीं होगी।

निर्देशक मण्डल सहकारी समिति के सदस्यों के बीच में से निर्वाचित होने चाहिए, तथा उनकी पद अवैतनिक नहीं होनी चाहिए। इस सुनिश्चतता पर खूब ध्यान दिया जाना चाहिए कि कोई भी अनैतिक व्यक्ति निर्देशक मण्डल में निर्वाचित न हो। सभी निर्देशकों को नीतिवान होना ही चाहिए।

कालाबाजारी को रोकने के लिए सरकार द्वारा कठोर कदम उठाने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ कपड़ा उद्योग को कालाबाजारियों के हाथों से बचाने के लिए सरकार को एक ऐसा कानून पारित करना चाहिए जो कपड़ों का उत्पादन करने वाली उत्पादक सहकारी समिति के ट्रेड-मार्क के बिना किसी भी कपड़ों की बिक्री को रोकता हो। इस तरह, यदि कालाबाजारियों द्वारा ट्रेड मार्क के बिना कोई भी कपड़ा बेचने की कोशिश होती

है, तो उन्हें आसानी से पकड़ा जा सकता है। इस सहज किन्तु प्रभावशाली निदान को बहुत से प्रबुद्ध व्यक्ति जानते हैं, किन्तु तब भी वे कुछ भी नहीं करते हैं। उनके कुछ नहीं करने का कारण यह है कि वे लोग पूँजीपतियों के दलाल हैं तथा उन्हें अपने चुनाव प्रचार के लिए इन जमाखोरों एवं काला-बाजारियों से धन की जरूरत पड़ती है। चुनावी व्यवस्था में इस तरह का भ्रष्टाचार गणतंत्र का एक अंग बन जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि गणतांत्रिक शासन व्यवस्था सर्वोत्तम शासन व्यवस्था नहीं है। गणतांत्रिक व्यवस्था में जमाखोरी, मुनाफाखोरी एवं कालाबाजारी नियंत्रित नहीं हो सकती है, क्योंकि वे लोग जो इसे नियंत्रित करने की कोशिश करते हैं, उन्हें सत्ता से बाहर कर दिया जायेगा। क्षत्रिय युग के चरम स्तर में तस्करी एवं जमाखोरी नियंत्रित थी, किन्तु जैसे ही विप्रों एवं वैश्यों के प्रभाव में बढ़ोत्तरी होती है, वैसे ही इन भ्रष्ट व्यवसायों पर नियंत्रण ढीला हो जाता है।

वृहदाकार, उत्पादक सहकारी संस्थान को विभिन्न वस्तुओं की आपूर्ति हेतु बहुत सी छोटे-छोटे आनुषंगी सहकारी समितियाँ गठित करनी चाहिए। उदाहरणार्थ एक कार फैक्टरी को ही लेते हैं। एक मोटर कार के लिए बहुत से भिन्न पुर्जे छोटे-छोटे सहकारी संस्थानों में क्षेत्रिय स्तर पर निर्मित हो सकते हैं। इन छोटे-छोटे आनुषंगी सहकारी समितियों के सदस्य गण अपने सभी पारिवारिक सदस्यों को शामिल करके अपने घरों में भी अपना कार्य कर सकते हैं। वृहदाकार उत्पादक सहकारी समितियों का मुख्य कार्य कार के विभिन्न पुरजों को जोड़कर कार निर्मित करना रह जायेगा। इससे दो लाभ होंगे। एक वृहदाकार उत्पादक सहकारी समितियों को बहुत से श्रमिकों की आवश्यकता नहीं होगी इसलिए श्रमिक असंतोष कम हो जायेगा। तथा दूसरा - श्रम लागत कम हो जायेगा और इस तरह से वस्तुओं का लागत मूल्य भी कम हो जायेगा।

सहकारी व्यवस्था में यायावर (चलायमान) जनसंख्या एवं अप्रवासी जनसंख्या की समस्या नहीं उत्पन्न होगी, क्योंकि सहकारी संस्थानों के सदस्य क्षेत्रिय लोगों को ही बनाया जायेगा। चलायमान यायावर जनसंख्या को सहकारी संस्थानों का सदस्य होने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए अर्थात अप्रवासी लोगों को सहकारी संस्थानों में कोई स्थान नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे पूरी अर्थ व्यवस्था को ही अस्त-व्यस्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए हावड़ा ज़िला स्थानीय लोगों को १७ महीनों तक खिलाने के लिए एक ऋतु में पर्याप्त फसलें उत्पन्न करता है, किन्तु अप्रवासी श्रमिकों के कारण पैदावार (उपज) ६-७ माह के अन्दर उपभुक्त (खत्म) हो जाती है। अप्रवासी श्रमिकों का बहिष्करण प्रतिकूल सामाजिक प्रभाव की सम्भावना से सहकारी समिति के सामाजिक जीवन की भी रक्षा करेगा।

सहकारी व्यवस्था में बेरोजगारी की समस्या का निदान हो जायेगा। क्योंकि जैसे ही उत्पादन में वृद्धि होती है वैसे ही

सुविधाओं एवं संसाधनों की भी वृद्धि होती है। शिक्षित व्यक्ति कुशल श्रमिक के रूप में नियोजित हो सकते हैं। कृषि सहकारिता में नाना प्रकार के कार्यों के लिए ट्रेक्टर चालकों, श्रमिकों, कृषकों आदि की आवश्यकता होती है, तथा सहकारी समिति के सदस्य गण स्वाभाविक रूप से यह कार्य कर लेंगे। ग्रामीण लोगों को रोजगार के लिए शहर की ओर जाने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। सहकारी व्यवस्था में सेवा निवृत्ति की कोई अनिवार्य तिथि नहीं होनी चाहिए। लोगों को अपने स्वास्थ्य की अवस्था को ध्यान में रखकर जब तक चाहें तब तक काम करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

वे सामाजिक-आर्थिक इकाईयाँ जिनके पास कच्चे माल की पर्याप्त आपूर्ति नहीं है, उन्हें कृत्रिम या संश्लेषित कच्चे माल का निर्माण करना होगा। मान लीजिए किसी सामाजिक-आर्थिक इकाई या क्षेत्र में अपने मवेशियों को खिलाने के लिए चारे की पर्याप्त आपूर्ति नहीं रहती है। क्या ये इकाइयाँ या प्रक्षेत्र दूसरे

इकाइयों एवं प्रक्षेत्रों से चारा आयात करेंगी। नहीं, इन्हें आयात नहीं करना होगा बल्कि इन्हें इसके बदले में कृत्रिम चारा निर्मित करना चाहिए। इसी तरह मान लो एक धोती का निर्माण करने के लिए यथेष्ठ परिमाण में रुई की आवश्यकता पड़ती है। अधिक मात्रा में रुई दूर से लाने में भी तो अत्यधिक खर्च की आवश्यकता होती है, तथा यदि यह सहज रूप से उपलब्ध नहीं होती है तो वहाँ के लोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु कृत्रिम वस्त्रों को अपने क्षेत्र में ही तैयार कर लेंगे।

जैसे-जैसे विज्ञान अग्रगति प्राप्त करेगा, वैसे ही सहकारी समितियाँ भी उन्नत होती जायेंगी तथा कृत्रिम कच्चे माल से बहुत प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करेंगी। पूँजीवादी व्यवस्था में तैयार माल के निर्माण के उद्देश्य से कच्चे माल को दूसरे देशों या क्षेत्रों से आयातित किया जाता है। सहकारी समितियाँ इस व्यवस्था का अनुकरण नहीं करेंगी। ये शोध एवं अनुसंधान के

जरिये अपने स्वयं के कच्चे माल को उन्नत करेंगे, जिससे वे दूसरे देश के कच्चे माल पर निर्भर नहीं हो।

सर्वाङ्गीण विकाश— सहकारी व्यवस्था के माध्यम से विज्ञान में एक क्रान्ति प्रारम्भ करके मानव समाज बहुत तेज गति से आगे बढ़ेगा। इस विश्व का कोई भी हिस्सा बिना प्रयोग किये नहीं रह जायेगा।

इस दुनिया के प्रत्येक हिस्से को सही ढंग से उपयोग किया जायेगा। जहाँ पर पशुखाद्य उत्पन्न करना सहज है या जहाँ पर चारे की बहुलता है, वहाँ पर चारागाह, डेयरी फार्म (गौशालाएँ) एवं दूध उत्पादन उन्नत हो सकता है। जहाँ चारा की उपलब्धता नहीं है, वहाँ पर संश्लेषित दूध उत्पन्न होगा। इस तरह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति एवं प्रगति संपोषित होगी।

वह दिन बहुत नज़दीक है जब विज्ञान आध्यात्मिक रूप से प्रेरित प्रबुद्ध लोगों से निर्देशित होगा। जब यह दिन आयेगा तब मनुष्यों की बौद्धिक क्षमता में अत्यधिक वृद्धि के कारण विज्ञान दिन दूना रात चौगुना गति से आगे बढ़ेगा। सहकारी समितियाँ इस मानसिक एवं आध्यात्मिक अग्रगति को अत्यधिक सहायता प्रदान करेगी।

मानव समाज में एकता बढ़ाने के लिए हम लोगों को समस्त विघटनकारी तत्त्वों को हतोत्साहित एवं समस्त सामूहिक तत्त्वों को प्रोत्साहित करना चाहिए। भारत में बहुत से सामूहिक तत्त्व हैं, जो एकता निर्मित करने में मदद करते हैं। तथा बहुत से विघटनकारी तत्त्व हैं जो अलगाव उत्पन्न करते हैं। राष्ट्रीय एकता का सबसे मौलिक बिन्दु यह है कि, भारतीय मानसिकता परमात्मा के ऊपर पूर्णतयः समर्पित है अर्थात् भारतीय मानसिकता अन्तरात्मा से ही ईश्वरवादी हैं। यहाँ के लोगों की मानसिकता परमात्मा के दैवीय विधान को एक मौलिक

मानवीय तत्त्व के रूप में स्वीकार करती है। यहाँ तक की भारतीय कम्युनिष्ट लोग भी अपने हृदय से ईश्वरवादी है केवल राजनैतिक मञ्चों पर ही वे एक नास्तिक की तरह भाषण देते हैं। यद्यपि यहाँ के लोगों का आध्यात्मिक स्तर ऊँचा है, परंतु नैतिक स्तर पश्चिमी देशों के निवासियों की तुलना में निम्न है। इसलिए यहाँ के लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता है। नीति वादी लोग निर्मित होने चाहिए। इसके लिए देश के प्रत्येक हिस्से में एक सार्वभौमिक आदर्श का प्रचार होना चाहिए।

भारत में एकता का दूसरा सूत्र संस्कृत भाषा है। भारत के लोग संस्कृत भाषा जानें या न जानें किन्तु यहाँ के सभी लोगों के मन में इस भाषा के प्रति एक गहरा आदर एवं प्रेम है जरूर। यदि हिन्दी के बदले भारत की राष्ट्रीय भाषा संस्कृत को बना दिया गया होता तो राष्ट्रीय भाषा से सम्बन्धित वर्तमान सभी समस्याओं को टाला जा सकता था। एक दूसरा उदाहरण पंचांग (कलेण्डर) व्यवस्था को लेकर हैं। उत्तरी भारत एवं दक्षिणी-

भारत के कुछ हिस्सों में चन्द्रमा की गति पर निर्भर होकर सम्वत् नाम से चन्द्र गणना के अनुसार वर्ष-पञ्जीयन कलेण्डर का अनुकरण किया जाता है। यदि इस चन्द्र गणना की पद्धति का अनुसरण किया जाय तो प्रतिवर्ष के अषाढ़ माह की ७ तारीख की गणना इसी दिन की प्रातः काल तक होगी इसी दिन के दोपहर के समय की गणना आठ (८) तारीख के रूप में करनी होगी तथा रात्रि की गणना नौ (९) तारीख के रूप मे करनी होगी। इस तरह की वर्ष पञ्जीयन के साथ नाना-प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। बंगाल, असम, मणिपुर, पंजाब, जम्मू एवं कश्मीर, उड़ीसा तथा दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों में सूर्य की गति पर निर्भर होकर शकाब्द नाम की सौर वर्ष-पञ्जीयन का प्रयोग किया जाता है। इसी पद्धति के अनुसार बंगाल में पहला वैशाख अप्रैल के चौदहवें दिन पर होता है। और पंजाब में पहला वैशाख अप्रैल के तेरहवें दिन होता है। क्या हम लोगों को वर्ष पञ्जीयन (कलेण्डर) पद्धति में इस भिन्नता को प्रोत्साहित करना

चाहिए। नहीं, हम लोगों को शकाब्द पद्धति या अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष पञ्जीयन पद्धति का अनुकरण करना चाहिए।

अतः सम्पूर्ण मानव जाति के एकीकरण हेतु एकताकारी तत्त्वों को प्रोत्साहित करना चाहिए तथा विघटनकारी तत्त्वों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। मानवता के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति मधुरतम एकताकारी तत्त्व हैं। खुशी शान्ति एवं परमानन्द मानवीय मन का स्वभाव है। भौतिक क्षेत्र में, इस मानवीय माधुर्य की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति सहकारी व्यवस्था है।

कृषि उत्पादन की पद्धतियाँ

जब सामूहिक रूप से किसी चीज का उत्पादन होता है तो इसे गणोत्पादन या सामूहिक उत्पादन कहते हैं। कृषक समाज में ही नहीं और समाज में भी कुल मिलाकर कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें सामूहिक रूप से उत्पादित किया जाता है। उदाहरणार्थ गन्ना कृषक अपने व्यष्टिगत खेतों में उपजे गन्ने से गुड़ सामूहिक रूप से तैयार करते हैं। वे सामूहिक रूप से एक बड़ा कड़ाहा खरीदते हैं, जिसमें वह गुड़ को तैयार करने के लिए गन्ने के रस को खौलाते हैं। इस तरह के सामूहिक उत्पादन को ही गणोत्पादन कहा जाता है।

तथा कथित कम्यून पद्धति भी एक तरह का सामूहिक उत्पादन है जिसमें लोग कुछ चीजों का सामूहिक रूप से उत्पादन करते हैं। सहकारी औद्योगिक उत्पादन एवं कृषि उत्पादन भी इसी कोटि से सम्बंधित है। निजी संस्थान द्वारा कृषि उत्पादन सामूहिक उत्पादन नहीं है और बटाईदारी व्यवस्था द्वारा कृषि उत्पादन भी सामूहिक उत्पादन नहीं है।

अनुक्रमणिका

उत्पादन की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ यथा सहकारी पद्धति, व्यक्तिगत या निजी खेती, बटाईदारी पद्धति एवं कम्यून पद्धति है। इसमें से अंतिम पद्धति सबसे खराब है। बटाईदार पद्धति कम्यून पद्धति से थोड़ा बेहतर है और इससे भी अच्छी पद्धति व्यक्तिगत या निजी संस्थानों द्वारा कृषि औद्योगिक पद्धति है। उत्पादन की सहकारी पद्धति सबसे उत्तम पद्धति है।

कम्यून पद्धति में व्यक्तिगत मालिकाना (स्वामित्व) अस्वीकृत होता है। जबकि कुछ देश व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिकार सिद्धान्त में तो स्वीकार करते हैं, पर व्यवहार में वे स्वामित्व के व्यक्तिगत अधिकारों को एकदम स्वीकार नहीं करते हैं। इस प्रकार श्रमिकों को कृषि एवं उद्योग दोनों में ही अपनी कुशलता का पूर्णरूपेण उपयोग करने के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन का कोई भी सुयोग नहीं प्राप्त होता है। अपनी कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए उनको कोई अवसर प्राप्त नहीं होता है।

अनुक्रमणिका

कोल्हू के बैल के तरह ही वे अपनी आँखों में पट्टी बाँधे हुए कोल्हू के चारों ओर घूमते रहते हैं। कोल्हू के बैल एक दिन में सौ मील चलने के बावजूद भी आगे नहीं बढ़ पाते हैं। इसी तरह कम्यून पद्धति में श्रमिक लोग बौद्धिक जड़ता की चहारदिवारी में कैद रहते हैं। लोग सूक्ष्म विचारों को विकशित करने का कोई मौका नहीं पाते परिणामस्वरुप उनका जीवन उच्चतर स्तरों में कभी उन्नत नहीं हो सकता है। कम्यून पद्धति में रहने वाले लोग अपने जीवन की अन्तिम साँसों तक जड़ता के भंवर में फँसे जानवरों के सदृश हैं। वे अपने कार्य के साथ कोई मनोवैज्ञानिक या मानवीय सम्बन्ध नहीं रखते हैं। सम्पूर्ण कम्यून पद्धति ही मानवीय मनोविज्ञान के विरुद्ध चलती है। परिणाम स्वरूप उत्पादन में कभी बढ़ोत्तरी नहीं होती है।

जो सभी देश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम्यून पद्धति अपनाए हुए हैं, उन सभी देशों में कृषि उत्पादन बिल्कुल कम होता है। यह एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है। निजी स्वामित्व के

आधार पर कृषि उत्पादन करने वाले पूँजीवादी देशों से ही कम्यूनिष्ट देशों को खाद्यान्नों की आपूर्ति की जा रही है। इस प्रकार कम्यूनिष्ट देश निजी उद्यमों वाले देशों से ही अत्यावश्यक चीजों को खरीदने के लिए बाध्य हैं। इन देशों की गरीब जनता भुखमरी एवं अभाव के दुःखद स्थिति में रहती है, तथा उन लोगों का जीवन दुःस्वप्न जैसा हो गया है। पूँजीवादी व्यवस्था के खराब होने के बावजूद भी कम्यून व्यवस्था ने उसके पास आत्म समर्पण कर दिया है। यह कैसी दयनीय अवस्था है। कम्युनिस्ट देश जब तक कम्यून व्यवस्था को नहीं त्यागेंगे तब तक वे अपनी खाद्य समस्या का समाधान करने में सक्षम नहीं होंगे, तथा अपना भिक्षापात्र फैलाये हुए एक देश से दूसरे देश निरन्तर घूमते रहेंगे।

बटाईदारी व्यवस्था कम्यून व्यवस्था से उत्तम है क्योंकि इसमें लोग ज्यादा प्रोत्साहन एवं स्वतन्त्रता प्राप्त करते हैं। इस व्यवस्था में "जितना ज़्यादा उपजाऊगाँ उतना अधिक

कमाऊँगा" की मानसिकता हावी रहती है। किन्तु यह व्यवस्था भी कुछ कमियों की वजह से नुकसानदेह है। मान लो एक बटाईदार तीन भिन्न-भिन्न भू-स्वामियों से सात-सात एकड़ भूमि प्राप्त करके कुल इक्कीस एकड़ भूमि की व्यवस्था करता है। वह श्रमिकों के अभाव या वित्तीय परेशानियों एवं आलस्य के कारण सम्पूर्ण भूमि में ठीक से खेती नहीं भी कर सकता है। वह सोच सकता है कि थोड़े खेती से ही साल भर के लिए पर्याप्त अनाज प्राप्त हो जायेगा। इसीलिए वह शेष भूमि में खेती नहीं करना चाहता है। परिणामस्वरुप जिस भू-स्वामी की भूमि में बटाईदार ने या तो खेती की ही नहीं या ठीक से नहीं की, वह अपने हिस्से से वंचित हो जायेगा।

बटाईदारी व्यवस्था का दूसरा नकारात्मक पहलू यह है कि बटाईदार लोग प्रायः किसी निजी भू-स्वामी की तुलना में ज्यादा भूमि अपने पास रखते हैं। परिणामस्वरूप एक बटाईदार का आर्थिक स्तर एक भू-स्वामी के आर्थिक स्तर से अच्छा

होता है। इस तरह के बटाईदार यह दावा नहीं कर सकते हैं कि वह अपने खुद के शारीरिक श्रम से खेतों में काम करते हैं। इस तरह की व्यवस्था घूम फिर कर कृषिक्षेत्र में पूँजीवाद को ही बढ़ावा देती है।

इस व्यवस्था का तीसरा दोष यह है कि बटाईदार लोग वास्तव में खेतों में काम करने के लिए मजदूरी में कृषकों को लगाकर स्वयं अपना जीवन आलस्य में व्यतीत करते हैं।

इसमें चौथा दोष यह है कि भू-स्वामियों के पास भूमि का बहुत छोटा टुकड़ा होता है जिसमें वे आधुनिक तौर-तरीकों से मन-मुताबिक खेती नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उनकी क्षमताएँ सीमित होती हैं। केवल एक बटाईदार ही इस तरह के छोटे खेत में खेती कर सकता है। इस प्रकार बटाईदारी व्यवस्था अन्ततोगत्वा खेती की आदिम विधियों में परिणत होती है।

व्यक्तिगत खेती एवं बटाईदारी व्यवस्था, दोनों ही में एक बड़ी कमी यह है की इन दोनों व्यवस्थाओं में यदि कृषक लोगों के पास पर्याप्त पूँजी नहीं है पर खेती के लिए विस्तृत भू-भाग है, तो वे उत्पादन हेतु आधुनिक खेती के तौर-तरीके नहीं अपना सकते हैं। ट्रैक्टर एवं पावर ट्रेलर आदि का प्रयोग उनके बलबूते के बाहर है। जुताई के सदियों पुराने तौर-तरीकों के प्रयोग से ये कृषक लोग भूमि का केवल ऊपरी भाग ही जोत सकते हैं और इससे अपने खेत की उत्पादकता बढ़ाने में कोई मदद नहीं मिलेगी। बढ़िया खाद, उन्नत बीज, उचित सिंचाई आदि उनके द्वारा प्रयुक्त नहीं हो सकते हैं।

किसानों को व्यक्तिगत कृषि उत्पादन व्यवस्था में बटाईदारी व्यवस्था की तुलना में अधिक प्रोत्साहन मिलता है, किन्तु निजी कृषि उद्यम व्यवस्था में भी कमियाँ हैं जो खेती के आधुनिक एवं प्रगतिशील पद्धति को अपनाने से रोकती है। इस

पद्धति में भी कृषि उत्पादन बढ़ाने की बहुत अधिक सम्भावना नहीं है, क्योंकि बञ्जर या अनुपजाऊ भूमि अनुपयुक्त होकर बेकार पड़ी रहती हैं। इस पद्धति में किसान लोग अपने वित्तीय अभाव के कारण प्रायः ट्रेक्टर, पावर-ट्रेलर, उन्नतशील बीज, सिंचाई की उचित व्यवस्था आदि के लाभों का इस्तेमाल करने में सक्षम नहीं होते हैं।

यद्यपि यह पद्धति कम्यून व्यवस्था एवं बटाईदारी खेती दोनों की ही तुलना में श्रेष्ठ है किन्तु इस व्यवस्था से राज्य एवं समाज दोनों ही अन्ततोगत्वा लाभान्वित नहीं हो सकते हैं। यदि किसी विशेष किसान के स्वामित्व में प्रचुर मात्रा में भूमि है। (पूँजीवादी देशों में किसान लोग भूमि की असीमित मात्रा के स्वामी हो सकते हैं।) तो उनके लिए सिंचाई की उचित व्यवस्था एवं उन्नतशील बीजों आदि का प्रयोग सम्भव हो सकता है, मगर इस हेतु सरकार को कोई भूमि हदबन्दी (Land ceiling) के प्रवर्तन को टालना होगा। फिर भी, यह पद्धति स्वीकार्य करने

योग्य नहीं हैं क्योंकि यह अत्यधिक संग्रह अर्थात् पूँजीवाद को बढ़ावा देगी।

आधुनिक दुनिया में कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन की सबसे अच्छी पद्धति सहकारी व्यवस्था है। सहकारी व्यवस्था में सहकारी समिति के सदस्यगण अपने सामूहिक शक्ति के कारण अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए सरकार को दबाव देकर विभिन्न सुविधाएँ एवं वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकते हैं। वे लोग सिंचाई की अच्छी सुविधाएँ एवं उन्नतशील बीजों के लिए सरकार से जोरदार तरीके से माँग कर सकते हैं, और इस तरह वे बञ्जर या अनुपजाऊ भूमि को भी उपजाऊ एवं कृषि योग्य बना सकते हैं। जो भूमि थोड़ा कम उपजाऊ है, वह भी उचित देखभाल से उपजाऊ कृषि भूमि में रूपान्तरित हो सकती हैं। इससे कृषि के कुल उत्पादन वृद्धि में सहायता प्राप्त होगी। यह किसी देश को खाद्य उत्पादन एवं अन्य वाणिज्यिक फसलों में

आत्मनिर्भर बनने में भी सहायता करेगी तथा देश के खाद्यापूर्ति की कमी को दूर करेगी।

इसके अतिरिक्त, समान उर्वरता एवं समान स्तर की समतल भूमि के टुकड़ों की सभी मेड़ों को हटाकर इन्हें एक बहुत बड़े भूखण्ड में बदला जा सकता है। फिर भी, यदि भूमि थोड़ा ऊँची-नीची एवं भिन्न-भिन्न उर्वरा शक्ति वाली हो, तो भूमि के मेड़ों को यथानुरूप बनाए रखना होगा अन्यथा भूमि सही ढंग से सिंचित नहीं हो सकती। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि बटाईदारी व्यवस्था में कम्यून पद्धति की तुलना से ज्यादा उत्पादन प्राप्त करता है। किन्तु ऐसी व्यवस्था में कृषि उत्पादन की प्रगतिशील विधियों को अपनाना सम्भव नहीं है। अन्ततः इसमें भी उत्पादन का स्तर कम्यून पद्धति के उत्पादन के स्तर की तुलना में ही नीचे आ जायेगा।

मनुष्य जिन समस्त आसक्तियों से ग्रसित रहते हैं उनमें से भूमि के प्रति उनकी आसक्ति सबसे ज्यादा प्रगाढ़ है। दया या संवेदना के कारण कोई किसान बिना आना-कानी किये अपने उत्पादन का काफी परिमाण दान कर सकते हैं, किन्तु यदि उनसे उनकी भूमि का कुछ वर्ग मीटर भू-भाग भी दान के रूप में देने को कहा जाय तो वह भीषण मानसिक वेदना का अनुभव करेंगे। यदि कोई किसान किसी व्यक्ति को भूमिदान में देते हैं तो वह अनुभव करते हैं कि मनोव्यथा से उसकी पसलियों में कसक हो रही है। तीन कारणों से कोई किसान अपनी भूमि दान करते हैं अपनी भूमि का अधिकांश भाग बचाने के लिए आध्यात्मिक प्रेरणा से एवं किसी श्रेष्ठ लोकोपकार के लिए।

(१५ मई १९८८ कोलिकाता)

बटाईदारों की अपनी ज़मीन नहीं होती है। वे दूसरों की जमीन पर खेती करते हैं तथा उत्पादित फसल का एक निश्चित भाग प्राप्त करते हैं। भू-स्वामियों द्वारा भूमि बटाईदारों को इसलिए

दी जाती है कि भू-स्वामियों के लिए पर्याप्त आमदनी प्राप्त करने में यह बहुत ही छोटी या क्षुद्र है। एक बटाईदार भिन्न-भिन्न भूस्वामियों से कई सौ एकड़ भूमि की व्यवस्था कर सकता है। यह पद्धति ७०० वर्षों पूर्व पहली बार शुरू की गई थी। बंगाल में इसे भागचासी या वर्गादर प्रथा कहते हैं।

सहकारी व्यवस्था आज की बटाईदारी प्रथा से बहुत अच्छी है। सहकारी व्यवस्था कृषि योग्य भूमि को ठीक से काम में लगाकर आधुनिक तकनीकी के प्रयोग से फसलोत्पादन बढ़ाकर बटाईदारी प्रथा के मूल दोषों को दूर कर सकती है। सहकारी समितियों के सदस्यगण मिल-जुल कर एक निदेशक मण्डली का निर्वाचन कर लेंगे जो उत्पादन के सभी क्षेत्रों पर देख-रेख करेगी जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि हो जायेगी। कृषि सहकारी समितियों का मूल लक्ष्य "अधिकतर उत्पादन अधिकतर लाभांश, अधिकतर बोनस" होना चाहिए। श्रमिक लोग वेतन, बोनस एवं लाभांश पायेंगे। श्रमिकों की

मजदूरी उसके श्रम की मात्रा के ऊपर निर्धारित होगी तथा बोनस एवं लाभांश सहकारी समिति के वास्तविक शुद्ध लाभ की मात्रा पर निर्धारित होगा।

बटाईदारी व्यवस्था के अतिरिक्त भी कम्यून एवं सहकारी व्यवस्था है। कम्यून व्यवस्था एवं सहकारी व्यवस्था, दोनों ही भिन्न-ध्रुवीय व्यवस्थाएँ हैं। कम्यून व्यवस्था में श्रमिक या कर्मचारी के लिए कोई प्रोत्साहन या प्रेरणा बिल्कुल ही नहीं रहती और यह व्यवस्था बटाईदारी व्यवस्था से भी खराब है। इस प्रेरणा के अभाव के कारण ही सोवियत संघ या रूस में सरकार द्वारा परिचालित कम्यून व्यवस्था असफल हो चुकी है। आज भी ये देश, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया जैसे पूँजीवादी देशों से खाद्यानों की आपूर्ति करते हैं। किन्तु सहकारी व्यवस्था में प्रेरणा एवं कार्य के प्रति एकात्म बोध होता है। अपने स्वयं के प्रयास से सहकारी समितियाँ उत्पादन वृद्धि के लिए सिफ्ट (shift) या लिफ्ट (lift) सिंचाई की सुविधाएँ, जल वन्ध,

बाँध का निर्माण तथा आधुनिक कृषि यन्त्रों को खरीदने हेतु सरकार या बैंकों से प्रचुर ऋण ले सकती हैं। कम्यून व्यवस्था में ऐसा कभी नहीं होता है। इस तरह, सहकारी व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है जबकि कम्यून व्यवस्था निकृष्ठ व्यवस्था है। मानव जाति के लिए कम्यून व्यवस्था हानिकारक है।

आर्थिक योजना को प्रखण्ड के आधार पर सम्पन्न होना चाहिए। प्रखण्डों की वर्तमान चौहद्दी को क्षेत्र की समरूपता एवं स्थलाकृति (tabalogy) जैसे अन्य घटकों तथा भूमि की उर्वरता के अनुसार पुनर्समायोजित एवं पुनर्संगठित होना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि एक प्रखण्ड में अधिकांश कृषि भूमि उपजाऊ है एवं शेष भूमि अनुपजाऊ है। तथा पड़ोस के प्रखण्ड की भूमि ज्यादातर अनुपजाऊ एवं बञ्जर है तब इन दोनों प्रखण्डों की चौहद्दियाँ इस तरह से समायोजित की जानी चाहिए कि सम्पूर्ण उपजाऊ भूमि एक ही प्रखण्ड के अन्दर आ जाय। तब भूमि की उर्वरता एवं अनुर्वरता के आधार पर उन प्रखण्डों की योजनाएँ

बनाई जा सकती हैं। आर्थिक विकाश के लिए उपयुक्त कृषि आधारित एवं कृषि सहायक उद्योगों की स्थापना हेतु या भूमि की उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रखण्डवार योजनाएँ (कार्यक्रम) सहजता पूर्वक लागू की जा सकती हैं।

भारत के कुछ क्षेत्र में किसान लोग पशु खाद्य चारे का उत्पादन नहीं करते या वे मवेशियों के संवर्धन के लिए भूमि नहीं छोड़ते हैं। इससे मवेशियों के स्वास्थ्य में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और उनका दुग्ध उत्पादन घट जाता है। सहकारी व्यवस्था मे भूमि के एक हिस्से को इस उद्देश्य हेतु छोड़ दिया जायेगा। जिस पर तेजी से बढ़ने वाली घास (नेपियर घास) जई, ज्वार एवं बिना विषयुक्त खेसारी दाल मवेशियों के लिए उगाई जा सकती है। खेसारी की वर्तमान प्रजाति जो भारत में उगाई जाती है वह बहुत पुष्टकर है किन्तु उसमें जहरीला क्षारीय (alkaloids) मिला रहता है। यह क्षारीय (alkaloids) मनुष्य एवं पशुओं, दोनों के निचले अंगों में पक्षाघात उत्पन्न करता है। ये जहरीला क्षारीय

(अल्कालोयड) दूर किया जा सकता है। यदि दाल को रात भर पानी में भिगोये रखा जाय तथा सुबह दाल को रगड़ कर उसके बाहरी छिलके को हटा दिया जाय। इस साधारण प्रकिया से जहर आसानी से हटाया जा सकता है जो दाल के भीतरी हिस्से एवं छिलके के बीच रहता है। जब दाल का जहर हट जाता है तब दाल का भीतरी भाग मनुष्यों एवं पशुओं दोनों के द्वारा निरापद होकर खाया जा सकता है।

प्रश्नोत्तर - ३

प्रश्न 1 :

प्रउत की स्थापना होने के बाद भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तरों में हम क्या न्यूनतम आवश्यकताओं के सन्तृप्ति बिन्दु पर पहुँच जायेंगे ?

उत्तर :

कहा गया है कि प्रउत के अनुसार क्रय क्षमता एवं अत्यावश्यक वस्तुओं की उपलब्धता को सुनिश्चित करके लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की जायेगी। पुनः यह भी कहा गया है कि लोगों के जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ हमेशा एक जैसी नहीं रहेंगी, युग के परिवर्तन के साथ-साथ क्रमशः बढती जायेंगी। यद्यपि भौतिक सुख सीमित है, किन्तु मानवीय इच्छाएँ (उत्कण्ठा) अनन्त हैं क्योंकि ये कुछ सूक्ष्म होती हैं।

प्रउत के अनुसार लोगों का मानसिक आभोग कभी समाप्त नहीं होता है, इस विश्व - ब्रह्माण्ड में सभी कुछ गतिशीलं है। इसी वजह से हमारे आभोग भी गतिशील रहते हैं एवं कभी स्थिर नहीं हैं। भौतिक स्तर में मानवीय आकांक्षा (चाहत) कभी

सन्तृप्त बिन्दु में नहीं पहुँचती है। वैसे ही हमारी मानसिक तृष्णा कभी तृप्त नहीं होगी। यह सतत् परिवर्तित हो रही है।

मानसिक क्षेत्र में जैसे ही हम आगे बढ़ते हैं. चरम सत्ता की ओर हमारा आकर्षण बढ़ते जाता है। हम नये-नये स्तरों से गुजरते हैं। परमानन्द की ओर एक स्तर से दूसरे स्तर में बढ़ते हुए हम एक सुन्दर अनन्त सत्ता परमपुरुष में मिलने को लालायित होते हैं। जब तक कोई व्यक्ति उनको पाने के लिए आगे नहीं बढ़ता है तब तक उसकी तृष्णा शमित नहीं होगी। वह नये से हमेशा नये की ओर बढ़ता है। किन्तु नवीनतम कभी नहीं आता है। वह शाश्वत रूप से नूतन अर्थात चिर-नूतन है। प्रत्येक क्षण वह नूतन बन जाता है। इस प्रकार जब तक हम परमपुरुष के सानिध्य में नहीं आते तब तक हमारी इच्छाएँ तृप्त नहीं हो सकती है। इसलिए किसी भी समय प्रउत का प्रयोजन, प्रउत का अनुरोध (आग्रह) समाप्त नहीं होगा।

अनुक्रमणिका

प्रश्न 2 :

भू-जल या कूप-जल सिंचन की क्या कमियाँ है ?

उत्तर :

कूप - जल सिंचन के कारण जल स्तर इतना नीचे चला जाता है कि जल का भूमिगत प्रवाह नीचे जाते जाते अन्ततः सूख जाता है।

कूप सिंचन के कारण जल की कमी सहज ढंग से अवगम्य (इन्द्रिय गोचर) नहीं है।

कूप सिंचन के नाकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैं :-

१) समीपवर्ती सभी-उथले-कूपों के सूख जाने से पेय जल के कमी की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

२) पेड़-पौधे, बगीचे एवं वनस्पतियाँ पर्याप्त जल नहीं प्राप्त कर पाती हैं जिससे ये मुर्झाकर सूख सकती हैं। हरा-भरा ग्रामीण क्षेत्र ३० से ४० वर्षों के लगातार कूप सिंचन के बाद रेगिस्तान हो जायेगा।

३) कुछ नल-कूपों से निकाला हुआ हानिकारक खनिज तत्त्व पानी के साथ मिलकर भूमि में लवणता उत्पन्न करता है। परिणामस्वरूप भूमि कृषि के लिए अनुपयुक्त तथा अन्ततः अनुपजाऊ एवं बंजर हो जाती है।

४) जब कूप-जल का प्रवाह बन्द हो जाता है, तब इन कुओं द्वारा आपूर्तित बड़ी-बड़ी जल-टंकियाँ (water tanks) भी सूख जाती हैं

अतः कूप सिंचन को समीपवर्ती पर्यावरण पर हो रहे विनाशंकारी प्रभाव के कारण केवल अस्थायी तौर पर ही प्रयोग करना चाहिए। सिंचाई की वैकल्पिक विधियाँ नदी, जलाशय, उद्धाहक सिंचाई (liftirrigation) एवं shift irrigation है।

प्रश्न 3 :

किसी कृषि प्रधान देश या क्षेत्र तथा किसी औद्योगिक देश या क्षेत्र के सर्वांगीण विकाश के लिए विकाशपरक योजनाएँ क्या सिद्धांत में एक जैसी होनी चाहिए या एक दूसरे से भिन्न होनी चाहिए ?

उत्तर :

सर्वांगीण उत्थान के अर्थ में विकाश आर्थिक गतिविधियों का मेरुदण्ड है। अर्थात् विकाश का अर्थ एकीकृत, ठोस एवं बहुउद्देशीय विकाश है।

नियम एवं सिद्धांत एक जैसे बने रहते हैं किन्तु नीतियाँ भिन्न हो सकती हैं। सिद्धात का कृषकीय अंश एवं सिद्धांत का कृषकीय तरीका एक होना चाहिए। फिर भी चूँकि परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, इसलिए सिद्धांत का प्रयोग एवं तरीका निश्चित ही बदलेगा।

अभी तक की संरचनात्मक अधिकारिता को उचित ढंग से विकशित नहीं किया गया है। वास्तव में कृषि के संरचनात्मक भाग के सभी पहलुओं को उपेक्षित किया गया है।

प्रउत के अनुसार, कृषि को उद्योग का दर्जा प्रदान करना चाहिए। उद्योग में कच्चे माल की कीमत, श्रम लागत, ऋण व्याज, अवमूल्यन लागत, रख-रखाव लागत, लाभएवं उत्पादन दर इत्यादि को निश्चित करके इन्हें लागत निर्धारण में शामिल

किया जाता है। कृषि क्षेत्र में ऐसा नहीं किया गया है, इसीलिए कृषि उत्पादों का मूल्य साधारणतयाः अलाभकारी होता है।

परिस्थितियों के दबाव में आकर किसान लोग अपने उत्पाद कम क़ीमत पर बेचने को मजबूर हो जाते हैं। (इसे विपत्ति बिक्री (Distress sale) के नाम से जाना जाता है। यदि कृषि को उद्योग का दर्जा दिया जाता है तो उद्योग की सभी शतं कृषि पर भी लागू होंगी। यदि ऐसा होता है तो किसान उपेक्षित नहीं होंगे तथा कृषि एवं उद्योग के लागत निर्धारण में एवं विकाश के तौर-तरीके में कोई अन्तर नहीं होगा।

उदाहरणार्थ, उड़ीसा प्रतिबर्ष धान की एक ही फसल उत्पादित करता है। सिंचाई की कोई उचित व्यवस्था नहीं होने से पानी का हमेशा अभाव रहता है। परिणामस्वरूप किसानों में ग़रीबी है किन्तु इस ग़रीबी को निश्चित ही हटाया जाना चाहिए। यदि हम उड़ीसा में कृषि को उद्योग का दर्जा प्रदान करें, तो

लागत निर्धारण एवं मूल्य निर्धारण भिन्न होंगे। लागत निर्धारण में बीजों की लागत, श्रम लागत, कच्चे माल की लागत सेवा निवृत्ति-वेतन (pension) कोश, भण्डारण लागत, अवमूल्यन लागत, शोधन निधी (sinking fund) इत्यादि शामिल किया जायेगा। किसानों को अपनी कीमतों के हिस्से के तौर पर अपने उत्पाद में १० से १५ प्रतिशत लाभांश भी रखना चाहिए। इस तरह औद्योगिक उत्पादन की तरह कृषि उत्पाद का मूल्य भी उचित रूप से निर्धारित किया जायेगा।

प्रउतवादी समाज में, उपभोक्ताओं को इस नये निर्धारित मूल्य पर ही कृषि उत्पादों को खरीदना पड़ेगा। एकीकृत विकाश का यही उचित तरीका है। ऐसी व्यवस्था में किसान लोग शोषित नहीं होंगे या अनावश्यक कठिनाइयों में नहीं पड़ेंगे।

प्रश्न 4 :

सम्पत्ति के मूल्य का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर :

सूक्ष्म आर्थिक अर्थ में सम्पत्ति का मूल्य ही वास्तविक सम्पत्ति है। सम्पत्ति यदि सही ढंग से परिभाषित नहीं हुई तो इसका अर्थ-धन दौलत ही हो सकता है। लेकिन सम्पत्ति का मूल्य वस्तुओं के खरीदने का क्षमता के विशेष अर्थ में मापा जाता है। अर्थात् सम्पत्ति के खरीदने की क्षमता ही इसका मूल्य है। सम्पत्ति की तरह यह वास्तविक कीमत अर्थशास्त्रियों द्वारा अभी तक संख्यात्मक मूल्य में सही ढंग से समझी नहीं गई है।

प्रश्न 5 :

क्या तुम कह सकते हो कि प्रउत नव्य मानवतावाद का पूरक है अथवा नव्य मानवतावाद प्रउत का परिशिष्ट है ?

उत्तर :

प्रउत आध्यात्मिकता पर आधारित है। नव्य मानवतावाद भी आध्यात्मिकता पर आधारित है। इसलिए न तो प्रउत और न ही नव्यमानवतावाद एक दूसरे के वशवर्ती (subsservient) हैं।

प्रश्न 6:

प्रउत नव्य मानवतावाद या अणुजीवत के सिद्धांत मे से किसका मौलिक महत्व है ?

उत्तर :

सभी का समान महत्व है क्योंकि ये सभी आनन्दमार्ग के मौलिक आध्यात्मिक दर्शन पर आधारित हैं।

२५ फरवरी १९८८, कोलिकाता

अनुक्रमणिका

कणिका में प्रउत

(खण्ड १५)

प्रउत की विचारधारा

ज्ञान दो प्रकार के हैं - बुद्धि संजात ज्ञान और ईश्वरीय अनुभूति संजात ज्ञान। बौद्धिक ज्ञान चूँकि अभिज्ञता संजात है इसलिए वह आपेक्षिकता के दोष से युक्त है। इसी कारण बौद्धिक ज्ञान चरमज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। ईश्वरीय अनुभूति संजात ज्ञान ही चेतनासम्पृक्त है। यही ज्ञान सभी कुछ का बारीक विश्लेषण करने में समर्थ है; -इसलिए ईश्वरीय अनुभूति संजात ज्ञान ही चरमज्ञान है।

विषय के साथ सामंजस्य की रक्षा करते हुए विषयी की ओर लक्ष्य रखकर आगे बढ़ना ही प्रउत का पथ है। यही पथ बौद्धिक ज्ञान और ईश्वरीय अनुभूति संजात ज्ञान के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। इन दोनों ज्ञानों का स्पर्श बिन्दु या मिलन स्थल ही बोधिज्ञान है। बोधिज्ञान की सहायता से ईश्वरीय

अनुभूति संजातज्ञान को हम लोग जागतिक समस्याओं के समाधान में व्यवहार कर सकते हैं। इसलिए प्रउत भी बोधिज्ञान है।

युक्ति एक प्रकार की मानसिक माप (जरीब) है। यह जरीब सही हो भी सकती है, और नहीं भी। तुम्हारी मानसिक माप (जरीब) ही तुम्हारा विचार विवेचन है। चूंकि यह मानसिक जरीब आपेक्षिकता के दोष से युक्त है इसलिए उसमें कमी रह सकती है। ईश्वरीय अनुभूति संजात ज्ञान ही सर्वोत्तम युक्ति है। इसलिए ईश्वरीय अनुभूति संजातं ज्ञान ही आदर्श दिशारी (पथ प्रदर्शक) होने का अधिकारी है। उदाहरणस्वरूप सब कुछ परमपिता से आया है और अन्त में सबकुछ परमपिता में ही लीन हो जाएगा, यह स्वतः सिद्ध सत्य है। लेकिन यह सत्य बौद्धिक युक्ति की पकड़ से बाहर है।

पूँजीवाद

पूँजीवाद किस तरह पैदा हुआ था ? खाद्य वस्तुओं की अन्तर्निहित सुप्त शक्ति ही पूँजी है। बुद्धिमान लोग भोग्य सामग्रियों के रूप में अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक पूँजी संग्रह करते हैं। लेकिन चूँकि भोग्य सामग्री अधिक दिन तक जमा करके नहीं रखी जा सकती, इसलिए वे पूँजी के रूप में धन रुपये जमा करते हैं। इन्हें ही पूँजीवादी कहते हैं। चूँकि ये पूँजीवादी लोग 'भूमा उत्तराधिकार' सिद्धान्त के विरोधी हैं इसलिए ये परमपिता की अधम सन्तानें हैं। उनके इस रोग को हटाने की व्यवस्था करनी होगी। पूँजीवाद का विरोध करना इसीलिए अन्यतम लक्ष्य है। अनन्त अभिव्यक्ति का बीज धर्म के अन्दर ही निहित है, लेकिन उसके लिए तुम्हें सचेष्ट होना होगा। पूँजीवादी लोग मनुष्य को परम चैतन्य के साथ मिलित होने के पथ में बाधा पैदा करते हैं, उनके महान बनने के पथ पर वे बाधा बनकर खड़े होते हैं। इसलिए पूँजीवाद धर्मविरोधी है और इस कारण पूँजीवाद के क्रियाकलाप भी धर्मविरोधी हैं। पूँजीवाद के इस

आचरण के संशोधन का उपाय क्या है ? नीतिवाद के अधिक्षेत्र में दो शक्तियाँ आन्तरिक आकुति और बाहरी दबाव समानान्तर काम करती हैं। दुनिया की हर वस्तु में अपनी शक्ति है। वह शक्ति अनन्त अभिस्फुरण का पथ खोजती है। आत्मा तथा साक्षी-सत्ता अशुभ शक्ति के विरुद्ध संग्राम के लिए प्रयोजनीय शक्ति की आपूर्ति करती हैं। और आभ्यन्तरीक आकुति के विरुद्ध अशुभ शक्ति के कार्यकलापों को निष्क्रिय करने में प्रचण्ड बाहरी दबाव का प्रयोग करना पड़ता है। बाहरी दबाव की नाना पद्धतियाँ। अभिभाषण, उपदेश, दण्ड और संघर्ष हैं। पूँजीवादी लोग दुर्नीतिग्रस्त हैं और भ्रातृघाती युद्ध में लिप्त हैं। चूँकि उनमें आभ्यन्तरीण आकुति बहुत ही नगण्य है और निष्क्रिय है, इसलिए उनके स्वभाव संशोधन के उद्देश्य से उनके विरुद्ध शक्ति सम्प्रयोग करना ही होगा। सुन्दर वाक्य विन्यास समन्वित उपदेश सफल नहीं होगा।

अनुक्रमणिका

मनुष्य की अभिव्यक्ति त्रिस्तरीय है। मनुष्य अनन्त परिमाण में जागतिक सुख भोग करना चाहता है। लेकिन उसकी वह अनन्त आकांक्षा अतृप्त ही रह जाती है। जागतिक सुखभोग की इस आकांक्षा ने ही पूँजीवाद को जन्म दिया है। जागतिक सुख भोग की अनन्त आकांक्षा स्वाभाविक मन में होते हुए भी, पूँजीवादी लोग दिन-रात अर्थ की चिन्ता में निमग्न रहते हैं। चूँकि जागतिक सम्पदा अनन्त नहीं है इस कारण सीमित जागतिक सम्पदा के बीच अनन्त आकांक्षा पूर्ति की इच्छा एक प्रकार का मानसिक रोग है। मनुष्य की अनन्त मानसिक भोग की आकांक्षा भी अतृप्त रह जाती है। अत्यधिक मानसिक भोग की आकांक्षा एक प्रकार की मनोविकृति लेकर आती है, मनुष्य अस्वाभाविक आचरण शुरू करता है। जड़ जगत् के साथ सम्बन्धित मानसिक आकांक्षाओं के विषय समूह सीमित हैं। लेकिन विशुद्ध मानसिक विषय अनन्त हैं। तुम लोगों का मानस देह और जड़ जागतिक माँग समूह हमेशा अलग हैं और यहीं से खींचतान शुरू होती है। लेकिन आध्यात्मिक लक्ष्य में पहुँच पाने पर ही आत्मा और

भोग्य वस्तुओं के बीच की दूरी हटती है। और इसी अवस्था में वास्तविक शान्ति की अनुभूति होती है। थोड़ी देर पहले जिस मानसिक रोग की बात मैंने कही; उसी रोग के कारण दूसरों के साथ संघात होता है, और वह कई बार मनुष्य को निःस्व बना देता है। भ्रातृघाती इस संघात से दूर रहने के उद्देश्य से और मानवाधिकार को सुरक्षित बनाने के लिए हमें जागतिक भोग की आकांक्षाओं को मानसिक और आध्यात्मिक भोग की आकांक्षाओं में रूपान्तरित करना होगा।

पुराकाल में प्रतापी राजे-महाराजे अपनी वीरता जाहिर करने के उद्देश्य से यज्ञ किया करते थे और पशुबलि दिया करते थे। असल में यह भी एक प्रकार का शोषण था। वे जो बहुत सारे मन्दिरों का निर्माण करते थे वह असल में उनका भक्ति-प्रसूत नहीं था, उद्देश्य अपने दुष्कर्म को छिपाना था। जागतिक तथा मानसिक जगत के शोषकों के बीच एक अपवित्र समझौता था। बुद्धिजीवी लोग हमेशा से इन राजाओं-महाराजाओं की स्तुति

करते आए हैं। पूँजीवाद का और एक रूप पुरोहित प्रथा है। पूँजीवादी लोग कभी उस पुरोहित प्रथा का विरोध नहीं करेंगे, पुरोहित लोग भी पूँजीवादियों का विरोध नहीं करेंगे। जन-साधारण के मन में हीनमन्यता पैदा करने के उद्देश्य से ब्राह्मणों ने बहुत सी कहानियाँ और पुराण तैयार किए हैं। शोषण के उद्देश्य से साधारण लोगों की भावप्रवणता को उकसाने के लिए इन अयौक्तिक और सजायी कहानियों का फन्दा बिछाया गया है। सुविधावादी शैतानों द्वारा सृष्ट इस प्रकार का जाज्वल्यमान उदाहरण है-

"ब्राह्मणस्य मुखमासीत वाहुराजन्योभवत्
मध्यतदस्य यद्वैश्यः पदभ्याम् शूद्रः संजायतं ।।"

ब्राह्मण लोग मुँह से पैदा हुए हैं। क्षत्रियों की सृष्टि बाहु से हुई है। वैश्य लोग पैदा हुए हैं पेट से पदयुगल से शूद्रलोग सृष्ट हुए हैं।

पूँजीवादी ढाँचे में मुनाफे के मनोभाव के द्वारा शिल्प तथा उत्पादन परिचालित होते हैं। लेकिन प्रउत व्यवस्था में उपयुक्त सद्व्यवहार के उद्देश्य से ही उत्पादन होगा।

श्रमिक समस्या

दुनिया में सर्वत्र ही श्रमिक समस्या ने एक दुरारोग्य व्याधि का आकार धारण किया है। प्राचीनकाल में बोनस नाम का कुछ नहीं था। लेकिन बड़े उद्योग दया करके कुछ बोनस दिया करते थे। लेकिन वर्तमान में बोनस पाना श्रमिकों के एक अधिकार के रूप में स्वीकृत हुआ है। लक्षणीय यह है कि जो राजनैतिक दल सत्ता में नहीं होता तब, श्रमिक आन्दोलन का

समर्थन करता है। उदाहरणस्वरूप कम्युनिष्ट पार्टी भारत में बन्द का समर्थन करती है और तत्कालीन सोवियत रुस में उसे दबाए रखती थी।

उद्योग परिचालन व्यवस्था में श्रमिकों के भाग लेने के दावे को मानकर, असली मुनाफे से कुछ लाभांश श्रमिकों को देकर कुछ संरक्षित मूलधन (reserved fund) और कुछ प्रतिपूरक निधि (Sinking fund) को मूलधन बढ़ाने के उद्देश्य से अलग करके रखने पर समाधान हो सकता है। लेकिन यह स्थायी समाधान नहीं है। प्रश्न है कि वास्तविक मुनाफे का लाभांश किस नीति से निर्धारित होगा? बंगाल में बटाईदार लोगों ने पहले वास्तविक मुनाफे का आधा और बाद में दो तिहाई भाग का दावा किया था। दुनिया की परिवर्तनशीलता के साथ यह भी परिवर्तित हो जाएगा।

समवाय व्यवस्था के व्यापक रूपायण, और कृषि-शिल्प-उद्योग के सामाजीकरण के माध्यम से ही श्रमिक समस्या का स्थायी समाधान सम्भव है। प्रग्रह शिल्प समूह (key industries) स्थानीय सरकार द्वारा परिचालित होंगे और उन्हीं के अधीन रहेंगे। और श्रमिक-सम्बन्ध को सुन्दर रखने के लिए बोनस एवं पीस वर्क व्यवस्था चालू करनी होगी। जो जितने निपुण तरीके से जितना अधिक काम करेगा वह उतना अधिक लाभांश अर्जित करेगा।

बोनस और पीस वर्क दोनों दो व्यवस्थाएँ हैं। किसी उद्योग के वास्तविक मुनाफे का एक निश्चित भाग श्रमिकों के श्रम के आधार पर जब दिया जाता है तभी उसे बोनस कहते हैं। पीस वर्क व्यवस्था ठीक वह चीज़ नहीं है। किसी विशेष काम के लिए जो समय निर्धारित रहता है उस समय से पहले ही उस काम को पूरा करके बाकी समय में यदि अतिरिक्त काम किया जाय तब उस अतिरिक्त काम के लिए श्रमिकों की प्राप्ति को पीस वर्क

अनुक्रमणिका

पेमेन्ट कहते हैं। एक कैंची तैयार करने के लिए यदि दो घंटे का समय निर्धारित हो, और यदि डेढ़ घंटे में हो जाय तो आधे घंटे का जो अतिरिक्त काम हुआ उसके लिए श्रमिक की प्राप्ति ही है पीस वर्क पेमेन्ट। उद्योग का वास्तविक मुनाफा शेयर के अनुसार सबको देने को ही डिविडेण्ड कहते हैं। अति शिल्पोन्नत देश जापान में श्रमिक असन्तोष लगभग नहीं के बराबर है। उसका कारण है कि वहाँ बोनस और पीस वर्क पेमेण्ट व्यवस्था से सब काम होता है और समवाय व्यवस्था के तर्ज पर वहाँ शिल्पोद्योग परिचालित होता है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि केवल मजबूत सरकार के शासन में ही समवाय सही तरीके से सफल हो सकता है। कमजोर गणतांत्रिक ढाँचे सही रूप में सफल नहीं होते। समवाय शुरू करने से पहले मनस्तात्विक परिवेश तैयार करना होगा। प्रउत विचार समर्थित व्यवस्था का अर्थ अल्प समयव्यापी श्रम, अधिक समयव्यापी विश्राम और अधिक आराम है। उद्योग में

समवाय की सुरक्षा के लिए प्रग्रह शिल्पं सरकारी परिचालन के अधीन होंगे, और वहाँ कामबन्दी (tool down) का कोई परिवेश नहीं रहेगा, और किसी के परिणामस्वरूप परवर्ती चरण में समवाय परिचालित उद्योग कभी बन्द (Closure) नहीं होंगे। जो भी हो, वर्तमान में चूँकि समवाय के पक्ष में मनस्तात्विकं परिवेश नहीं है इसलिए -तुरन्त समवाय आन्दोलन की घोषणा समयोचित नहीं है। अभी यदि समवाय व्यवस्था लागू हो तो वह राष्ट्रीय सम्पत्ति की हानि का कारण बन जाएगी।

प्रश्न किया जा सकता है कि सरकार के लिए क्या वाणिज्यिक विषय में चिपक जाना उचित होगा ? यदि हो तो उन सभी क्षेत्रों में श्रमिक समस्या का स्थायी समाधान फिर क्या होगा ? नीतिगत रूप से इस मामले में सरकार को उलझना उचित नहीं होगा। लेकिन जिन क्षेत्रों में समवाय के द्वारा उस उद्योग को चलाना सम्भव नहीं है वैसी स्थिति में सरकार को ही आगे आना होगा। हाँ, इन्हें केवल यन्त्र संयुक्ति के कारखानों (assembly

factories) के बीच ही सीमाबद्ध रहना उचित है। इस प्रकार के यंत्र संयोजन के कारखानों में जितने यन्त्र लगेंगे उन्हें शिल्प समवाय से तैयार होना उचित है। समवाय यदि किसी विशेष यन्त्र को तैयार करने में अकुशल हो तो केवल उसी यन्त्र को तैयार करने में सरकार उद्योग हो सकती है। ऐसे मामलो में कोई मुनाफा नहीं दिया जायेगा क्योंकि मुनाफे के भाग- बँटवारे को लेकर ही श्रमिक असन्तोष का जन्म होता है। उत्पादन का खर्च इस तरह कम करना होगा कि वह उद्योग 'बिना लाभ हानि पर' चले। इन सभी क्षेत्रों में (सरकारी उद्योग) आवश्यक रूप से आर्थिक और व्यावसायिक हिसाब-किताब रखना अत्यन्त जरूरी है-जिसके द्वारा हमेशा नज़र रखी जाएगी, उस उद्योग को कोई क्षति नहीं होती। यदि कभी कोई उद्योग घाटे में चले तो तुरन्त उसे शिल्प समवाय में रूपान्तरित करना होगा।

जमींदारी प्रथा की कई त्रुटियाँ: इस प्रथा के अत्यधिक समालोचित होने के कारण हैं प्रथमतः खेतीहर लोग,

जिस जमीन पर उनका कोई अधिकार नहीं था, केवल खेती करने का अधिकार था। द्वितीयतः जमीन्दार लोग विशाल परिमाण में जमीन अपनी निजी सम्पत्ति के रूप में रखते थे। तृतीयतः जमीन्दार लोग जो मालगुजारी वसूलते थे उसमें बहुत कम सरकार के पास जमा करते थे।

जमीन्दारी प्रथा के विलोप के फलस्वरूप इन त्रुटियों के कारण होने वाली क्षति दूर हुई है ऐसी बात नहीं है, बल्कि सरकारी मालगुजारी की अदायगी बेतरह क्षतिग्रस्त हुई है। प्रउत मतानुसार जमींदारी प्रथा का विलोप न करके बैंक में जमींदारों के जमा रुपयों की अधिकतम सीमा का निर्धारण करके अति संचित भाग को जब्त करके प्रगह शिल्पों में विनियोग करना उचित था।

इससे सम्बन्धित एक प्रासंगिक प्रश्न है कि जमीन की अधिकतम सीमा और बैंक में संचित सम्पत्ति की अधिकतम

सीमा दोनों को क्या लागू करना होगा ? कहना न होगा कि दोनों को लागू करना होगा। जमीन की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के पहले बैंक में जमा सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निर्धारित करनी होगी। इसके फलस्वरूप तुरन्त सरकार के हाथ में कुछ सम्पत्ति चली आएगी, और उससे एक ओर जिस प्रकार नये-नये उद्योग स्थापित करना संभव होगा, दूसरी ओर पूँजीवाद के अग्रसण को रोका जा सकेगा। जमीन की अधिकतम सीमा निर्धारित करने पर भी चूँकि खेती के लायक जमीन का परिमाण या उत्पादन नहीं बढ़ेगा इसलिए राष्ट्रीय प्रत्यक्ष लाभ कुछ नहीं होगा। अधिकतम सीमा निर्धारित करने के फलस्वरूप जो अतिरिक्त जमीन मिलेगी उस जमीन पर खेती करना भी सरकार का काम नहीं हो सकता। ऐसी व्यवस्था जनसाधारण के भावावेग को आहत करेगी और आम जनता सोचेगी कि जमीन्दारी प्रथा का विलोप करके सरकार ही जमीन्दार बन गयी है। खाद्याभाव पैदा होने पर भी तुरन्त जमीन सम्बन्धी नीति में परिवर्तन करना बुद्धिमानी का परिचायक नहीं होगा।

अनुक्रमणिका

दहेज प्रथा

सामाजिक अविचार का और एक जाज्वल्यमान उदाहरण दहेज प्रथा है। सभ्य समाज में यह वास्तव में एक लज्जा का विषय है। इस अविचार के कारणों को खोजने के उद्देश्य से यदि थोड़ी गहराई से सोचें तो इसके पीछे दो कारण स्पष्ट रूप से प्रतीयमान होंगे।

प्रथमतः जहाँ पुरुष और नारी के बीच आय की समानता नहीं रहती वहीं दहेज प्रथा आ जाती है। केरल के नायर और इड़ावा संप्रदाय मातृतांत्रिक व्यवस्था को मानकर चलते हैं जिस कारण पुरुष दहेज का कोई दावा नहीं करते। असम के खासिया लोग भी मातृ तांत्रिक व्यवस्था को मानकर चलते हैं। बर्मा (म्यांमार) में पितृतांत्रिक व्यवस्था को मानकर चलने पर भी चूँकि नारियों को अर्थनैतिक स्वाधीनता है इसलिए दहेज उन्हीं को मिलता है।

अनुक्रमणिका

द्वितीयतः जहाँ नारी-पुरुषों की संख्या के अनुपात में विषमता दिख पड़ती है वहाँ दहेज प्रथा लागू हो जाती है। यदि पुरुषों की संख्याधिक्य हो तो नारियों को दहेज मिलता है, और इसका उल्टा होने पर अर्थात् नारियों की संख्या अधिक होने पर पुरुषों को दहेज मिलता है। चूँकि पंजाब में नारियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है इसलिए नारियों को दहेज मिलता है। मुसलमानों के मामले में भी वही स्थिति है।

अभिजात्यों का नकली अहंकार भी दहेज प्रथा का कारण है। अभिजात लोग समझते हैं, हमारा परिवार ऊँचे दर्जे का है। इसलिए दहेज लेना हमारा अधिकार है। प्रउत व्यवस्था में किसी प्रकार की दहेज प्रथा नहीं रहेगी।

सम्पत्ति का उत्तराधिकार

प्रश्न किया जा सकता है कि पिता की संपत्ति उसकी संतानों के बीच किस तरह बाँटी जाएगी ? दायभाग व्यवस्था यदि सर्वत्र प्रचलित हो तो लड़कियों के विधवा हो जाने पर भी जिसमें अभावग्रस्त न हो इसलिए उसके भाइयों के साथ समान हिस्सा पाने की व्यवस्था करके उनका अधिकार सुरक्षित करने की व्यवस्था करनी होगी। यद्यपि लड़कियाँ अपने जीवनकाल में उस संपति का भोग दखल कर सकेंगी लेकिन उनका उस संपत्ति पर मालिकाना हक रहना अच्छा नहीं होगा। उसे यदि कोई संतान न हो तो उसकी मृत्यु के बाद वह संपति उसके भाइयों के बीच अथवा भाइयों की संतानों के बीच विभाजित हो जाएगी।

यह विश्व हम सबकी सम्मिलित पैतृक संपत्ति है। इस पैतृक संपत्ति के रख-रखाव का दायित्व प्राउटिस्टों को ही लेना होगा, क्योंकि अन्य लोग स्वार्थपरता या दलबाजी के शिकार हो सकते हैं। भोग का अधिकार और रख-रखाव का अधिकार एक

नहीं है। चूँकि सभी लोगों में नेतृत्व का गुण नहीं होता, चूँकि साधारण लोग केवल भेड़ों के दल की तरह चलते हैं, इसलिए रख-रखाव का अधिकार नेतृत्व गुणसंपन्न मात्र कुछ ही लोगों को होना उचित है। सामाजिक, अर्थनैतिक, राजनैतिक, जीवन के हर क्षेत्र में सामान्य लोगों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए बुद्धि और बोधि से समुन्नत कुछ ही लोगों को संपत्ति के रख-रखाव का अधिकार रहना उचित है।

हमारी जागतिक संपदा हम सभी की सामूहिक पैतृक संपत्ति है। हर व्यक्ति को इस संपत्ति को भोगने का जन्मसिद्ध अधिकार है। जो इसका विरोध करते हैं वे निहित स्वार्थ के ध्वजाधारी हैं। इस भूमा उत्तराधिकार का विरोध बरदास्त नहीं किया जाएगा। यदि कोई वैसा करता है तो उसकी उस मानसिक विकृति की सुचिकित्सा की व्यवस्था करनी होगी। इस सुचिकित्सा को 'धर्मयुद्ध' की आख्या दी जा सकती है।

धंधेबाज शोषक लोग लोगों की अज्ञता का नाजायज फायदा उठाते हुए उनके बीच जागतिक संपदा के भोग की जो खतरनाक लालसा पैदा कर रहे हैं उससे जन-साधारण की रक्षा करने का दायित्व हर सद्विप्र को है। ये सभी धंधेबाज गणतंत्र का मुखौटा पहनकर अपने नग्न, वीभत्स उद्देश्य को छिपाने की चेष्टा करते हैं। असल में गणतंत्र आकर्षक नारों के जादूमय सोने से मढ़ी पीतल की मुद्रा है।

राष्ट्रीयतावाद का जयगान करना आज के इस युग की हवा है। वस्तुतः राष्ट्रीयतावाद भी एक प्रकार का मानसिक रोग है। परमतत्त्व में ही चरम व्यापकता है। किसी व्यष्टि के मानसिक दृष्टिकोण के ऊपर उसके मन की व्यापकता निर्भरशील है। यह मानसिक दृष्टिकोण जितना छोटा होता जाता है उतना ही वह मतिहीन बनता जाता है। जो लोग समझते हैं कि राष्ट्रीयतावाद से जातिवाद खराब है वे गलती करते हैं। भारत में ब्राह्मणों की संख्या लगभग बीस करोड़ है और मलयों की संख्या लगभग

४.५ करोड़ है। तब तो कहना चाहिए कि मलय राष्ट्रीयतावाद से ब्राह्मणों के जातिवाद का दृष्टिकोण बड़ा है। और पारसियों की संख्या १५ करोड़ है, दूसरी ओर ऑस्ट्रेलिया की जनसंख्या ७.५ करोड़ है। तब तो महादेशवादी ऑस्ट्रेलिया से राष्ट्रवादी पारसियों का दृष्टिकोण बड़ा लग सकता है। और चीन के राष्ट्रीयतावादियों की अपेक्षा भारत के राष्ट्रीयतावादी लोगों को अधिक नीचमति मान लेना चाहिए। इसी कारण विश्वैकतावाद को, और केवल विश्वैकतावाद को ही समर्थन देना चाहिए। असल में विश्वैकतावाद कोई वाद (ism) नहीं है। क्योंकि विश्वैकतावाद से बाहर और कुछ भी नहीं है और यह विश्वैकतावाद किसी गोष्ठी विशेष या दल विशेष का झंडा नहीं पकड़ता। विश्वैकतावाद के मानस प्रक्षेपण में किसी नीचता का स्थान नहीं है। हर प्रकार के भौतिक और आधिदैविक रोगों का एकमात्र मकरध्वज (औषधि) विश्वैकतावाद है। इसी कारण प्राउटिष्ट लोग निश्चितरूप से विश्वैकतावादी हैं।

विश्वराष्ट्र

विश्वैकतावाद की धारणा को वास्तविक रूप देने के लिए विश्वराष्ट्र का गठन करना ही होगा। विश्व के सभी मुक्त राष्ट्रों को मिलाकर इस विश्वराष्ट्र का गठन करना होगा। सामाजिक, अर्थनैतिक और भौगोलिक सामंजस्य की ओर लक्ष्य रखकर स्वयं सम्पन्न सामाजिक अर्थनैतिक अंचल (unit) के समाहार से मुक्त राष्ट्र समूह गठित करना होगा । अर्थनीति में अवनत अंचल का शोषण करना अर्थनीति से उन्नत अंचल की स्वाभाविक प्रवणता है। इसीलिए विभिन्न स्वयं सम्पन्न सामाजिक अर्थनैतिक अंचलों (units) के समाहार से विश्वराष्ट्र तैयार करना होगा। उदाहरण स्वरूप भारत के अंतर्गत विदर्भ अंचल के लोग मराठी भाषी होते हुए भी महाराष्ट्र में न रहकर एक अपने राज्य का दावा करते हैं और एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है फारस (ईरान) का अजरबैजान अंचल (तत्कालीन) सोवियत के अजरबैजान अंचल के साथ मिलकर अपनी अर्थनैतिक

अनुक्रमणिका

समृद्धि को सुनिश्चित करना चाहता है। इस तरह से जो अंचल (unit) तैयार होंगे, शासन कार्य के सुविधार्थ उनके नाम या संज्ञा में परिवर्तन हो सकता है। इन अंचलों (units) में कुछ सामान्य मेल होते हैं और उस मेल के आधार पर ही विश्वराष्ट्र तैयार करना होगा।

विश्वराष्ट्र शुरू-शुरू में एक कानून बनाने वाली संस्था होगी। विश्वराष्ट्र प्रणीत उस कानून समूह को विभिन्न मुक्तराष्ट्र लागू करेंगे। मुक्तराष्ट्रों को उस कानून समूह को लागू करने की स्वतंत्रता होगी, लेकिन कभी भी उस कानून के विरुद्धाचरण नहीं करेंगे। आंतर्युक्तराष्ट्रीय शांति बनाए रखना और आंतर्ग्रह विवादों के निपटाने के लिए ही विशेष तौर पर निर्धारित क्षमता विश्वराष्ट्र को होगी, 'अर्थात विश्वराष्ट्र के अधीन ही विश्वसेना रहेगी। आभ्यंतरीक शांति व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से मुक्त राष्ट्र और स्वयं संपन्न सामाजिक अर्थनैतिक अंचल समूह पुलिस की व्यवस्था रखेंगे।

अनुक्रमणिका

स्वयं सम्पन्न अंचलों में सद्विप्र बोर्ड रहेंगे। ये बोर्ड सम्मिलित रूप से एक मुक्त राष्ट्रीय बोर्ड और गठित कर लेंगे। मुक्त राष्ट्रीय बोर्ड ही मुक्त राष्ट्र के शासन को परिचालित करेगा। इन बोर्डों के समाहार से ही विश्वराष्ट्रीय बोर्ड गठित होगा। यही संस्था विश्वव्यापी रूप से विश्वंराष्ट्र का परिचालन करेगी। लेकिन कभी भी किसी मुक्तराष्ट्र के स्वार्थ को क्षुण्ण नहीं करेगी।

भाषा

मानव समाज में भाषा समस्या ने एक पुरानी व्याधि नासूर का रूप धारण किया है। भाषा सम्बन्धी अज्ञता ने समस्या को और भी जटिल बना दिया है। भाषा भाव-प्रकाशन का माध्यम है। छः चरणों में भाव प्रकाशित होता है। भाव जहाँ बीजाकार में रहता है उसे पराशक्ति कहते हैं। इस पराशक्ति का

अवस्थान मूलाधार चक्र में है। स्वाधिष्ठान चक्र में आकर वह भाव मानसिक तौर पर 'बोधगम्य' होता है। यह जो बीज से अंकुरित भाव को मन ही मन देखना है। इसे 'पश्यन्ति शक्ति' कहते हैं। मणिपुर चक्र में आकर वह मानसिक बोधगम्यता मानस ध्वनि में रूपांतरित होती है, इसे 'मध्यमा शक्ति' कहते हैं। अब व्यक्ति उस 'मानस ध्वनि' को भाषात्मक रूप देने के लिए सचेष्ट होता है। मानसिक अनुभूति को अभिप्रकाशित करने की इस प्रचेष्टा का नाम 'द्योतमाना' शक्ति है यह नाभि और कंठ के बीच यह शक्ति क्रियाशीला है। कंठ में आकर भाव भाषा में रूपांतरित होता है इसे वैखरी शक्ति कहते हैं। वैखरी के बाद वह वास्तविक कथ्य भाषा का रूप प्राप्त करती है, और उसे श्रुति गोचरा कहते हैं। अर्थात् विभिन्न भाषाओं में जो पार्थक्य हमलोग देखते हैं वह केवल अभिप्रकाशन के छठे स्तर पर सृष्ट होता है। प्रथम पाँच स्तरों पर अभिप्रकाशन में कोई पार्थक्य नहीं है। भाषा तात्त्विकों और भाषा की समस्याएँ पैदा करनेवाले शैतानों को यदि इस वास्तविक सत्य का पता होता तो भाषा के

सम्बन्ध में विभिन्न जनगोष्ठियों के बीच के झगड़े का बहुत कुछ समाधान किया जा सकता था। एक वाक्य में कहें तो इससे सम्बन्धित अज्ञता के कारण ही मानव समाज टीस झेल रहा है।

विभिन्न भाषाएँ पैदा करके प्रकृति ने मानो महापाप कर डाला है। लेकिन प्रकृति को भी दोष नहीं दिया जा सकता, क्योंकि अपने अमोघ नियम से ही वह विचित्रता पैदा करती रहती है। सभ्यता की आदिम अवस्था में अवनत मनुष्य अपने अंगों के संकेत से अपने भावों का बोध कराते थे और एक समय आएगा जब कोई भाषा नहीं रहेगी। विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ मनुष्य फिर से नये किस्म की अंग-भंगिमाएँ सीख लेंगे, और मौन से जो शक्ति संचित करेंगे उस संचित शक्ति को वे उन्नत उद्देश्य में लगाने की सोचेंगे।

बुद्धिमान मनुष्य सभी के व्यवहार के योग्य एक विश्वभाषा तैयार कर लेंगे। इस मामले में वे हीन और भ्रांत

भावधारा के वशवर्ती नहीं होंगे। समस्त जागतिक संपदा की तरह भाषा समूह भी परमपुरुष से प्राप्त हम सभी की पैतृक संपत्ति है। किसी भाषा की घृणा करने का अधिकार हमें नहीं है, सभी भाषाओं को प्यार करना होगा और इन भाराओं में से एक को विश्वभाषा के रूप में ग्रहण करना होगा। चूँकि सभी भाषाएँ हम सभी की मिलित संपत्ति हैं इसलिए किसी भी भाषा के अस्तित्व का विरोध हमारे लिए उचित नहीं है। किसी भी भाषा को विजातीय (विदेशी) या जातीय (स्वदेशी) के रूप में चिह्नित करना भी उचित नहीं है।

वर्तमान में अंग्रेजी भाषा को ही विश्वभाषा बनाना उचित है। क्योंकि यह भाषा विज्ञान सम्मत है और व्यापक अंचल में व्यवहृत है। किसी भी सरकार के लिए इसे अस्वीकार करना अन्याय होगा। समय के परिवर्तन पर भावी पीढ़ियाँ किसी अन्य भाषा को भी विश्वभाषा बना सकती हैं। इसी प्रकार हम एक सामान्य संपर्क रक्षक भाषा का व्यवहार करके विभिन्न भाषा

भाषियों के बीच भावों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। इसीलिए आगामी कुछ समय के लिए अंग्रेजी भाषा को ही हम संपर्क-रक्षाकारी विश्वभाषा की स्वीकृति दे सकते हैं। साथ ही हमें याद रखना होगा कि विश्व की सभी भाषाएँ अपनी भाषाएँ हैं। किसी भी भाषा को देशी, विदेशी या राष्ट्रीय भाषा के रूप में देखने से नहीं चलेगा। इसके साथ ही विश्वभाषा को भी विदेशी भाषा सोचना उचित नहीं होगा, या उसके प्रचार-प्रसार को निरुत्साहित करना नहीं चलेगा।

लिपि

वर्तमान विश्व में चार प्रकार की लिपियाँ आर्य भारतीय, सेमिटिक (semitic), पाश्चात्य और चीन-मंगोलीय लिपियाँ हैं। चीन-मंगोलीय लिपियाँ देखने में चित्र जैसी हैं। सभी अक्षर मानो अलग-अलग चित्र हैं। ऐसे १०५५ अक्षर हैं। पाश्चात्य लिपि में अक्षरों की संख्या २० से ३५ है। आर्य भारतीय लिपि की अक्षर

संख्या लगभग ५० है और समितीय (semitic) लिपि में अक्षरों की संख्या २० से ३० के लगभग है।

चीन और जापान चीन-मंगोलीय लिपि को रोमन लिपि में लिखने की जो चेष्टा कर रहे हैं वह विज्ञान सम्मत नहीं है। अरबी, फारसी, ऊर्दू, सिन्धी, कश्मीरी इत्यादि समितीय (सेमिटिक) लिपियाँ हैं, और ये दाहिने से बाएँ लिखी जाती हैं। इस लिपि को लिखना बहुत कष्टकर है, और छापने में बहुत समय लगता है। इस असुविधा से बचने के लिए मलय और अरबी भाषी लोगों ने रोमन लिपि को ग्रहण किया है।

तिब्बत और दक्षिण पूर्व एशिया का लिपिसमूह आर्य-भारतीय लिपि के अन्तर्गत है। ये लिपियाँ काफी अच्छी हैं, लेकिन युक्ताक्षर के मामले में कुछ असुविधा दिखायी देती है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा गया है कि रोमन लिपि सर्वापेक्षा अच्छी है। यह लिपि बहुत ही विज्ञान सम्मत है। स्थानीय

भावावेग के वशीभूत होकर कुछ लोग इस लिपि का विरोध नहीं करेंगे। समानान्तर किसी विज्ञानसम्मत लिपि को विश्व लिपि के रूप में मान लेने के लिए विश्व जनमत को, प्रोत्साहित करेंगे। वर्तमान में रोमन लिपि ही सबसे विज्ञानसम्मत लिपि है। भावी पीढ़ी इससे भी अधिक विज्ञानसम्मत लिपि का आविष्कार करे तो वही विश्वलिपि होगी।

संस्कृति

संस्कृति के सम्बन्ध में लोगों की धारणा बहुत ही अस्पष्ट है। जीवन की विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों का सामूहिक नाम ही संस्कृति है। लोग खाते हैं, आतिथ्य का उपयोग करते हैं, किसी मामले में उल्लासित होते हैं, और अन्य किसी मामले में रो-रोकर बेहाल हो जाते हैं। इसी प्रकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में अपने को अभिव्यक्त करते हैं। इन सारी अभिव्यक्तियों का समाहार ही संस्कृति है। दूसरे के लिए

मंगलजनक न हो उस प्रकार की अभिव्यक्ति को 'कृष्टी' कहते हैं। उदाहरणस्वरूप एक अंग्रेज परिवार ने मेजबानी करने में किसी भारतीय के लिए हो सकता है गोमांस परोसा-जिसे भारतीय अतिथि पसंद नहीं भी कर सकता है। संस्कृति लेकिन वैसी नहीं है। संस्कृति शब्द अच्छे अर्थ में व्यवहृत होता है, और यह सभी के लिए मंगलमय है।

प्रउत के मत से समग्र मानव समाज की संस्कृति एक है। हाँ, इस सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के मामले में कुछ स्थानीय विचित्रता रहती है, लेकिन संस्कृति विश्वव्यापी है। सभी खाते हैं, लेकिन कोई हाथ से, कोई काँटे से तो कोई चम्मच से खाता है। भारतीय नृत्य-मुद्रा पर आधारित है, और यूरोपीय नृत्य छन्दात्मक है, लेकिन केवल इसलिए दोनों को अलग संस्कृति कहना सही नहीं है।

विभिन्न जनगोष्ठियाँ जितना अधिक आपस में मेलजोल रखेंगी उतना ही स्थानीय वैचित्र्य कम होगा। क्योंकि मिलने-जुलने के फलस्वरूप एक ही प्रकार का आचार-आचरण पैदा होगा। नेपाल में इसी रूप में हिन्दू और बौद्ध आचार-आचरण के बीच एक संमिश्रण हुआ है। बंगाल में आर्य और द्राविड़ीय आचार-आचरण का संमिश्रण हुआ है। इस स्थानीय वैचित्र्य को आचार-आचरण कहा जा सकता है। अर्थात् विशेष-विशेष जनगोष्ठियों के निजी वैशिष्ट्य के अनुसार अभिव्यक्ति को आचार-आचरण कहा जा सकता है, लेकिन सारी अभिव्यक्तियाँ संस्कृति हैं। अतएव भाषा और संस्कृति के अनुसार सीमा का निर्धारण करना भ्रांतिविलास मात्र है। भारतीय संस्कृति और विश्व संस्कृति एक ही है। आचार-आचरण के अनुसार भी सीमा-निर्धारण संभव नहीं है, क्योंकि एक ही अंचल में विभिन्न प्रकार के आचार-आचरणों की उपस्थिति देखी जाती है।

परिवार नियोजन और जन्म नियंत्रण

अनुक्रमणिका

निहित स्वार्थ के ध्वजाधारी लोग जन्म-दर में वृद्धि का समर्थन नहीं करते क्योंकि जन्म-दर बढ़ने पर जागतिक संपदा उस वृद्धित जनगण के साथ बँटवारा करने से उनकी संचित संपत्ति में कमी आ जाएगी। पूँजीवादी लोग चाहते हैं कि बुद्धिजीवी लोग निश्चिह्न हो जाएँ, उससे उनका शोषण का पथ निष्कंटक होगा। साधारणतः मध्यम श्रेणी से ही बुद्धिजीवी पैदा होते हैं। इन मध्यम लोगों की संख्या कम करने के ही उद्देश्य से पूँजीवादी लोग परिवार नियोजन जन्म नियंत्रण को प्रोत्साहित करते हैं। इसलिए पूँजीवादी लोग ही इस परिवार नियोजन और जन्म नियंत्रण के उद्भावक उत्प्रेरक हैं।

युग-युग से मानते चले आ रहे कुसंस्कारों के वशीभूत होकर साधारण लोग जन्म नियंत्रण के रास्ते नहीं चलते। केवल मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी लोग ही इस राह पर कदम बढ़ाते हैं और पूँजीवादियों के फैलाए फन्दे का शिकार बनते हैं। प्रउत व्यवस्था

इसके बिल्कुल विरुद्ध आचरण करेगी। विश्व के लोगों के भरण-पोषण के लिए काफी संपत्ति है। विज्ञान की अग्रगति के साथ ताल मिलाकर आगे बढ़ने से ऐसा भी समय आएगा जब मनुष्य टैबलेट खाकर ही जीवन धारण कर सकेंगे। कृत्रिम उपाय से स्वाभाविकता को रुद्ध किए बिना प्राकृतिक परिवेश के साथ किस तरह सामंजस्य की रक्षा की जाए, उसकी उद्भावना में ही मनुष्य का असली महत्त्व है।

कृत्रिम जन्म नियंत्रण का अर्थ - पुरुष या नारी की प्रजनन क्षमता को कृत्रिम रूप से रुद्ध कर देना है। इससे मानव शरीर और मन पर कई विपत्तिजनक प्रति क्रियाएँ दिखाई पड़ती है। इस कृत्रिम बंध्याकरण के फलस्वरूप ग्रन्थि और ग्रन्थि से निकले हार्मोन में कुछ परिवर्तन होता है। और अंततोगत्वा वह मन के विकाश को बाधित करता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप व्यक्ति 'खोजा' में परिणित हो जाता है। प्रउत के अनुसार जो

बहुत ही प्रतिद्वंदी और जन्मजात अपराधी हों उन्हीं की प्रजनन क्षमता को कृत्रिम रूप से रुद्ध किया जा सकता है।

रसायनागार-जातक

ऐसा एक दिन अवश्य आएगा जब मनुष्य रसायनागार (लैबोरेटरी) में टेष्ट ट्यूब बेबी पैदा करेंगे। इसी प्रकार मनुष्य की सृष्टि जब व्यापक तौर पर सफल होगी तब प्रकृति ने जिस रूप में आदिम मनुष्य आष्ट्रोलोपिथेसिन से लगातार मानव शरीर में विभिन्न विवर्तन लाए हैं ठीक वैसे ही प्रजनन क्षमता भी लुप्त कर देगी। जब मनुष्य में प्रजनन क्षमता नहीं रहेगी, और जब मानव शिशु रसायनागार में ही पैदा होंगे। मानव सभ्यता के आगामी उस युग की चर्चा बहुत ही कौतुहलोद्दीपक होगी।

सृष्टि शीलता मनुष्य की स्वाभाविक प्रवणता है। इस प्रवणता से प्रोत्साहित होकर मानव कुछ नई सृष्टि करता है। नया आविष्कार करता है, गवेषणा में ध्यान देता है। सृष्टि की इसी प्रेरणा से मनुष्य अपने आत्मज आत्मजा पैदा करने का प्रयासी होता है। सृष्टि की इस अभीप्सा से जब मनुष्य अपने अंतःकरण में ही अंतरतम को तथा परमचैतन्य को अनुभव करने का प्रयासी होता है तब उसे ही प्रेम कहते हैं। आध्यात्मिक साधना ही उस अनुभूति को अभीष्ट में रूपांतरित करती है। अन्यथा सृष्टि की इस प्रवणता को 'काम' (Sexual impulse) की आख्या देना ही श्रेय है। सृष्टि की आकुलता के एक महत्त्वपूर्ण भाग का अपचय इस काम में होता है। जब रसायनागार में ही मानव शिशु की उद्भूति होगी, और जब प्रकृति मनुष्य की प्रजनन क्षमता का हरण कर लेगी, तब मनुष्य की उवृत्त सृष्टि-प्रवणता शुभ पथ पर संचालित हो जाएगी, और उसके फलस्वरूप उन्नततर उद्भावना और आविष्कार के पथ से होकर मनुष्य अपने जीवन के महत्तम लक्ष्य में उद्भाषित होगा। मनुष्य की इस सृष्टि-प्रवणता की ऐसी

उपयोगिता की धारणा इसके पहले कभी भी नहीं की गयी थी। मनुष्य के इस सृष्टि सामर्थ्य की सुविशाल सर्व व्यापकता का उद्भावन अब तक किसी ने नहीं की थी। यही प्रउत की नवीनता है। इसीलिए दर्शन के जगत् में प्रउत एक नवविधान है।

गवेषणागार में यांत्रिक और जैविक दो प्रकार के मानव तैयार होंगे। यांत्रिक मानव शिशु विद्युत शक्ति से चालित पुतले जैसे होंगे। शरीर के अंदर के विभिन्न उपकेंद्रों से शरीर के विभिन्न भाग परिचालित होंगे। इन्हें स्नायुकोष या स्नायुतंतु नहीं होंगे। स्नायु न रहने के कारण वे साधना भी नहीं कर सकेंगे, सुख-दुःख की अनुभूति भी नहीं होगी। उनमें प्रजनन क्षमता भी नहीं रहेगी। वे अपने प्रभु के निर्देशानुसार आज्ञाकारी भृत्य की तरह मूक रहकर मानव सेवा करते रहेंगे ।

यांत्रिक मानव की तुलना में जैव-मानव काफी त्रुटिमुक्त होगा। शुक्राणु और डिम्बाणु दोनों के रासायनिक योग होने के कारण रसायनागार में ही इन्हें तैयार करना सम्भव होगा। शुक्राणु और डिम्बाणु के मिलन से जिस भ्रूण की सृष्टि होती है वह भी विशेष क्रिया से करना सम्भव होगा। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप जो शिशु पैदा होगा उसे ही रसायनागार -जातक कहा जाएगा। इस पद्धति से त्रुटिहीन रूप में सारे अवयव, यहाँ तक कि मस्तिष्क भी सृष्ट करना सम्भव होगा, लेकिन मानव मन तैयार करना मनुष्य के साध्यातीत है। मानव इतिहास की स्वाभाविक विवर्तन धारा में जैसा होता आया है, ठीक वैसे ही रसायनागार जात भ्रूण के साथ प्रकृति एक विदेही मन को संयुक्त २.र देगी। रसायनागार जातकगण क्यों संस्कारमुक्त नहीं होंगे, या पूर्वजन्म के कर्मफल का भोग करेंगे उसकी व्याख्या यहीं निहित है। चिकित्सा विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ स्वाभाविक मनुष्य की अपेक्षा रसायनागार जातकगण दीर्घजीवी होंगे। यहाँ तक कि भविष्य में यह भी सम्भव होगा कि रसायनागार जातक लोग

अपने अंग प्रत्यंगों को खोलकर केवल मस्तिष्क लेकर किसी भी जगह जा सकेंगे। रसायनागार जातक के विभिन्न अंगों को परिवर्तित करना भी सम्भव होगा, लेकिन मस्तिष्क (Brain) को परिवर्तित नहीं किया जा सकेगा। कारण मस्तिष्क ही संस्कारों का आधार है, इसलिए मस्तिष्क परिवर्तन का अर्थ व्यष्टित्व का परिवर्तन ही हुआ। मस्तिष्क स्नायुकोशों का समाहार है, और सार्विक तौर पर वही उसका व्यष्टित्व है। स्नायुकोशों में परिवर्तन लाए बिना अर्थात व्यष्टित्व के परिवर्तन के बिना मस्तिष्क का परिवर्तन करना सम्भव नहीं है।

रसायनागार जातक व्यवस्था की अग्रगति के फलस्वरूप प्रकृति मनुष्य की प्रजनन क्षमता का हरण कर लेगी, और तब फिर मनुष्य प्राकृतिक रूप से मनुष्य की सृष्टि नहीं कर सकेगा। उस समय वे केवल रसायनागार जातक ही पैदा करेंगे। रसायनागार जातकों में सुख-दुःख की अनुभूति रहने पर भी उनका जो लालन-पालन करेंगे उनके प्रति बहुत अधिक

आकर्षण नहीं रहेगा। विज्ञान की अग्रगति के फलस्वरूप चूँकि वे एक टेबलेट खाकर ही कई दिन बिता सकेंगे, इसलिए उन्हें बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। चूँकि वे रसायनागार में रासायनिक यौगिक से पैदा होंगे इसलिए उनके बीच पारिवारिक बन्धन भी नहीं रहेगा। क्रमशः उनके अन्दर जागतिक सुखभोग के प्रति उदासीनता पैदा होगी। यह सोचना निराधार नहीं होगा कि ऐसा एक दिन आएगा जब रसायनागार जातक लोग सोचेंगे किं प्रकृति ने अपना सारा माधुर्य खो दिया है, उन्हें जीवित रहने का उत्साह नहीं मिलेगा और खाद्य में भी रूचि नहीं रहेगी। इसके सम्बन्ध में अधिक न सोचना ही श्रेयस्कर है। लेकिन इसके साथ ही यह भी सही है कि ये रसायरागार जातक लोग अपनी अपूर्णता के सम्बन्ध में सचेत रहेंगे, और महान साधक बनेंगे। चूँकि उनके हाथों असीमित समय रहेगा इसलिए वे अधिक-से-अधिक साधना में रत रहेंगे।

राजनैतिक दल

अधिकांश राजनैतिक नेता या तो जड़ जागतिक हैं या मानसिक अपराधी हैं। जनसाधारण को इन अपराधियों के कराल दृष्ट से बचाना होगा।

वर्तमान की इस दलीय राजनीति के विरुद्ध प्राउटिष्टों को लड़ना होगा। प्राउटिष्ट लोग राजनीति या राष्ट्रविज्ञान के विरोधी नहीं हैं, लेकिन पेशेवर राजनयिकों के विरूद्ध उन्हें लड़ना ही होगा। राजनीति करने का अधिकार केवल सद्विप्रों को रहेगा। अन्य लोगों को राजनीति के आँगन से झाड़ू मारकर विदा करना होगा। राजनैतिक नेतागण मुँह से अहिंसा का नारा लगाने पर भी पुलिस के सुरक्षा घेरे के अन्दर रहते हैं और चण्डशक्ति पर निर्भर हैं। शक्ति का स्थूल रूप ही चण्डशक्ति है। सद्विप्र लोग बोधि और बुद्धि की शक्ति को काम में लाएँगे। बोधि के इशारे पर चण्डशक्ति उनके भृत्य की तरह काम करेगी। अतएव कहना न

होगा कि राजनैतिक नेताओं की अपेक्षा सद्विप्र लोग अधिक शक्तिमान हैं।

संघात / निरस्त्री करण

संघात जीवन का अपरिहार्य उपादान है। जीव विज्ञान के अनुसार अन्तर्निहित सामर्थ्य ही जीवन है, और बाह्य अथवा जागतिक दृष्टि से देखने पर भारसाम्यहीनता से भारसाम्य में प्रतिष्ठित होने का अविराम प्रयास और संग्राम ही जीवन है। विश्व में सर्वत्र यह संघात विराजमान है। यह संघात क्यों हैं? सृष्टि के रहस्य के उन्मोचन से यह परिलक्षित होता है कि सृष्टि का प्रारम्भ बिन्दु तथा चक्रनाभि से लगातार सृष्टि के पहले दौर में अर्थात् सञ्चर धारा में अविद्या ही सृष्टिकर्ता भूमामन की एकमात्र संचालन शक्ति है। इस क्रम में विद्या तथा आध्यात्मिक शक्ति की कोई भूमिका ही नहीं थी, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्तुतः विद्या और अविद्या के संग्राम में विद्या के पराभूत हो

जाने के कारण चक्रनाभि से शुरू हुई सृष्टि की विकाशधारा 'द्वितीय क्रम में अर्थात् प्रत्याहार (प्रति सञ्चर) धारा में चक्रनाभि में लौट जाने के समय विद्या ही एकमात्र केन्द्रानुगा गति को रसद पहुँचाने वाली है। यहाँ भी अविद्या संग्रामरत है लेकिन पराभूता है। सारात्सार यह है कि हर क्रम में विद्या और अविद्या के संग्राम के फलस्वरूप ही बाह्य अथवा आभ्यन्तरीण विकाशधारा प्रवाहमान है। अविद्या के विजयी होने पर स्थूलीकरण क्रियान्वित होता है, और विद्या के विजयी होने पर क्रियान्वित होती है आभ्यन्तरीण यांत्रा तथा केन्द्र में लौट जाना।

विश्व के प्रकट अथवा अप्रकट हर क्षेत्र में विद्या और अविद्या अन्तहीन संग्रामरत है। चूँकि समाज के बीच ही विद्या और अविद्या का संग्राम विद्यमान है, इसलिए शासन व्यवस्था में जबरदस्त सेना और पुलिस व्यवस्था रहना जरूरी है। यहाँ तक कि हरेक के बीच विद्या और अविद्या का यह संग्राम रहना जरूरी है। यहाँ तक कि हरेक के बीच विद्या और अविद्या का

यह संग्राम सतत् विराजमान है। जो देश निरस्त्रीकरण में मुखर हैं वे भी युद्ध के लिए अस्त्रों में शान चढ़ाते हैं। इसलिए शान्ति रक्षार्थ विश्वराष्ट्र प्रतिष्ठित होने के बाद भी पुलिस-सेना की जरूरत रहेगी ही।

शिक्षा व्यवस्था

गणतान्त्रिक व्यवस्था में विश्वविद्यालय सम्बन्धी मामलों में शिक्षाविद् राजनैतिक नेता नाक घुसेड़ते हैं। वे लोग शिक्षा का कुछ भी न समझते हुए भी अपने मतवाद को जनसमर्थन पुष्ट बनाने के लिए भावावेग पैदा करने के उद्देश्य से शिक्षा व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हैं। इसे छोड़कर उनका कोई दूसरा उद्देश्य नहीं होता। गणतान्त्रिक व्यवस्था में वोट प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए, जनसमर्थन करने के लिए ही ये राजनैतिक नेतागण भावावेग पैदा करने के लिए सर्वात्मक भाव से सचेष्ट होते हैं। कम्युनिष्ट शासनाधीन देशों में मार्क्सवाद को छोड़ दूसरे किसी

मतवाद का प्रचार निषिद्ध है। साम्यवाद का समर्थन करने के लिए जनता को बाध्य किया जाता है। जिन प्रतिष्ठानों का शिक्षागत मूल्य हैं उनके परिचालन का दायित्व राजनीतिवालों का नहीं शिक्षाविदों का ही रहना चाहिए। रेडियो, टेलीविजन परिचालन का दायित्व भी शिक्षाविदों पर न्यस्त होना उचित है। अन्यथा जिस तरह सत्तासीन राजनैतिक दल विश्वविद्यालय से अनुमोदित पुस्तकों में अपने मतवाद का प्रचार करते हैं, ठीक उसी तरह रेडियो, टेलीविजन में भी उस अवसर का अपव्यहार करेंगे।

आनन्द परिवार / शक्ति केन्द्र की स्थापना

आनन्द परिवार तथा विश्वजनीन आध्यात्मिक परिवार की स्थापना केवल विश्वराष्ट्र के ऊपर नहीं, विश्वजनीन सरकार के ऊपर निर्भरशील है। और भी स्पष्ट रूप से कहें तो विश्वजनीन सामाजिक व्यवस्था ही आनन्द परिवार है। प्रश्न है कि कैसे उस

प्रकार का परिवार गठित होगा। हाँ, वह वास्तविक रूप विप्लव के माध्यम से लेगा - वह विप्लव गणतान्त्रिक हो सकता है, और अगणतान्त्रिक भी हो सकता है, अथवा पिरामिडीय, प्रासाद विप्लव या आणविक विप्लव हो सकता है। सभी प्रकार के विप्लवों में आणविक विप्लव ही सर्वोत्कृष्ट है। परमचैतन्य ही सृष्टि के मध्यमणि हैं। विप्लवियों का भी लक्ष्य उसी परम चैतन्य की प्राप्ति है। इस लक्ष्य पर स्थिर रहकर विप्लव करने के लिए विप्लवीगण चाहे जो भी करें आखिरकार वे अपने यात्रापथ के अन्तिम बिन्दु पर पहुँच जाते हैं। विप्लव का एक आदर्शगत लक्ष्य आवश्यक है। सारांश बात यह है कि जागतिक, मानसिक और आध्यात्मिक - विश्व के इन तीन शक्तिकेन्द्रों को नियंत्रित करना ही विप्लव है।

गणतान्त्रिक परिवेश में जनसाधारण को प्रउत चेतना से समृद्ध किया जा सकता है, और निर्वाचन में भी उस चेतना का

प्रभाव पड़ सकता है। यहाँ तक कि निर्वाचन होने के पहले ही समाज परिवर्तन के उद्देश्य से यह चेतना विप्लव ला सकती है।

सद्विप्र

सद्विप्र और नीतिवादी समानार्थक शब्द नहीं हैं। साधकों में से जो समाजचक्र के केन्द्रबिन्दु का नियंत्रण करते हैं वे ही सद्विप्र हैं। सद्विप्रगण इस केन्द्रबिन्दु को नियंत्रित करके एक श्रेणी पर दूसरे श्रेणी के शोषण को रोक देंगे। जरूरत होने पर वे तीव्र शक्ति सम्पात की सहायता से समाजचक्र में तेजी लाकर विप्लव संघटित कर सकते हैं। समाजचक्र के परिघूर्णन के फलस्वरूप जब वैश्य श्रेणी का आधिपत्य स्थापित होता है और अन्य श्रेणियों पर उनका शोषण चलने लगता है, तब सद्विप्रगण विप्लव के द्वारा समाजचक्र में परिवर्तन लाकर क्षात्र आधिपत्य स्थापित करेंगे।

सुरक्षा

हर व्यक्ति राष्ट्र की सुरक्षा चाहता है। सुरक्षा का यह दावा हमेशा बढ़ रहा है। दायित्व-वृद्धि का अर्थ है कर्तृत्व (अधिकार) की वृद्धि। पुराकाल में आभ्यन्तरीण और बाह्य विश्रृंखलता से जनगण की रक्षा करना ही राष्ट्र का एकमात्र दायित्व था। वर्तमान में सतत् वर्तमान दावे के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र का दायित्व जिस प्रकार बढ़ा है, कर्तृत्व भी वैसा ही बढ़ा है। पुराकाल में राष्ट्र से कोई भोजन और रोजगार का दावा नहीं करता था। उस समय अनशन भी नहीं होते थे, जनसभाएँ भी नहीं होती थीं। अब जनता चाहती है कि राष्ट्र अपना दायित्व समझे, लेकिन किसी भी मामले में हस्तक्षेप वे नहीं चाहते।

प्रउत का अभिमत है कि हम लोग कभी भी मूल जनस्वार्थ अथवा मौलिक सिद्धान्त के विरूद्ध नहीं जायेंगे। मौलिक सिद्धान्त है कि दायित्व की वृद्धि के साथ-साथ राष्ट्र के अधिकार भी बढ़ जायेंगे। लेकिन अधिकार जताने के लिए जनता के भावावेगो का विरोध करना उचित नहीं होगा। जीवनधारण के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की निश्चितता ही मौल जनस्वार्थ है।

प्रश्न उठ सकता है कि आवश्यकताओं की पूर्ति की निश्चिंतता प्रदान करना क्या सरकार के लिए उचित है? सरकार को यदि चावल, दाल, नमक, तेल इत्यादि सभी को आपूर्ति करनी पड़े तब तो स्वाभाविक रूप से राष्ट्र को नियंत्रित (Control) करने की व्यवस्था लागू करनी होगी, और वैसा बहुत लोग नहीं चाहेंगे। इसलिए प्रउत का अभिमत है कि उन प्रयोजनों की पूर्ति के उपयुक्त क्रयक्षमता प्रदान करने की व्यवस्था को सुनिश्चित करना। वैसी स्थिति में सरकार को कुछ

भी नियंत्रण नहीं करना होगा। सभी की न्यूनतम माँग के अनुसार योग्यवस्तुओं की आपूर्ति करने का और एक अवगुण यह है कि जनगण आलसी और कर्मविमुख हो जायेंगे। इसलिए जनगण के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अवदानों के बदले उन्हें क्रयक्षमता की आपूर्ति करना उचित है।

वैचित्र्य ही प्रकृति का विधान है। इसलिए न्यूनतम आवश्यकताओं का कोई बंधा-बँधाया नियम नहीं हो सकता। स्थान-काल-पात्र में परिवर्तन के अनुसार न्यूनतम आवश्यकताएँ भी परिवर्तित होंगी। जिनका शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक अवदान अधिक हो, सामान्य लोगों की अपेक्षा कुछ अधिक दावा उनका रह ही सकता है। उनके लिए विशेष सुयोग-सुविधा की व्यवस्था करनी होगी। भोजन, वस्त्र, आवास शिक्षा और चिकित्सा जैसी कुछ चीजें न्यूनतम आवश्यकताओं के अन्तर्गत आती हैं।

कुछ भी स्थिर नहीं है, सब कुछ गतिमय है। इस कारण स्थान-काल-पात्र में परिवर्तन के साथ-साथ न्यूनतम आवश्यकताएँ और विशेष सुयोग-सुविधाएँ भी परिवर्तित हो जायेंगी। इस मामले में प्राउटिष्ट लोग किस पथ का अवलम्बन करेंगे? न्यूनतम आवश्यकताओं और विशेष सुयोग-सुविधाओं के बीच के अन्तर को कम करने का अन्तहीन प्रयास अव्याहत रहेगा। इस प्रयास के एक स्तर पर विशेष सुयोग-सुविधाएँ जनसाधारण की न्यूनतम आवश्यकताओं के रूप में गिनी जाएँगी, और उसी स्तर पर असाधारण प्रतिभासम्पन्न लोग विशेष सुयोग-सुविधा के रूप में और भी अतिरिक्त सुयोग-सुविधाएँ पायेंगे। भारत की परियोजना पर्षद द्वारा प्रणीत तृतीय पंचवर्षीय परियोजना का एक असत् चित्र उभर कर आया है। इसमें एक ओर है सरकार का अव्यवस्थित और अपरिकल्पित कर्म सूची को अपनाना और दूसरी ओर है निहित स्वार्थ द्वारा परिकल्पित शोषण का समर्थन । अत्यधिक विनियोग किए जाने पर भी श्रमिक लोग जरूरतों की पूर्ति के लायक पर्याप्त

क्रयक्षमता के अधिकारी नहीं हो सके। परिणामस्वरूप कम क्रयक्षमता के कारण श्रमिकों को जिस प्रकार कम खाद्य वस्तुएँ मिलीं, दूसरी ओर विनियोग करने वाले लोगों ने अधिक क्रयक्षमता के अधिकारी होने के कारण अधिक भोग्य वस्तुओं का संग्रह किया है, और उसके फलस्वरूप सम्पत्ति के भोग के क्षेत्र में विशाल असमानता हुई है। अर्थनीति अपना सन्तुलन खो बैठी है। विनियोजित पूँजी के मुनाफे के सिंहभाग का उपयोग विनियोग करने वालों ने किया है और मजदूरों के हिस्से में बहुत छोटा सा भनांश आया है। इसलिए भारत के स्वाधीन होने के पहले मध्यवित्त लोगों का अस्तित्व जैसा था, अब उस प्रकार का मध्यवित्त नहीं है। अब विशुद्ध श्रमिक ही तथाकथित मध्यवित्त हैं।

मानव एकता सम्पूर्णतः आदर्शगत एकता है, अर्थात् मानसिक जगत् की एकता है। मानसिक जगत् की एकता ही जागतिक जगत् में प्रतिफलित होती है। एकता के परिभू में एकता

हमेशा मानस-संजात है। आदर्शगत एकता का तात्पर्य है मन के सूक्ष्मतर स्तर की एकता लेकिन हम यदि किसी गोष्ठी के ऊपर किसी अन्य गोष्ठी के शोषण को प्रोत्साहन दें तो, इस मानसिक या आदर्शगत एकता में भी दरार पड़ सकती है। इस एकता को बरकरार रखने के लिए समाज में किसी प्रकार के शोषण का अवसर रहने नहीं दिया जाएगा। और इस एकता को सुनिश्चित करने के लिए और शोषित जनसाधारण के स्वार्थ को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से हमें एक नयी समाजव्यवस्था का प्रवर्तन करना होगा। इसलिए एक उचित सामाजिक संश्लेषण के लिए तथा आदर्शगत एकता के लिए सर्वजनीन एक दर्शन का प्रयोजन है। लेकिन जागतिक स्तर पर शोषण बन्द करने के लिए और भी जिन उपादानों की जरूरतें हैं एक सर्वजनीय संविधान, एक सर्वजनीन दण्ड संहिता, और जीवन धारण के लिए उपयोगी न्यूनतम आवश्यकताओं के वस्तुसमूह की सुनिश्चित आपूर्ति।

चूँकि एक जनगोष्ठी अन्य जनगोष्ठी के साथ किसी-न-किसी रूप में सम्बन्धित है इसलिए समग्र मानव समाज में इन उपादान समूहों की आपूर्ति की व्यवस्था का रहना उचित है। अभी तक जनता के विश्वासों, स्थानीय आचार-आचरणों, प्रथाओं, रीति-नीतियों इत्यादि के आधार पर विधि-संहिता तैयार हुई है। साधारणतः स्थानीय आचार-आचरण और प्रथा-प्रकरण मौलिक मानवीय नीति के विरूद्ध नहीं जाते, लेकिन कभी-कभी विरूद्ध म भी जाते हैं। इन्हीं विश्वासों के आधार पर विधि-संहिता रचित हुई है। विधि-संहिता रीति-नीतिओं को अंशतः मानती है, पूरी तरह नहीं मानती। उदाहरणस्वरूप इस्लाम रीति-नीति के अनुसार सूद लेना पाप है लेकिन इस्लाम देश समूह की विधि संहिता सूद लेने को अपराध नहीं मानती।

पाप और पुण्य

यम-नियम के विधान के अनुसार अथवा नीतिवाद के मौलिक सिद्धान्त के अनुसार सत् कर्म ही पुण्य है और उसके विरूद्ध कर्म ही पाप है। व्यासदेव ने एक श्लोक में सुन्दर ढंग से व्याख्या करके पाप-पुण्य की संज्ञा निर्धारित की है -

'अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम् ।।"

अष्टादश पुराणों के मध्य व्यासदेव के दो वाक्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं - परोपकार ही पुण्य है।

सामूहिक स्वार्थ की सेवा तथा समाज की गति में द्रुति लाना ही पुण्य है। समाज की गति को रुद्ध करने का प्रयास ही पाप है।

प्रउत पाप और अपराध के बीच कोई अन्तर नहीं रखना चाहता और इसी कारण मूल मानवीय नीति के आधार पर ही दण्ड संहिता का संरचित होना उचित है। यम-नियम की विधियों को मानकर चलना ही मौलिक मानवीय नीतियों को मानकर चलना है और अवमानना करना ही मौलिक मानवीय नीति का विरोध करना है। यम-नियम का उल्लंघन जिस प्रकार पाप है उसी प्रकार अपराध भी है। मानव समाज की विधि संहिता की रचना के समय प्राउटिष्ट लोग स्थानीय विश्वास या प्रथा को महत्त्व नहीं देंगे। तुम लोग तो जानते ही हो की इस आपेक्षिक जगत में कुछ भी बेदाग नहीं है। इसलिए यही स्वाभाविक है कि विश्व की विचार व्यवस्था भी वह चाहे अतीत की हो, वर्तमान की हो या भविष्य की हो-कुछ भी क्यों न हो- कभी बेदाग नहीं हो सकती। इसलिए इस त्रुटिपूर्ण विचार व्यवस्था के आधार पर किसी को प्राणदण्ड देना उचित नहीं है। चाहे अपराधी हो अथवा निरपराध हो, हरेक व्यक्ति समाज के समक्ष अपने स्वभाव के संशोधन का मौका प्राप्त करने का दावा कर सकता है। इसलिए

प्रउत की न्याय व्यवस्था में हर व्यक्ति को अपने स्वभाव चरित्र के संशोधन का मौका मिलेगा। यदि किसी को प्राणदण्ड से दण्डित किया जाय तो वह उस सुयोग से वंचित होता है। इसलिए प्रउत इस प्रकार के दण्ड को स्वीकृति नहीं देता। लेकिन जहाँ कोई व्यक्ति दानव प्रकृति का बन गया है और सामूहिक स्वार्थ का विरोध करता है, और उसके स्वभाव में सुधार की कोई सम्भावना ही नहीं है ऐसे विशेष मामले में मृत्युदण्ड देने की परिस्थिति दिखायी पड़ सकती है। उदाहरणस्वरूप युद्धकालीन अवस्था में इस प्रकार का व्यतिक्रम अनुमोदन योग्य है। लेकिन साधारणतः मृत्युदण्ड का समर्थन करना हम लोगों के लिए उचित नहीं है। कानून के उल्लंघन की मात्रा के अनुसार दण्ड का होना उचित है।

विश्वराष्ट्र का एक विश्व संविधान और विधि-संहिता का रहना जरूरी है, और पुलिस - सेना भी रहना जरूरी है।

अनुक्रमणिका

एकता और संश्लेषण

वास्तव में विभिन्नताओं के बीच साधारण एकता के सूत्र को प्रउत ग्रहण करता है, और संघातमय स्वार्थ समन्वित विभिन्न गोष्ठियों या समष्टि की विभेद प्रवणता को निरुत्साहित करके इस साधारण सूत्रसमूह को ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसी प्रकार प्रउत विभिन्नताओं के बीच एकता और संश्लेषण का गीत गाता है।

साम्प्रतिक काल के इतिहास की घटनावली का विश्लेषण करने से ही हम देख पायेंगे कि जब विभेद प्रवणता ने सर उठाया है, और उसे समाजजीवन में आधिपत्य का विस्तार करने दिया गया है तभी अनेकता और शोषण का सूत्रपात हुआ है। कतिपय घटनाओं की ओर दृष्टिपात किया जाय।

जहाँ प्रउत का अभिमत है कि सभी लोगों को विश्व के किसी स्थान पर निवास करने का अधिकार है वहाँ इस अभिमत के आधार पर प्रश्न उठ सकता है कि तिब्बत में चीन का प्रवेश क्या समर्थन योग्य है? निश्चय ही उत्तर होगा 'नहीं', क्योंकि यह अन्तर्देशीय अनुप्रवेश है। सम्प्रसारणवादी मनोभाव का प्रतिफलन है।

उसी प्रकार, सिक्किम और भूटान में नेपालियों का सम्प्रसारण क्या समर्थन योग्य है ? हम लोग यदि इतिहास की घटनावली के कुछ पीछे वापस जाएँ तो देखेंगे कि नेपालियों ने जो नेपाल का त्याग किया था उसके पीछे दुर्भिक्ष के अलावा दूसरा कोई कारण नहीं था। इसलिए इस प्रयास का समालोचित होना उचित नहीं है। लेकिन साम्प्रतिक काल में जिन्होंने 'महा नेपाल' का आन्दोलन शुरू किया है वे नेपाल के भी बन्धु नहीं हैं, भारत के भी बन्धु नहीं हैं। इस आन्दोलन की प्रतिक्रिया नेपाली अधिवासियों के स्वार्थ के विरुद्ध जाएगी। इस आन्दोलन

के समर्थकों की युक्ति पर ही भारत भी नेपाल की तराई के भोजपुरी, मैथिली और बंगलाभाषी अंचल का दावा कर सकता है। लेकिन ऐसी परिस्थिति अवश्य ही वाञ्छनीय नहीं है।

यहूदियों का पैलेस्टाइन तक सम्प्रसारण भी वैसा ही विषय है। शुरू में पैलेस्टाइन यहूदियों के ही अन्तर्गत था अरबी लोगों ने उन्हें हटा दिया था।

उसी प्रकार भारत में पाकिस्तानी अनुप्रवेश को युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता है। यह प्रायोजित घुसपैठ ही प्रमाणित करती है कि यह घुसपैठ सम्प्रसारण के उद्देश्य से प्रणोदित है।

भारत के स्वाधीन होने से पहले स्ट्याफोर्ड क्रिप्स ने तीन विभाजनों के समन्वय से भारत को एक संयुक्तराष्ट्र बनाने का

प्रस्ताव दिया था। असम और बंगाल एक विभाग में थे। पंजाब, बलूचिस्तान सीमान्त प्रदेश और सिन्धु को मिलाकर और एक विभाग था। अविभाजित भारत के अन्यान्य अंचलों को लेकर तृतीय विभाग था। भारत को छोड़कर अन्य दो विभागों में कुछ ही दिनों के अन्दर अन्य सम्प्रदाय को अल्पसंख्यक में बदल सकेंगे समझकर मुसलमानों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था। जो भी हो, असम ने इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया था।

श्रद्धेय अखिल भारतीय नेताओं के भाषा आधारित राज्य निर्माण के फलस्वरूप भारत के पश्चिम कोने में पंजाबी सूबे की माँग उठी है।

इस माँग के नेताओं ने देखा कि अन्य कुछ नेता मुसलमानों के हमदर्द हैं, इसीलिए उन्होंने पंजाब सूबे की माँग उठायी। स्वाधीन पंजाब बनाना ही उनका उद्देश्य था। अतीत में उन्होंने सिखिस्तान की आवाज उठायी थी। सिक्खलोग

अधिकांश उत्तर और पश्चिम पंजाब में रहते हैं। इसके अलावा चूँकि पंजाब में हिन्दू और सिक्ख दोनों एक ही भाषा बोलते हैं और एक ही हिन्दू कानून को मानकर चलते हैं, इसलिए इनके बीच वास्तव में कोई अन्तर ही नहीं है। भारत के स्वाधीन होने से पहले पंजाब में मुसलमान थे कुल जनसंख्या का ५६%, हिन्दू लोग थे ३०% और सिक्ख लोग थे १०%। अभी वहाँ ६०% हिन्दू और ३०% सिक्ख हैं। पंजाब सूबे की माँग आपातदृष्टि से भाषा पर आधारित राज्य की माँग लगने पर भी वास्तव में साम्प्रदायिक है। सचमुच यह एक मजेदार बात है। जिन नेताओं ने भाषामूलक राज्य की माँग की थी वे ही अब सिक्खों की माँग से डरते हैं।

विभेद प्रवणता हमेशा ही सामूहिक जीवन में अनेकता और शोषण पैदा करती है। इस विभेद प्रवणता के विरुद्ध संग्राम में विभिन्नता के बीच जो साधारण सूत्र हैं - प्रउत उन्हें प्रोत्साहित

करता है, और वे ही साधारण सूत्र एकता और संश्लेषण के लक्ष्य में पहुँचाते हैं।

प्रउत के पाँच मूल सिद्धान्त

१) कोई भी व्यष्टि सामूहिक संस्था (Collective body) के स्पष्ट अनुमोदन या अनुमति के बिना भौतिक सम्पदा संचित नहीं कर सकेगा।

यदि कोई सामूहिक संस्था की अनुमति के बिना भौतिक सम्पदा का संचय करता है तो वह अवश्य ही वृहत्तर जनगोष्ठी के स्वार्थ का उल्टा होता है। व्यष्टि स्वाधीनता को समष्टि स्वार्थ के विरुद्ध आचरण करने देना उचित नहीं है यही इस सिद्धान्त का प्रतिपाद्य विषय है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यष्टि स्वाधीनता को कुछ नियंत्रित किए जाने पर भी चूँकि जीवन धारणोपयोगी

न्यूनतम आवश्यकताओं और विशेष सुख-सुविधा प्राप्ति की निश्चितता रहेगी इसलिए जनता किसी असुविधा के सम्मुखीन नहीं होगी।

२) विश्व की सारी जागतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सम्पदा का सर्वाधिक उपयोग और युक्तिसंगत बँटवारा करना होगा।

यह विश्व हम सभी की पैतृक सम्पत्ति है। इसलिए इस विश्व की समस्त जागतिक, अति-जागतिक और आध्यात्मिक सम्पदा का सर्वप्रकार उपयोग करना होगा। किसी भी चीज़ के उपयोग की अवहेलना नहीं होनी चाहिए।

३) मानव समाज के अन्तर्गत व्यष्टिगत और समष्टिगत सभी प्रकार की आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक सम्पदा का सर्वाधिक उपयोग ग्रहण करना होगा।

हर व्यक्ति कुछ न कुछ शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सामर्थ्य से सम्पन्न होता है। अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार समाजसेवा करने के लिए उन्हें उत्साहित करना उचित है। उसी प्रकार विभिन्न जनगोष्ठियों को भी उनकी सामर्थ्य के अनुसार समाजसेवा के लिए उत्साहित करना उचित है। उदाहरणस्वरूप गोरखा लोग चूँकि युद्धकुशल होते हैं।

इसलिए उस गुण की उपयोगिता प्राप्त करने के लिए उन्हें उस प्रकार का विशेष दायित्व देना उचित है। वैसे ही वैज्ञानिक आविष्कार और गवेषणा के प्रति जर्मनों की एषणा की उपयोगिता को ग्रहण करने के लिए उन्हें उस ओर उत्साहित करना उचित है।

४) जागतिक, मानसिक, आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उपयोग समूहों के बीच यथोपयुक्त सामंजस्य बनाए रखना उचित है।

यदि कोई विशेष व्यष्टि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सम्पदा का अधिकारी हो जबकि केवल उसकी शारीरिक सामर्थ्य की उपयोगिता को काम में लाने पर समाज उसकी बौद्धिक और आध्यात्मिक सम्पदा के द्वारा सेवा से वंचित हो जाता है। इसलिए व्यष्टि और समष्टि की उपयोगिता ग्रहण करने के उद्देश्य से उत्साह प्रदान करने की प्रक्रिया में यथोपयुक्त सामंजस्य विधान की व्यवस्था रखनी होगी।

५) देश - काल - पात्र में परिवर्तन के अनुसार उपयोग नीति भी परिवर्तित होगी, और यह उपयोग प्रगतिशील स्वभाव का होगा।

एक विशेष उदाहरण लिया जाय। मान लो, शारीरिक रूप से ताकतवर व्यक्ति का एक रिक्शा चालक के रूप में रिक्शा चलाना बन्द हो जाय तो उसकी शारीरिक सामर्थ्य की उपयोगिता बदल जाएगी। किसी व्यष्टि के शारीरिक रूप में ताकतवर होने के बावजूद बौद्धिकता में ताकतवर होने पर उसकी बौद्धिकता का ही उपयोग लेना होगा। अर्थात् सभी से उपयोगिता ग्रहण करने का रूप एक जैसा नहीं होगा। सर्वोत्तम उपयोगिता - ग्रहण के उद्देश्य से हमेशा नये-नये आविष्कारों के लिए सचेष्ट रहना होगा, और उपयोगिता की प्रक्रिया को भी प्रगतिशील होना होगा।

(जुलाई १९६१, राँची)

अनुक्रमणिका

पिछड़े वर्ग का उत्थान

विश्व की विभिन्न पिछड़ी जनगोष्ठियों की सहायता करना हमारा परम कर्तव्य है। चूँकि वर्तमान विश्व की विभिन्न सामाजिक अर्थनैतिक व्यवस्थाएँ पिछड़ी जनगोष्ठियों की जरूरतों की पूर्ति के प्रति और सामग्रिक तौर पर समाज की उन्नति के प्रति ध्यान न देकर समाज की एक विशेष गोष्ठी की स्वार्थ रक्षा किए जा रही हैं, इसीलिए जनगोष्ठियाँ शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अवदमन का शिकार हो रही हैं।

उदाहरणस्वरूप, मार्क्सवाद में राष्ट्र चूँकि केवल सर्वहारा लोगों की बातें सोचता है, इसलिए जो सर्वहारा नहीं हैं वे

अवदमित और प्रदमित होते हैं। कहा जाता है कि यह व्यवस्था शूद्रों की शासन व्यवस्था है। लेकिन वास्तव में शूद्रों के द्वारा कोई शासन व्यवस्था संचालित नहीं हो सकती। सर्वहारा के एकनायक तन्त्र की धारणा ही अवास्तविक, असम्भव और अवैज्ञानिक है। वास्तविकता की जमीन में मार्क्सवाद की कोई जड़ नहीं है। यह एक उद्भट सिद्धान्त है। इसलिए १९७७ ई. में ही (तत्कालीन) सोवियत रिपब्लिक ने सर्वहारा शासन व्यवस्था जैसी उद्भट धारणा का परित्याग करके कल्याण राष्ट्र की घोषणा की थी। जो भी हो, मार्क्सवाद है एक ताश का महल जो हथौड़ी की हल्की चोट से ही ढह जाएगा। वास्तविक दुनिया में मार्क्सवाद कोई सफलता हासिल नहीं कर सकेगा।

पूँजीवाद में या गणतन्त्र में राष्ट्र यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से संख्यागरिष्ठों का कल्याणकामी है, लेकिन वास्तव में अल्पसंख्यक वैश्यों तथा पूँजीवादियों के स्वार्थ का रक्षक है। और बाकी लोग द्वितीय श्रेणी के नागरिक में पर्यवसित होते हैं।

अनुक्रमणिका

प्रउत की समाज व्यवस्था में सभी का कल्याण ही राष्ट्र का काम्य 'सर्वजन हिताय' है। इस व्यवस्था में कोई भी दमित या अवदमित नहीं होता। प्रउत सद्विप्र के शासन का समर्थन करता है। सद्विप्र लोग चूँकि समाज की सभी श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसीलिए केवल सद्विप्र ही सभी गोष्ठियों के कल्याण को सुनिश्चित कर सकते हैं।

प्रउत के प्रतिष्ठित न होने तक पिछड़ी जनगोष्ठियों में से आदिवासी लोग सबसे अधिक वंचित हैं। त्रिपुरा सहित भारत की विभिन्न जगहों में और विश्व के विभिन्न देशों के आदिवासी दरिद्र और अशिक्षित हैं। उनके सामाजिक आर्थिक उन्नति विधान के उद्देश्य से अविलम्ब विशेष-व्यवस्था करना उचित है। विशेष-व्यवस्था समूहों में होंगे शिक्षा के क्षेत्र में असमानता को दूर करना, व्यापक कुटीर उद्योगों का प्रचलन, स्वस्थ कृषि सहयोगिता, अतिरिक्त सिंचाई की जलापूर्ति, विद्युत समेत

अन्यान्य शक्तियों के उत्पादन में स्वनिर्भरता और रेल तथा टेलीफोन की सहायता से सम्पर्क व्यवस्था का अवसर।

इसके अलावा विश्व की विभिन्न जनगोष्ठियों की संख्या तेजी से कम हो रही है और उनके लोप होने की आशंका है। अविलम्ब इनकी रक्षा की व्यवस्था करना उचित है। इन जनगोष्ठियों में अफ्रीका के जुलू और पिगमी, बंगाल के लोघा, छोटानागपुर के बीरहोर, मालदह के मालो, रोहतास (विहार) जिले के भोजपुरी भाषा-भाषी अंगार, कश्मीर के लद्दाखी, यूरोप के रोमाँस, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के माहुरी और किन्नौर के कास्ट अनुसूचित जाति लोग आते हैं। राढ़ और पार्श्ववर्ती अंचल के कैवर्त्तों की अवलुप्ति की आशंका न रहने पर भी उनका जन्मदर सामान्य जन्मदर से कम है। इस समस्या के समाधान के लिए अविलम्ब सचेष्ट होना होगा।

अनुक्रमणिका

पिछड़े वर्गों के लिए नौकरी और उनकी आर्थिक उन्नति के उद्देश्य से कुछ देशों में आरक्षण की व्यवस्था लागू है। प्रउत आदर्श के अनुसार निश्चय ही आरक्षण व्यवस्था का होना उचित नहीं है। जब प्रउत व्यवस्था का प्रवर्तन होगा, तब चूँकि सभी की प्रगति सुनिश्चित होगी, इसीलिए कोई भी नौकरी में आरक्षण की जरूरत महसूस नहीं करेगा। तब ऐसा एक कर्म संस्थान होगा कि उस समय लोगों को काम खोजना नहीं पड़ेगा, काम ही लोगों को खोजेगा।

जो भी हो, वर्तमान सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में साधारण लोगों की दुर्दशा मिटाने के उद्देश्य से तात्कालिक रूप से निम्नलिखित अग्राधिकार व्यवस्था लागू की जा सकती है :-

- जन्मसूत्र चाहे जो भी हो, पिछड़े, गरीब परिवार के सदस्य को नौकरी और शिक्षा के क्षेत्र में पहले प्राथमिकता मिलेगी।

- ग़रीब है, लेकिन पिछड़ा नहीं है, ऐसे परिवार के सदस्य को द्वितीय प्राथमिकता मिलेगी।

- ग़रीब नहीं किन्तु पिछड़े परिवार के सदस्य को तृतीय अग्राधिकार मिलेगा।

- अन्त में जो ग़रीब भी नहीं है, पिछड़ा भी नहीं है ऐसे परिवार के सदस्य को मौका मिलेगा।

यहाँ पिछड़ा परिवार का तात्पर्य होगा जिस परिवार के सदस्य को अतीत में कोई नौकरी या शिक्षा का अवसर नहीं मिला है। जब तक देश दरिद्रता से मुक्त न हो अर्थात् जब तक सभी की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित न हो, तब तक ये परिवार इन सुविधाओं को प्राप्त करते रहेंगे।

इसी तरह कौन किस जाति में पैदा हुआ है यह न देखकर उस परिवार की आर्थिक अवस्था को देखकर शिक्षा और नौकरी में इस अग्राधिकार सूत्र को मानकर चलना होगा। तथाकथित नीच जाति का कोई मोची यदि धनी हो तो आरक्षण की कोई जरूरत ही नहीं है। और तथाकथित उँची जाति के अन्तर्गत कोई मैथिली ब्राह्मण गरीब हो सकता है। वैसे में उनके लिए आरक्षण की जरूरत है। ऐसे अग्राधिकार के आधार पर आरक्षण व्यवस्था में समग्र समाज की आर्थिक अवस्था में उन्नति होगी।

बहुत से अनग्रसर और उन्नयनशील देशों में पिछड़े वर्ग की प्रगति के प्रश्न पर संघर्ष चल रहा है। जैसे बिहार में जात-पात आधारित तथाकथित उन्नत और अनुन्नत श्रेणियों के बीच गोष्ठी द्वन्द चल रहा है। यदि इस प्रकार की आरक्षण व्यवस्था लागू की जाए तो भारत सहित दुनिया के सभी देशों मे उन्नत और अनुन्नत लोगों के बीच गोष्ठी संघर्ष की सारी संभावनाओं

को दूर किया जा सकेगा। साथ ही सामाजिक न्याय विचार एवं आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने का अवसर भी आएगा। जात-पात, धर्ममत-भाषा-नारीपुरुष विभेद के बिना ही सरकार सबके लिए भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा इत्यादि की प्राप्ति के अनुकूल परिवेश की सृष्टि कर सकेगी। इस पद्धति से पिछड़ों के मन से सारी हीनमन्यता दूर हो जाएगी एवं सभी लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी जीवन यात्रा का निर्वाण करने लायक आय करने का अवसर पा जायेंगे।

सामाजिक अर्थ नैतिक परियोजनाओं के कतिपय पहलू

प्रउत के मतानुसार मानव समाज एक और अविभाज्य है। मानव समाज मानो एक धागे में पिरोई गई विभिन्न प्रकार के फूलों की एक माला है। उस माला का सामग्रिक सौंदर्य निर्भर करता है प्रत्येक फूल के ऊपर वैसे ही यदि हम लोग समाज की एकता और अखण्डता को बनाए रखना चाहते हैं तो समाज के हर स्तर को समानरूप से मजबूत बनाना होगा। किसी देश की समाज व्यवस्था को अच्छी तरह गठित करने के लिए तीन मौलिक चीजें चाहिए। उनमें से प्रथम व्यवस्था है पतंजली ने अपने योगसूत्र ग्रंथ की शुरूआत की थी इसी सूत्र के द्वारा-

"अथ योगानुशासनम्" ।

अर्थात् अब मैं योग की आत्मानुशासन के अनुसार व्याख्या करूँगा। उसी प्रकार एक सुसम्बद्ध समाज व्यवस्था का निर्माण करने के लिए प्रथमतः सामाजिक अनुशासन या व्यवस्था चाहिए। इस दुनिया के कुछ देश अपनी क्षमता तेजी से

खोते जा रहे हैं क्योंकि उनके व्यष्टिगत और समष्टिगत जीवन में कोई व्यवस्था नहीं है। द्वितीयतः व्यष्टिगत या समष्टिगत जीवन में सर्वांगीण प्रगति में एक उचित आदर्शगत उत्साह रहना ही चाहिए। तृतीयतः देश की आर्थिक स्थितिशीलता (टिकाऊपन) को भी बनाए रखना होगा। देश का अर्थनैतिक आधार बहुत मजबूत होना जरूरी है।

सर्वांगीण उन्नति और अग्रगति के लिए भी सुनिर्धारित नीति जरूरी है। इन नीतियों के यथार्थ में बदलने पर वे समाज के अर्थनैतिक- सामाजिक ढाँचे के मूल अंग बन जाती हैं। इसलिए सामाजिक - अर्थनैतिक उन्नयन के साथ यथोपयुक्त परियोजना और कार्यक्रम अपनाना परस्पर जुड़े हुए हैं। चूँकि सामाजिक अर्थनैतिक सिद्धान्तों में स्थानगत पार्थक्य रहता है इसलिए सामाजिक अर्थनैतिक सम्भावना में भी स्थानगत पार्थक्य रहता है। एक ही अंचल के दो भिन्न भागों में जमीन की उर्वरता, श्रम की आपूर्ति इत्यादि उपादान सम्पूर्णरूप से भिन्नधर्मी हो सकते

हैं। इसलिए जरूरत पड़ने पर दोनों भागों के लिए अलग-अलग परियोजनाएँ बनानी होंगी। उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि बिहार के उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व जिलों में बढ़ी हुई या घटी हुई श्रम की समस्या है। अतः इन दो इलाकों के लिए एक जैसी परियोजना ग्रहण करना नितान्त मूर्खतापूर्ण होगा। केन्द्रीय परियोजना में इस प्रकार की समस्याओं के समाधान की चेष्टा की गयी थी लेकिन वह व्यर्थ हो गयी। अथनैतिक विकेन्द्रीकरण में सम्बन्धित क्षमताएँ राज्य सरकार के हाथों में अथवा स्थानीय सरकार के हाथों में छोड़ना उचित है। यदि ऐसा न किया जाय तो विकेन्द्रित अर्थनैतिक कार्यक्रम को यथार्थ रूप प्रदान करना सम्भव नहीं होगा। विकेन्द्रित परियोजना अपनाने के लिए पहले सर्वनिम्न आवश्यकताओं की ओर ध्यान रखकर अर्थनैतिक परियोजना बनानी होगी। ऐसे में ब्लाक के आधार पर बनी परियोजना ही होगी सर्वनिम्नस्तर (basic level) परियोजनाकारों का उद्देश्य होगा ब्लॉकों को अर्थनैतिक रूप से स्वयं सम्पन्न आत्मनिर्भर बनाना ताकि एक सामाजिक

अर्थनैतिक अंचल (Unit) सामग्रिक तौर पर स्वयं सम्पूर्ण बन जाय। वैसा होने पर वास्तविक अर्थों में कोई देश या फेडरेशन अर्थनैतिक दृष्टि से समृद्ध और उन्नत होगा। परियोजना का यही प्रकरण प्रउत के अर्थनैतिक विकेन्द्रीकरण की अभिनवता है।

तो प्रश्न है कि किस तरह यह विकेन्द्रीकरण वास्तविक रूप लेगा। सामाजिक -अर्थनैतिक अंचल तैयार करने की सही पद्धति या आधार क्या होगा ? प्रउत के मतानुसार स्वयं सम्पन्न अर्थनैतिक अंचल या यूनिट पूरे विश्व में बनाना उचित है। ये यूनिटें बनायी जाएँगी निम्नलिखित उपकरणों के आधार पर-

- एक ही प्रकार की अर्थनैतिक समस्या।
- एक ही प्रकार की अर्थनैतिक सम्भावना ।
- जातिगत सादृश्य (ethnic similarily) |

अनुक्रमणिका

- सदृश सांवेदनिक उत्तराधिकार (सेण्टिमेण्टल लिगेसी)।
- सामान्य (common) भौगोलिक विशिष्टता।

इस उपकरण (factor) के आधार पर पूरे भारत तथा पूरे संसार को सामाजिक -अर्थनैतिक अंचल में (socio economic unit) नये सिरे से ढालकर सजाया जा सकता है। ये अंचल केवल भौगोलिक सीमायुक्त ही नहीं होंगे, ये अलग-अलग सामाजिक -अर्थनैतिक अंचल होंगे। यहाँ मूलतः सामाजिक- सांस्कृतिक और अर्थनैतिक विषय ही विवेचित होंगे, धर्ममत या भाषागत विषय नहीं। समृद्ध स्वयंसम्पन्न सामाजिक अर्थनैतिक अंचल की स्थापना करने की धारणा ही फलित प्रउत का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

पूरी दुनिया में सामाजिक - अर्थनैतिक अंचल की स्थापना करने के पीछे युक्ति यह है कि किसी अंचल के अर्थनैतिक उत्थान के लिए तृणमूल स्तर से ही उसकी शुरूआत करनी होगी। इसका अर्थ है अर्थनैतिक उन्नति की गति नीचे के स्तर से ऊपरी स्तर की ओर होगी। उपरसे निचले स्तर की ओर नहीं, क्योंकि यह पुर्णतः अवास्तविक और यूटोपियन है। प्रत्येक सामाजिक अर्थनैतिक अंचल को अपने-अपने निजी अंचलों की अर्थनैतिक परियोजना और कार्यक्रम तैयार करने होंगे और वैसा करने के लिए कई विषयों पर विचार - विवेचना करनी होगी। इसमें प्राकृतिक सम्पदा, जमीन की ढाल, नदियों की अवस्थिति, सांस्कृतिक अवस्था, सम्पर्क व्यवस्था और उद्योग तथा प्रगतिमूलक कार्यक्रम या प्रकल्पसमूह है। ये विषय सामाजिक अर्थनैतिक अंचलों को अर्थनैतिक तौर पर स्वयं सम्पूर्ण और उन्नत बनाने की परियोजना तैयार करने में सहायक होंगे।

अनुक्रमणिका

पूरे देश के अर्थनैतिक उन्नयन के लिए भारत के शासक वृन्द में प्राक् स्वाधीनता पर्व में या स्वाधीनोत्तर पर्व में कोई आन्तरिक प्रयास नहीं था। स्वाधीनोत्तर पर्व को तीन प्रधान स्तरों नेहरू युग, गाँधी युग और जनता सरकार में विभाजित किया जा सकता है - ये तीनों युग वैश्य या पूँजीपतियों के शासन के दायरे में थे और उनका जो एक साधारण वैशिष्ट्य है वह पूँजीपतियों के प्रति सरकार का नरम मनोभाव था। जनता सरकार ने वैश्ययुग के ही अन्तर्गत एक counter movement का प्रतिनिधित्व किया था। यह विप्रों या बुद्धिजीवियों का विप्लव नहीं था अथवा विप्रों की विक्रान्ति (counter revolution) भी नहीं थी। यह केवल एक वैश्य मानसिकता से प्रभाव सम्पन्न आन्दोलन था। यह आन्दोलन पूँजीपतियों के स्वार्थरक्षार्थ ही किया गया था। वैश्यों की स्थिति मजबूत करने के लिए ही शूद्रों और विप्रों की अस्थि और मज्जा चबाकर खाने के लिए और मौका प्रदान कर दिया गया था। चूँकि यह एक counter movement था इसलिए यह अल्पस्थायी हुआ था और शूद्र विप्लव को और नजदीक ले

आया था। फलतः इस समय के दरम्यान कोई अर्थनैतिक उन्नयन नहीं हुआ। अतः प्राउटिष्टों के लिए सामाजिक अर्थनैतिक आन्दोलन खड़ा करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है।

भारत में लगभग चौवालीस सामाजिक अर्थनैतिक अंचल तैयार किए जा सकते हैं। इसके अलावा पूरी दुनिया में अनेक संख्यक सामाजिक अर्थनैतिक अंचल तैयार हो सकते हैं। अधिकांश क्षेत्रों में एक सामाजिक अर्थनैतिक गोष्ठी एक सामाजिक - अर्थनैतिक अंचल का गठन करेगी। लेकिन कुछ मामलों में एक अंचल में एकाधिक सामाजिक -अर्थनैतिक गोष्ठियाँ भी रह सकती हैं। ये गोष्ठियाँ ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व करेंगी जो एक साथ चलना चाहते हैं और इन सभी गोष्ठियों में भाई बहनों का पारस्परिक सम्बन्ध होगा। अतः इस प्रकार की गोष्ठीबद्धता कभी भी मानवता विरोधी नहीं होगी। चाहे मानुष हों या अमानुष जो भी इस सामाजिक एकता को नष्ट करना चाहेंगे

उनके विरूद्ध अवश्य संग्राम करना होगा। एशिया, यूरोप और समग्रविश्व ही असामाजिक और अमानवीय शाक्तियों के विरूद्ध आन्दोलन के समय एकताबद्ध होकर आन्दोलन करना होगा, और वह आन्दोलन विश्व के सभी निपीड़ितों और निर्यातितों का बनकर करना होगा।

लेकिन निहित स्वार्थवादी प्रउत्त के इस प्रायोगिक (applied) पदक्षेप को संकीर्णतावाद की आख्या से अभिहित कर सकते हैं। लेकिन वह क्या यथार्थ है ? प्रउत की सामाजिक - अर्थनैतिक गोष्ठियों के तीन सांस्कृतिक सामाजिक और अर्थनैतिक आधार हैं। लोगों के सभी प्रकार का अभिप्रकाशन ही संस्कृति है। मातृभाषा का व्यवहार ही अभिप्रकाशन का स्वाभाविक और सहजतम उपाय है। मातृभाषा के माध्यम से जनता की जो स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, वह यदि बाधित हो तो उनके मन में हीनमन्यता घर कर जाती है। इसके फलस्वरूप उनके बीच पराजित मनोभाव हो जाता है और अन्ततोगत्वा

मानस - अर्थनैतिक शोषण उन पर चलता है। भारत के कुछ नेताओं के प्रयास से हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में थोपना इसका एक उदाहरण है। हिन्दी उत्तरप्रदेश, बिहार इत्यादि राज्यों के अधिवासियों की स्वाभाविक भाषा नहीं है। इन अंचलों में अनेक स्थानीय भाषाएँ और उपभाषाएँ हैं जिन्हें अविलम्ब प्रोत्साहन देने की जरूरत है। जनता को सांवेदनिक उत्तराधिकार की उपयोगिता प्राप्त करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना होगा, जानना होगा की शोषक कौन हैं? समझना होगा मानस अर्थनैतिक कौशल को और संग्रामी चेतना से जाग्रत होना होगा। भाषा अपने आप में उतना महत्वपूर्ण विषय नहीं है, महत्वपूर्ण विषय सांस्कृतिक, सामाजिक और अर्थनैतिक क्षेत्र में भाषा - साम्राज्यवाद का परिणाम है।

कोई भाषा साधारणतः प्रति एक हजार वर्षों में बदल जाती है, और लिपि हर दो हजार वर्षों के अन्तर पर परिवर्तित होती है। वेद के रचनाकाल में कोई लिपि नहीं थी। ऋग्वेद की

रचना शुरू हुई थी आज से पंद्रह हजार वर्ष पहले, और समाप्त पाँच हजार वर्ष पहले हुई थी। इस प्रकार दस हजार वर्षों तक इसकी रचना हुई थी। प्राचीनकाल में शुरू-शुरू में लोग भेड़ी के चमड़ी पर लिखते थे। बाद में लोगों ने पापिरस पर लिखना शुरू किया। और बाद में पापिरस से कागज बना। बंग्ला भाषा लकड़ी की कलम से लिखी जाती थी और उड़िया लोहे की कलम से लिखी जाती थी। लोहे की कलम से लिखने में कागज जिसमें कट न जाय इसलिए डोड़िया लिपि की आकृति गोलाकार बन गयी।

सभी भाषाओं की अभिव्यक्ति का उत्स एक है।

भौमगोष्ठीगत (geo-racial) पार्थक्य ही रेसों (races) या जातियों के उद्भव का कारण है। अजस्र भाषाओं ने इन विभिन्न जातियों को पैदा किया है। दुनिया में मूलतः चार जनगोष्ठियाँ हैं। वे हैं (१) आष्ट्रिक -जिनका उद्भव हुआ है एशिया में, (२) निग्रोएड जिनका उद्भव अफ्रिका में हुआ है, (३) मंगोलयेड -

जिनका उद्भव मंगोलिया में हुआ है और (४) आर्य जिनका उद्भव मध्य एशिया में हुआ है। आर्यों का आदि निवास है दक्षिण-रशिया में उराल पर्वत के पूरब की ओर, अब काके सस के नाम से परिचित है। तत्कालीन USSR के मुस्लिम प्रधान देश उज्बेकिस्तान, ताजाकिस्तान, अजरबइजान इत्यादि हैं। आर्य जनेगोष्ठी को तीन भागों -नार्डिक, अल्पाइन और भूमध्यसागरीय में विभाजित किया जा सकता है स्कैण्डिनेवियन देशों में नार्डिक आर्यों के देह का रंग लाल और बाल सुनहरे रंग के हैं। जर्मनी और उसके आस-पास के अंचलों में अवस्थित अल्पाइन आर्यों के देह का रंग लालीयुक्त सफेद है। बालों का रंग कालिमायुक्त नीला है और आँखों के तारे नीले हैं। दक्षिण-यूरोप में अवस्थित भूमध्यसागरीय आर्यों के देह का रंग सफेद है, बालों का रंग काला और आँखों के तारे काले हैं। भौम जनगोष्ठीगत परिस्थिति के कारण (geo-racial conditions) स्वरयंत्र (vocal cord) और शरीर की अन्यान्य ग्रन्थिगत संरचना में परिवर्तन आ जाता है। फलतः सामग्रिक तौर पर उच्चारण में और भाषा के अन्यान्य

विषयों में भी प्रभेद दिखाई पडता है। इसलिए अन्यतम उपादान होते हुए भी सामाजिक एकता स्थापित करना या सामाजिक अर्थनैतिक अंचल गठित करने में भाषा एकमात्र आधार बन नहीं सकती।इकि

किसी अंचल की उन्नति सुनिश्चित करने के लिए और भी कई समस्याओं की बातें दिमाग में रखनी होंगी। पहली समस्या उनके लिए है जिन्हें जीविका के लिए अन्य अंचलों में जाना पड़ता है। और तज्जनित असुविधाओं के सम्मुखीन होना पड़ता है। चूंकि हर अंचल में कर्म संस्थानों की काफी गुञ्जाइश है इसलिए जीविका के लिए किसी को भी अपना अंचल छोड़कर जाने की कोई जरुरत नहीं है। जीविका के लिए अन्य अंचल में जाने का अर्थ है व्यर्थ ही दो संसारों का बोझ सिर पर लेना।

द्वितीया., हर अंचल की उन्नति सुनिश्चित करने के लिए एक अंचल से दूसरे अंचल में अर्थ के वहिः स्रोत को अवश्य ही बंद करना होगा। यदि किसी अंचल से अर्थ के बहिःस्रोत को बंद नहीं किया जाय तो वहाँ की प्रति व्यक्ति आय नहीं बढ़ेगी। इसी कारण प्रत्येक सामाजिक अर्थनैतिक अंचल के अधिवासियों का दावा होगा देश के उन्नत अंचल के प्रति व्यक्ति आय के समान न होने तक उस अंचल के राज्य या केंद्रीय राजस्व का 'सौ फीसदी भाग उसी अंचल के उन्नयन के काम में व्यवहार करना। शोषण का मूलोच्छेद करने के लिए आंचलिक संपदा के वहिःस्रोत को बंद करना व्यावहारिक और साहसी पदक्षेप है। जो भी हो, वर्तमान नेतागण ऐसे पदक्षेप लेने का कभी साहस नहीं करेंगे।

तृतीयतः विभिन्न अंचलों के पारस्परिक प्रयोजनों को पूरा करने के लिए वर्तमान निर्यात पद्धति की जगह प्रउत वस्तु-विनिमय (barter) व्यवस्था में प्रोत्साहन देना चाहता है। निर्यात

पद्धति अंत में पूरी तरह वाणिज्यिक और प्रतियोगिता मूलक बन जाती है और शोषणमूलक बन जाती है। (६)

प्रउत का और एक साहसी पदक्षेप आयकर का सम्पूर्ण विलोप है। यदि आयकर को पूरी तरह हटा लिया जाय, और कर योग्य उत्पादन, उत्पादन पर उत्पादन शुल्क मात्र १०% (सैकड़े दस भाग) बढ़ा दिया जाय तो सरकार को राजस्व की कोई हानि नहीं होगी। आयकर न रहने पर कोई भी काला धन रखने की चेष्टा नहीं करेगा। सभी रुपये तब सफेद - होंगे, और उसके फलस्वरूप अर्थनैतिक दीवार मजबूत होगी, व्यवसाय और वाणिज्य बढ़ेंगे, विनियोग और अधिक होगा। इसके अलावा कर्मसंस्थानो में और भी वृद्धि होगी एवं विदेशी मुद्रा का भण्डार वृद्धि होगी एवं विदेश मुद्रा का भण्डार (revenue) बढ़ेगा। आयकर के विलोप का दावा बुद्धिजीवियों को ग्रहन करना उचित है।

इसके अलावा, सर्वोच्च स्तर तक सभी शिक्षार्थियों की शिक्षा को अवैतनिक करना होगा। सभी युवक-युवतियों का रोजगार सुनिश्चित करना होगा। खेतिहरों को सिंचाई के लिए पानी देना होगा; चावल, दाल, आटा, चीनी, खाद्यतेल, किरोसीन इत्यादि अत्यावश्यक वस्तुएँ वर्तमान दर से भी सस्ते में आपूर्ति करनी होंगी।

मूलनीति (fundamental policy) के अनुसार प्रउत छोटे-छोटे राज्यों के गठन का विरोधी है क्योंकि अतिरिक्त व्ययभार के कारण ये नागरिकों के लिए बोझ स्वरुप बन जाते हैं। सामाजिक अर्थनैतिक अंचलों को अलग-अलग उन्नयनमूलक परियोजनाओं का दावा करना उचित है, और उन्हें वास्तविक रूप देने के लिए बजट में अलग संसाधन मुहैया कराने का दावा करना चाहिए। हाँ, किसी-किसी तालुक से सामाजिक अर्थनैतिक अंचल से उन्नयन मूलक प्रकल्पों के रूपायन में

बाधा पैदा किए जाने पर उस अंचल के अलग राज्य गठन की आवाज उठाने के अलावा और कोई उपाय नहीं रहेगा।

प्रउत के सामाजिक-अर्थनैतिक अंचलों का आयतन चिप्रसारणशील होगा। छोटी-छोटी इकाई मिलकर बड़ी-बड़ी इकाई तैयार करेंगी। ऐसा भी दिन आ सकता है तब समग्र दक्षिण-पूर्व एशिया एक इकाई में परिणत होगा। निम्नलिखित चार शर्तें भविष्य में सामाजिक अर्थनैतिक अंचलों के मिलन का आधार होंगी।

१) सामाजिक-अर्थनैतिक विषमता का क्रमावसान,

२) विज्ञान और संचार व्यवस्था में उन्नति,

३) प्रशासनिक दक्षता और

४) सामाजिक-सांस्कृतिक मेल-मिलाप ।

अन्त में, भौम मानसिक (geo-psychological) विशेषता सामाजिक-अर्थनैतिक परियोजना का और एक महत्त्वपूर्ण पहलू (aspect) है। जैसे, पूर्वाद्र अंचल (area) के निवासी दुर्बल और ढालेढीले स्वभाव के होते हैं लेकिन पश्चिमी शुष्काञ्चल के निवासी स्वास्थ्यवान और कर्मठ होते हैं। इसे पूर्वाद्र सिद्धान्त कहा जा सकता है। लेकिन ये विशिष्टताएँ वैयक्तिक सामर्थ्य या दुर्बलता के कारण नहीं हैं। ये भौम मानमिक (geo-psychological) कारणों से पैदा हुई हैं। भारत के मामले में उदाहरण देकर कहा जा सकता हैं कि पंजाबी लोग शुष्क-पश्चिमाञ्चल में निवास करते हैं जिस कारण वे शारीरिक बल से बलवान और कठोर परिश्रमी हैं। लेकिन पूर्वाद्ध अञ्चल के निवासी असमिया लोग अपेक्षाकृत कम परिश्रमी हैं। इसलिए सामाजिक अर्थनैतिक परियोजना के प्रणयन त्काल में इन विषयों को विवेचना में शामिल करना होगा। अतः यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रउत का प्रयोग भौमिक पहलू मानवीय मूल्यबोध के ऊपर प्रतिष्ठित है, अन्य सिद्धान्तों और दर्शनों की तरह भौम राजनैतिक

देशात्मबोध के ऊपर नहीं। जहाँ अन्य सिद्धान्त समाज में केवल शत्रुता और दलबाजी पैदा करते हैं, वहाँ प्रउत के सामाजिक अर्थनैतिक अंचल एक साथ चर्चा के माध्यम से परस्पर समन्वय और सहयोगिता गठित करते हैं। अतः प्रउत के प्रायोगिक पहलू को कभी संकीर्णता के दोष से युक्त कहकर अभिहित नहीं किया जा सकता।

अब कुछ वास्तविक उदाहरण लेकर चर्चा की जाय। किस रूप में विकेन्द्रीकरण निर्धारित कुछ उद्योगों के मामले में लाभकारी हो सकता है उसका उदाहरण दे रहा हूँ। पहले पाट उद्योग को लिया जाय। ब्रिटिश लोगों के चले जाने के बाद बंगाल के अनेक पाटकल बन्द हो गए थे। पाट उत्पादक किसानों के लिए संकट उपस्थित हो गया था। उसी कारण कच्चे पाट को अविलम्ब बेचने के लिए उन्हें क्रेताओं या आढ़तियों की मर्जी पर निर्भर रहना पड़ता था। पाटशिल्प की प्रधान समस्या इन आढ़तियों (middle men) को उखाड़ना है। पाटशिल्प को नष्ट

होने से बचाने के लिए पाट उत्पादकों के लिए उचित उत्पादक समवाय की स्थापना करना है। कच्चे पाट से पाट के धागे तैयार करना और आपूर्ति करना। सूत-वयन के कारखाने पाट उत्पादकों से सीधे पाट के सूत खरीद लेंगे, और बैग, मोटे कपड़े इत्यादि क्रेता समवाय की माँग के अनुसार तैयार करेंगे।

तंबाकू उत्तर भारत में पैदा होता है, दक्षिण भारत में व्यवहरोपयोगी (processed) बनाया जाता है और फिर से उत्तर भारत में लौटाया जाता है। उत्पादक अंचल के किसानों को कच्चे तंबाकू को कटे तंबाकू में परिवर्तित करने की सुयोग-सुविधा मिलनी चाहिए। अर्थात प्रोसेसिंग के लिए एक भाग से दूसरे भाग में तम्बाकू को ले जाने की कोई जरुरत नहीं है। इससे और भी रोजगार मिलेंगे एवं तम्बाकू का दाम घटेगा।

सामवायिक उत्पादन व्यवस्था के माध्यम से दियासलाई उद्योग सफलतापूर्वक ही चल रहा था। बल्कि सरकार ने

दियासलाई के बड़े उत्पादकों को विशेष सहायता देकर इस उद्योग को क्षति पहुँचाई है। दक्षिण भारत में चाय उत्पादन करने के बदले रबर की खेती करना उचित है। यद्यपि इन दोनों की खेती में काफी मात्रा में बारिश की जरूरत है, फिर भी चाय की अपेक्षा रबर का उत्पादन करना अधिक जरूरी और लाभदायक है। किसी भी उत्पादन के लिए उपयोगिता और बाज़ार (बिक्री की संभावना) दोनों का रहना जरूरी है।

इसके अलावा उत्तरी बंगाल में पर्याप्त मात्रा में बारिश के कारण जलविद्युत केन्द्रों का निर्माण करना उचित है। अनारस के पत्तों के रेशे कपड़े तैयार करने में लगाए जा सकते हैं। पुरुलिया का चूना पत्थर सिमेंट के उत्पादन में व्यवहृत हो सकता है; बाँकुड़ा के स्टोनचिप्स रास्ते तैयार करने में व्यवहृत हो सकते हैं। नदिया जिले में गुड़ और दाल का उत्पादन हो सकता है। वीरभूम जिले में जलसंपदा का उपयोग करके काफी मात्रा में मछलियों का उत्पादन किया जा सकता है। और ईख के रेशों का व्यवहार

करके पश्चिम उत्तर प्रदेश में और पंजाब में कागज उद्योग लगाए जा सकते हैं। अब हम लोग अंगदेश और जम्मू एवं कश्मीर के उदाहरण लेकर देखेंगे कि किस तरह सही परियोजनाओं का भारत के निर्दिष्ट सामाजिक अर्थनैतिक अंचलों में प्रयोग किया जा सकता है।

अंगदेश

अंगदेश के स्थानीय आदिवासीगण वहिरागतों के द्वारा शोषित हो रहे हैं। अंगदेशी लोग बहुत ही दरिद्र और संबलहीन हैं 'उनमें से अधिकांश लोग जीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। उन्नत प्रगतिशील पद्धति की कृषि व्यवस्था का अवलंबन करके उनका भाग्य लौटाया जा सकता है।

उदाहरणस्वरूप कहा जा सकता है कि पूर्णियाँ, कटिहार, मधेपुरा और उत्तर भागलपुर में गंगानदी के दक्षिण तीर पर छः मील तक के विस्तृत अंचल में चुनी हुई कुछ अर्थकारी फसलें बहुत अच्छी तरह उगायी जा सकती हैं। इस अंचल में अर्थकारी फसलों के उत्पाद की एक नयी व्यवस्था नीचे दी जाती है-

१) केरल के (हाईब्रीड) वर्णसंकर प्रजातियों के नारियल इसका हर पौधा रोपने के पहले तीन फुट गहरा गड्ढा खोदना होगा और गड्ढे के नीचे पाँच किलो नमक डालना होगा। उस नमक को बालू का स्तर देकर ढंकना होगा। इसके ऊपर नारियल का पौधा सीधा करके लगाना होगा एवं और बालू डालकर गड्ढे को भर देना होगा। जमीन के ऊपर पौधे की जड़ में चारों ओर बालू का स्तूप बनाकर ऊँचा कर देना होगा। उस स्तूप के ऊपर पत्तों की खाद डालनी होगी। यह क्रमशः मिट्टी से मिल जाएगी। यदि बारिश कभी कम हो तो पौधे के लिए स्वाभाविक बारिश का परिवेश तैयार करके पौधों को बारिश की तरह पानी

छोड़कर सींचना होगा। इसी तरह से पौधे स्वाभाविक रूप से बड़े हो जायेंगे।

२) गोलमिर्च की खेतीः यदि गोलमिर्च को नारियल गाछ के पास लगाया जाय तो उसके लिए और किसी अतिरिक्त ज़मीन की ज़रुरत नहीं पड़ेगी क्योंकि गोलमिर्च की लता नारियल गाछ के ऊपर चढ़ जाएगी। गोलमिर्च की खेती में पत्तों की खाद एवं गोबर खाद के अलावा और किसी दूसरी खाद को डालने की ज़रुरत नहीं पड़ती।

३) कुचविहार प्रजाति की सुपारी की खेतीः उसी जमीन पर कुचविहार प्रजाति की सुपारी की खेती बहुत अच्छी तरह की जा सकती है। साल में एक बार बारिश शुरु होने से पहले गोबर की खाद डालनी होगी। सितम्बर और अक्टूबर महीने में सुपारी गाछ की सूखी पत्तियों को छाँटकर गाछों की सफाई करनी पड़ती है।

४) अनारसः अनारस की बहुत अच्छी ऊपज हो सकती है पूर्णियाँ कटिहार और मधेपुरा जिलों के उन अंचलों में जहाँ छः इञ्च से अधिक वर्षा होती है। नमकीन जमीन पर भी अनारस की अच्छी उपज हो सकती है। पूर्णियाँ में सिलिगुड़ी प्रजाति के अनारस की बहुत अच्छी उपज होगी और कटिहार तथा मधेपुरा इलाके में वारुईपुर (कलिकाता) प्रजाति के अनारस अधिक उपयुक्त हैं।

५) लाल मिर्च और हरी मिर्च अंगदेश के उत्तरांश में लाल मिर्च और दक्षिणांश में कालना (वर्धमान) प्रजाति की हरीमिर्च ऋतुकालीन द्वितीय श्रेणी की अर्थकारी फसल के रूप में पर्याप्त मात्रा में उपजायी जा सकती हैं। बावगी (सोवा) हरी मिर्च की खेती दक्षिण अंगदेश में और भी अच्छी होगी। इसकी खेती के लिए सरसों की खल्ली, रेड़ी की खल्ली और करंज की

खल्ली खाद के रूप में डालनी होगी। बीजों से तेल पेर लेने के बाद जो सीठी बचती है उसे खल्ली कहा जाता है।

६) आँब / आम: अंगदेश के उत्तर में मालदह जिले का फजली, लँगड़ा, आश्विना, सुर्यपूरी, लक्ष्मण भोग इत्यादि प्रजातियों के आम बहुत अच्छे उगेंगे। जहाँ जमीन का अभाव है वहाँ इस प्रकार के आम गाछ बड़े बड़े मिट्टी के बरतनों में लगाए जा सकते हैं। इसमें खांद के रूप में व्यवहार करंनी होगी २५% जैविक गोबर खाद, २५% सड़ी-गली खाद, २५% हड्डियों का चूर्ण और २५% ईंट का चूर्ण। हड्डी-चूर्ण के बदले मरे हुए चूने का व्यवहार किया जा सकता है।

दक्षिण अंगदेश में अंगूर की खेती बहुत अच्छी होगी। बाँकुड़ा प्रजाति के कटहल और जम्मू प्रजाति के लाल जामुन वहाँ बहुत अच्छा उगेंगे। दक्षिण अंगदेश में पहाड़ी अंचल में नीचे की फसलों का अच्छा उत्पादन किया जा सकता है। कपड़ा

कार्पेट, शीशल प्रजाति के छिलकों (रामबाँस) से चटाई इत्यादी, एरण्ड गाछ की खेती, तूंत की खेती और रेशम कीटों का पालन करके तसर और सिल्क। इसके अलावा दक्षिण अंगदेश में पपीते की खेती की जा सकती है। और उससे पैपेन (पपीते का काढ़ा) पैदा हो सकता है। चावल की भूसी से तेल और धान के भूसे से सिमेंट तैयार हो सकता है। उत्तर अंगदेश में पाट की खेती करके पाट के डण्ठलों से दियासलाई की तीलियाँ तैयार की जा सकती हैं। ईख के रेशों से और भुट्टे के वर्जितांश से कागज का उत्पादन किया जा सकता है। अंगदेश की लाल मिट्टी में हैदराबादी अंगूर, बाँकुड़ा या आनंदनगर प्रजाति के पपीते, काजू, बादाम, बाँकुड़ा प्रजाति के कटहल, जम्मू प्रजाति के लाल जामुन और राढ़ी बंबई या राढ़ी मधुकलकलि प्रजाति के आमों की बहुत अच्छी उपज हो सकती है।

निर्वाचन प्रक्रिया बहुत ही खर्चीली है। भारतवर्ष में निर्वाचन के लिए रुपये आते हैं स्थानीय पूँजीपतियों और विदेशी

दलालों से सामाजिक, अर्थनैतिक, सांस्कृतिक, मनस्तात्त्विक इत्यादि सभी मामलों में शोषण है। जो शोषक हैं वे कभी नहीं विचार करते हैं कि किस इलाके में श्रम अतिरिक्त है या किस इलाके में श्रम की कमी है। भोजपुरी इलाका श्रम की अधिकता वाला है जब कि बंगाल का भाग-विशेष और असम राज्य श्रम की कमी का इलाका है। यह पूरा ही इलाका शोषकों के द्वारा शोषित हो रहा है। अंगदेश और असम सबसे अधिक शोषित हैं। अंगदेश में भागलपुर और मुंगेर मात्र ये दो शहर हैं। और इन दोनों ही शहरों में वहिरागत शोषकों का आधिपत्य है। स्थानीय निवासियों की भाषा और सांवेदनिक उत्तराधिकार (Sentimental Legacy) के प्रति इन्न वहिरागों में कोई सहानुभूति है ही नहीं। राँची भी वहिरागत शोषकों के द्वारा नियंत्रित हो रहा है, और उड़ीसा की जमीन एवं संपत्ति वहिरागों के ही हाथों में है।

जम्मू और कश्मीर

जम्मू एवं कश्मीर के तीन भाग हैं। १) जम्मू, २) कश्मीर, ३) लद्दाख। संस्कृत में जम्मू को द्विगर्तभूमि कहा जाता है। यहाँ कोई उपत्यका नहीं है। केवल पहाड़ और पठार हैं। पठार पर आउस धान हो और निचले इलाकों में आमन धान हो सकता है। पहाड़ी अंचल में सीढ़ीनुमा जगहों पर भुट्टे उगाए जा सकते हैं। यहाँ की जलवायु पशुपालन के-विशेषकर गुजरात प्रजाति के भैंसों के पालन के लिए बहुत ही अच्छी है। यहाँ की मिट्टी रेपसीड और सरसों की खेती के लायक है। यहाँ आउस या आमन धान उपजने पर भी बोरों धान नहीं होगा। औषधीय पेड़-पौधों की खेती यहाँ की जा सकती है। इस पूरे अंचल में कृषि सहायक उद्योग स्थापित करना उचित है। जम्मू का एक जिला कठुवा शिवालिक पहाड़ पर अवस्थित है। यहाँ की मिट्टी तेलहन की खेती के लिए बहुत उपयोगी है। बहुत पहले जब रामायण महाकाव्य लिखा जा रहा था। उस समय यह अंचल काष्ठक के नाम से परिचित था। काष्ठ का अर्थ लकड़ी है और चूँकि यह

अंचल लकड़ी के लिए विख्यात था, इसलिए यह देश 'काष्ठक' के नाम से अभिहित होता था। विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए यहाँ चीना बादाम और धान (विशेष प्रजाति का) उपजाए जा सकते हैं। चीनाबादाम के छिलकों से मोटे कागज तैयार किए जा सकते हैं।

जम्मू में कॉफी (Coffee) और कश्मीर में चाय पैदा की जा सकती है। जम्मू के उँचे अंचल में मटर (Peas) और अरहर दाल की खेती हो सकती है। नीची भूमि पर चना (Bengal gram) और उड़द उगाए जा सकते हैं। पैरवा फसल के रूप में गेहूँ के साथ मसूर दाल (lentilpulse) की खेती की जा सकती है। सूगर बीट जम्मू के उँचे भागों में उगाए जा सकते हैं, और डोडा में उसके बीज पैदा किए जा सकते हैं। लेकिन सिंचाई की व्यवस्था मूल समस्या है। इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। छोटी-छोटी नदियों-उपत्यकाओं की परियोजनाओं और लिफ्ट पम्पिंग की सहायता से ऊपरी हिमालय की उपत्यका

और पहाड़ मिलाकर कश्मीर राज्य का अवस्थान है। बरमूला जिले का कुछ भाग उपत्यका है और कुछ भाग बर्फ से आच्छादित रहता है। कश्मीर में शरत्क्काल में और शीत के प्राक्काल में खेती की जा सकती है। लेकिन अत्यधिक ठण्ड के कारण यह जमीन गेहूँ की खेती के लिए उपयुक्त नहीं है।

कश्मीर के लोग भूमध्य सागरीय वर्ग की आर्य जाति के हैं। कश्मीर के आदिम निवासियों को कश् (या खश) कहा जाता था जिनके नामानुसार इस अंचल का नाम कश्मीर पड़ा। उजवेकी और ताजाकी भाषा की तरह कश्मीरी भाषा पाश्चात्य प्राकृत भाषा से आयी है।

लद्दाखी भाषा पाश्चात्य प्राकृत के तिबेटन ग्रुप के अंतर्गत है। लद्दाख का मध्यम संप्रदाय उर्दू जानता है, और उच्च वर्ण के लोग अंग्रेजी जानते हैं। प्रचलित लिपि तिब्बती है। पूर्व-दक्षिण लद्दाख में महायानी बौद्धों का निवास है। लद्दाख का सबसे बड़ा

शहर कारगिल है। लद्दाख तुषार मरुस्थल है, और सहारा उष्ण मरुस्थल है। लद्दाख के उत्तर-पश्चिम के निवासी उर्दू नहीं जानते। बलुचिस्तान के अधिकांश लोग उर्दू नहीं बोलते। कश्मीर के बारामूला से अनंतनाग जिले तक की प्रचलित कथ्य भाषा कश्मीरी है।

शिया मुसलमान लोग लद्दाख के उत्तर-पश्चिम भाग में निवास करते हैं। और वे उर्दू मिली लद्दाखी भाषा में बातें करते हैं कश्मीरी भी भाषा चलती है। मुजफ्फराबाद, बारामूला, अनंतनाग, श्रीनगर और डोडा में मुजफ्फराबाद की भाषा कश्मीरी भाषा है और पश्चिम पंजाब की कथ्य भाषा का संमिश्रण है। डोडा के दक्षिणांश के लोग डोगरी भाषा में बातें करते हैं। उत्तर के लोग भद्रवादू भाषा बोलते हैं। ५५० वर्ष पहले कश्मीर के लोग हिन्दू थे। लेकिन रानी दिद्दा के राजनैतिक दबाव से (और गलती से) लोग मुसलमान बन गए। इस अंचल का रंगीन इतिहास है, और महत् सामाजिक अर्थनैतिक सम्भावना है।

(जून १९७९, कलिकाता)

आर्थिक मंदी

तुमलोग जानते हो कि आर्थिक जगत् में मूल बातें दो हैं। एक है मुद्रा को गतिशील रखना होगा; रुपये को जितनी देर अचल अवस्था में रखते हो अर्थात् उसकी क्रयक्षमता को जितने समय के लिए काम में नहीं लाते हो, समझना होगा कि तब तक तुम आर्थिक जगत् को हानि पहुँचा रहे हो। दूसरी बात यह है कि रुपया प्रत्यक्ष रूप से और रुपये का सूद अप्रत्यक्ष रूप से धन सम्बन्धी विषमता को बुलाकर ला सकता है यदि वह सन्तुलित भारसाम्य की इकाई होने की क्षमता खो बैठे। आर्थिक जगत् की

इन दो बातों को आंशिक रूप से भूल जाने पर आर्थिक मंदी (economic depression) दिखायी देगी। जिन राष्ट्रों ने या आर्थिक प्रकोष्ठों ने अपने आर्थिक स्तर को सही अवस्था में रखा है वह भी यदि अन्य देशों के साथ आर्थिक स्तर सम्बन्धी आदान-प्रदान में रत हो तो उसे भी पूर्णरूप से न सही आंशिक रूप से इस आर्थिक मंदी का भागीदार बनना पड़ेगा। कोई यदि हर तरह से ठीक है लेकिन किसी आर्थिक मंदी से ग्रस्त देश के साथ सम्बन्ध भी न रखे, लेकिन अपनी आभ्यन्तरीण सम्पदा को किसी अनुत्पादक (non-yielding nature) मद में या व्यय करने में रत रहे जैसे सामरिक मद में अत्यधिक खर्च, अट्टालिकाओं का बहुत अधिक निर्माण मनोरंजन और भोगमूलक खर्च.... इन व्ययों के बदले कोई आमदनी नहीं हो तो इस अवस्था में उन देशों को भी आर्थिक मंदी का हिस्सेदार होना होगा। लेकिन कोई देश यदि आर्थिक निवेश सम्बन्धी कोई लेन-देन प्रत्यक्षरूप से या परोक्षरूप से, न करके केवल वस्तु विनिमय प्रथा से (barter trade) व्यापार किया करे तो उसे इस आर्थिक

मंदी से आक्रान्त होना नहीं पड़ेगा। केवल ऐसे ही मामलों में वित्तीय वर्ष के अन्त में लेन-देन की असमानता जनित बहुत थोड़ी आर्थिक मंदी हुआ करती है जिसका पता आसानी से नहीं चलता। ऐसी मंदी तीन वर्षों में बहुत थोड़ी मात्रा में अनुभूत होती है तथा तीस वर्षों में और थोड़ी अधिक मात्रा में अनुभूत होती है एवं साढ़े तीन सौ वर्षों में और भी अधिक मात्रा में अनुभूत होती है।

(२० दिसम्बर, १९८७ कलिकाता)

(शब्द चयनिका - १५वाँ खण्ड - प्रवचन - १०९)

भू-क्षरण और वृक्षारोपण

तुम लोग भूमिक्षय soil erosion जानते हो न, राढ़ बंगाल में "खोवाई" जिसे कहते हैं। जमीन के ऊपर प्रबल बारिश होती है.... पानी के साथ मिट्टी भी मूल भूखण्ड़ से अलग होकर बह जाती है। एक बारिश चली गयी... भूमि का एक स्तर भी चला गया... उसी हिसाब से उर्वरता भी क्रमशः कम होती जाती है। प्राचीनकाल में पृथ्वी पर बहुत सारे जंगल, घने अरण्य थे। जिस प्रकार एक ओर दूर आकाश के बादलों को नज़दीक खींच लाते थे और बारिश कराते थे, दूसरी ओर उसी तरह वे जड़ों के द्वारा मिट्टी को रोके रखकर भू-क्षरण को रोकते थे। जड़ों के बीच की मिट्टी को तो अधिकांश गाछ-विशेषकर गुच्छमूल गाछ जकड़े रखकर पानी को भी अपनी जड़ों के पास संचित करके रखते थे। जाड़ा-गर्मी में या सूखे के समय नदियों का जलस्तर कम हो जाने पर अपने संचित पानी को धीरे-धीरे छोड़कर नदियों को प्रवाहमान और गीली रखते थे। अरण्यों की अन्धा-धुंध कटाई के फलस्वरुप जंगलों के गाछ उस सुयोग-सुविधा से वंचित हो रहे हैं और अरण्यों के बेपरवाह विनाश के बन्द न होने

पर भविष्य में बारिश कम हो जाएंगी, बाढ़ में वृद्धि हो जाएगी और धीरे-धीरे हरि-श्यामल जनपद ऊषर मरुभूमि में बदल जायेंगे, जैसा कि राजस्थान के दक्षिण पूर्वी भाग में हुआ है। लोगों को आज सँभल जाना है, किसी भी रूप में किसी भी चीज़ को अब मनमाने ढंग से ध्वंस के मुँह में धकेल नहीं दिया जा सकता।

अरण्यों के नाश के बीच मानवों के भी विनाश का बीज निहित है इस बात को हमें हमेशा याद रखना है। अब और deforestation नहीं, अब हमारा लक्ष्य afforestation होना चाहिए।

२० दिसम्बर १९८७, कलिकाता

(शब्द चयनिका-१५ वाँ खण्ड-प्रवचन १०८)

अनुक्रमणिका

आदर्श नेतृत्त्व

'गजता' शब्द का अर्थ है हस्तीयूथ (हाथियों का झुंड)। कई लोग जानते होंगे कि दुनिया का जीवसमूह समाजगत रूप से दो भागों में विभक्त है एकलचारी जीव और समूह बद्ध जीव। जैसे मान लो हमारे अति परिचित बकरियाँ मुर्गियाँ हैं। ये एकलचारी जीव हैं। अपने ही स्वार्थ में व्यस्त एकदम Self Centered रहते हैं, ये साधारणतः एक दूसरे के किसी काम में नहीं आते। एक दूसरे की विपत्ति में आकर खड़े नहीं होते। ये प्रभुभक्त या निष्ठावान (Sincere) भी नहीं हैं। ये मालिक के दुःख से ज़रा सा भी विचलित नहीं होते। जहाँ रहते हैं अपने स्वार्थ से रहते हैं। लेकिन भेंड़ समूह बद्ध जीव हैं। दो जगह दो भेंड़ घास चरते हैं। एक दूसरे को देखते ही वे दौड़कर नज़दीक चले आते हैं। अगल-बगल रहकर घास चरेंगे। एक साथ रहने के

कारण भेड़ों के दल की गति को 'गड्डालिका प्रवाह' कहा जाता है।

"ऐसी गति संसार की सब गाडर की ठाट
एक जबै गाढ़े में गिरै सबै जात तेहि बाट ।"

दुनिया के लोगों की गति भेड़ों के ऐसे ही झुण्ड की तरह है। एक भेड़ा यदि गड्ढे में गिरे तो बाकी सभी उसी गड्ढे में गिरते हैं। मनुष्य भी एक समूह बद्ध जीव है। अधिक दिनों तक अकेला रहने पर वह छटपटाने लगता है। उसका मन प्राण मनुष्य की खोज में बेचैन हो जाता है। इसीलिए मनुष्य के समाज में नेता के चुनाव में बहुत अधिक सावधान रहना चाहिए। दुनिया के अनेक देशों के इतिहास में देखा जाता है कि दानव - स्वभाव के किसी नेता ने पूरे समाज को विनाश के पथ पर ढकेल दिया, अनेक जनगोष्ठियाँ उससे बरबाद हो गमीं; अनेक ने विनाश के

अंतिम कगार पर पहुँचकर किसी तरह धक्के को सँभाल लिया। कुछ लोग Personal Cult या व्यष्टिपूजा की निन्दा में पंचमुख हैं। उन्हें समझना चाहिए कि Personal cult या व्यष्टिपूजा चली आ रही है और चलेगी। इसीलिए कह रहा था कि नेता के चुनाव में सावधान रहना होगा। इस मामले में कम्युनिष्ट, कोस्टिलिष्ट, सोसलिष्ट में कोई भेद नहीं है। सभी एक रंग में रंगे हैं। नेता को उनकी विद्वता, बुद्धिमत्ता, दृढ़ता, अग्रगामिता, त्याग - स्वीकार को सदा प्रस्तुतता इत्यादि गुणों को देखकर पहचानना होगा। बाघ समूह बद्ध जीव न होते हुए भी सिंह और हाथी समूह बद्ध जीव हैं। हाथियों के दल में कई बार पचीस, तीस से पचास, सौ हाथी रहते हैं। अल्पबुद्धि, क्षुद्रमस्तिष्क भारतीय प्रजाति के हाथी भी समूह बद्ध हैं। भारत की पूर्वी सीमा पर मध्यमाकार के पांशुवर्ण हाथी कुछ कम यूथबद्ध हैं। लेकिन आपदा-विपदा में वे सभी एकत्रित होकर रहते हैं। ये अलग-अलग हस्ती समूह बद्ध या एक साथ रहने वाले हाथियों के बहुत बड़े दल को 'गजता' कहा जाता है। हाथियों को पकड़ने के लिए प्राचीनकाल से जो

खेदा-व्यवस्था प्रचलित है वह भी साधारणतः हाथियों की समूह बद्धता को ध्यान में रखकर है।

६ मार्च १९८८, कलिकाता

(शब्द चयनिका - १५ वाँ खण्ड - प्रवचन - ३१५)

'गजेन्द्र' शब्द का और एक अर्थ हाथियों का सरदार है। इसके पहले अनेक बार कहा है कि हाथी समूह बद्ध जीव हैं। समूह की मजबूती दृढ़चेता नेता के ऊपर निर्भर करती है। अन्यथा उसकी संरचना जीर्ण-दीर्ण हो जाती है.... टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। अकबर की मज़बूती से मुगल साम्राज्य ने भारत में दृढ़ता प्राप्त की थी। समुद्रगुप्त की दृढ़ता से एक समय गुप्त साम्राज्य हिमाचल से गोदावरी तक दृढ़निबद्ध हुआ था। लेकिन वैसे दृढ़चेता नेता का अभाव होने के साथ ही मगध साम्राज्य टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। अकबर के गतायु होने

के बाद उनके अयोग्य उत्तराधिकारी के हाथों में पड़कर मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। अन्त में मराठा-सिक्ख शक्ति के अभ्युदय से पानीपत की अन्तिम लड़ाई में तथा सीतावल्दी के युद्ध में मुगल साम्राज्य का अस्थि-पंजर भी धूल में मिल गये थे।

वर्तमान में लोगों ने शासन तन्त्र की जिन कतिपय पद्धतियों का आविष्कार किया है उनमें से गणतंत्र, तुलनात्मक विचार से अच्छा होते हुए भी गणतांत्रिक संरचना में मजबूत नेता मिलने का सुयोग एकनायकत्व शासित राष्ट्र की तुलना में बहुत कम है। जिसके फलस्वरूप चाहे युद्ध विग्रह हो या सामाजिक अर्थनैतिक मनोन्नयन हो अथवा अन्य कोई भौमिक दृढ़भित्तिक अग्रगति हो, सब में गणतांत्रिक राष्ट्र थोड़ा दुर्बल हुआ ही करता है, यद्यपि एकनायकत्व की तुलना में गणतंत्र काफी दीर्घस्थायी होता है। उसमें मनोवांछित की तुलना में युक्ति का स्थान कुछ अधिक रहता है। इसके बावजूद एकनायकत्व राष्ट्रीय जीवन में

जो संबद्धता ले आता है गणतंत्र वैसा नहीं कर सकता। हो सकता है लोग उतना चाहते भी नहीं। एकनायकतावाद में व्यष्टि के मन मुताबिक कई बार जन साधारण को हैरान होना पड़ता है... लेकिन गणतंत्र में पार्टी की मनमर्जी से तथा पार्टी के कैडरों तथा पार्टी के चेला - चामुण्डा लोगों के अत्याचार से भी तबाह हो जाना पड़ता है... शांतिप्रिय नागरिकों को नेस्तनाबूद होना पड़ता है। तुमलोग ठंडे दिमाग से इस विषय पर सोचो। व्यष्टि-एकनायकत्व के विषय का भले ही पूरी तरह समर्थन न किया जाय तो पार्टी-एकनायकत्व का ही समर्थन किस आधार पर करें। वह तो व्यष्टि-एकनायकत्व से भी एक दर्जा ऊपर है। कई बार पार्टी-एकनायकत्व में अशिक्षित, अर्धशिक्षित, अमार्जित कैडरों के उत्पात से शिक्षित, मार्जित रुचि के लोगों को त्राहि-त्राहि करना पड़ता है। उसी प्रकार परिस्थिति में पड़कर वे कई बार एकनायकत्व का अवसान चाहते हैं। और कभी-कभी विदेशी राष्ट्र के शरणापत्र होकर दयनीय परिस्थिति से मुक्ति पाना चाहते हैं, गहरी साँस छोड़कर जीना चाहते हैं। यह बात कड़वी होने पर

भी सच नहीं है क्या? इस एकनायकत्व, पार्टी एकनायकत्व और गणतंत्र की खींचतान का एकमात्र समाधान प्रउत का सद्विप्र-सूत्र है।

जो भी हो, मूल बात पर लौट आया जाय। हाथियों का समाज दृढ़निबद्ध होता है... दृढ़ता से संबंद्ध होता है। इसलिए हर हस्तीयूथ में एक-एक उन्नत दर्जे के सरदार रहते हैं। गजेन्द्र का अर्थ हाथियों का वही सरदार है।

२६ मार्च १९८८, कलिकाता

(शब्द चयनिका १६ वाँ खण्ड प्रवचन ११२)

उन्नयन परियोजना

प्राचीन पृथ्वी पर राष्ट्रीय एवं व्यावसायिक लेन-देन में प्रचलित स्वर्णमान था। दुनिया के अधिकांश देश में वित्तमान (bullion) स्वर्ण का था। हाँ, किसी-किसी देश में चाँदी भी थी। जिन देशों में स्वर्णमान था उनमें से कुछ चाँदी के वित्तमान को स्वीकृति देते थे, कुछ लोग नहीं भी देते थे। स्वर्णमान वाले देशों के द्वारा चाँदी-मान को स्वीकृति न देने पर वित्तमानगत तारतम्य के कारण मुद्रागत लेन-देन सम्भव नहीं था। इसलिए उन देशों के बीच विनिमय वाणिज्य (barter trade) चलता था।

"कुरङ्ग बदले लवङ्ग निबो, कुमकुम बदले चुवा,
गाछफल बदले जाइफल पाबो बहेड़ार बदले गुवा।"

बंगाल के साथ सिंहल की या श्रीलंका की, सुवर्णद्वीप या वर्मा की वस्तु-विनिमय प्रणाली या अदला-बदली की (barter trade) प्रथा ही चलती थी। बंगाल के ग्राम जीवन की अधिकांश खरीद-विक्री वस्तु-विनिमय प्रणाली से चलती थी और थोड़ी-बहुत मुद्रा के माध्यम से चलती थी। गाँवों के कृषिजीवी लोग कृषि उत्पादन के बदले वृत्तिजीवियों से वस्तुएँ लेते थे। आज से १५० वर्ष पहले भी राढ़ के वीरभूम जिले में मुद्रा विनिमय एक तरह से था ही नहीं कहा जा सकता है। किसान चावल के बदले आम दीया पिलसूज (lamp-stand) धोती-साड़ियाँ खरीदते थे। उपस्कर की लकड़ियों के बदले या चूड़ा के बदले पहँसुल - कटारी खरीदते थे। वीरभूम के ग्रामीण लोग इस प्रथा को अदल-बदल प्रथा कहते थे।

जहाँ वित्तमानगत तारतम्य था वहाँ स्वर्णमुद्रा या रौप्यमुद्रा के माध्यम से खरीद-बिक्री नहीं चलती थी। उन दिनों

राजशक्ति कुछ स्वर्णमुद्रा (सीनक), कुछ रौप्यमुद्रा (टंक) बुलियन के रूप में राजकोष में रखती थी। कुछ जनता के बीच छोड़ सरकारी उन्नयनमूलक कार्यों और कर्मचारियों के वेतन के माध्यम से देती थी। राजशक्ति जहाँ यह मुद्रा तैयार करती थी उसे 'टङ्कशाला' कहा जाता था, बंगला में टाँकसाल कहा जाता है अंग्रेजी में mint; इसी 'टङ्क' शब्द से 'तङ्क' 'तङ्गा' 'तन्खा' इत्यादि शब्द आए हैं। उत्तर भारत में अभी भी वेतन अथवा पेन्सन के अर्थ में 'तन्खा' शब्द का व्यवहार है। शुभंकरी में भी (प्रवक्ताः शुभंकर दास, बाँकुड़ा के राढ़ी कायस्थ) हैं-

"मन प्रति जत तङ्का हइबेक दर..."

हाँ, तो राजशक्ति जनसाधारण के व्यवहार के लिए जिस परिमाण में रजंतमुद्रा बाजार में छोड़ती - उसे 'गण टङ्का' कहा जाता। याद रहे इसी 'टङ्क' शब्द से 'टङ्क' या 'टाका' शब्द भी आया है। तुमलोग 'टाङ्क' कहने में गलती से 'टङ्क' मत कह

बैठना। 'टङ्क' शब्द का एक अर्थ पैर का निचला भाग है, उर्दू में जिसे 'टांग्' कहा जाता है। संस्कृत में पृषि दीर्घ करके 'टांग' शब्द भी चल सकता है। इसी 'टांग' शब्द से 'टेंगड़ी', 'ठेंग' इत्यादि शब्द आए हैं। घोड़ों के द्वारा खींची जानेवाली गाड़ी को फारसी में 'इक्का' कहा जाता है, अर्थात् जो एक से बनी है... एकल या unit है। 'टाँगा' शब्द उसी अर्थ में चलता है। फारसी 'इक्का' और संस्कृत 'टाङ्ग' दोनों के मिश्रण से बंगला में एकल अर्थ में टेक्का के बदले 'इक्का' शब्द आसानी से चल सकता है। एक घोड़े की गाड़ी को हाल-हाल तुक 'एक्का' गाड़ी कहा जाता था। यहाँ 'टेक्का' गाड़ी शब्द नहीं चलेगा। कवि द्विजेन्द्रलाल राय की कविता में है - "बेघोरे बेहारे चड़ीनु एक्का"। उन दिनों घोड़ागाड़ी के ऊपर छावनी (छप्पर या टप्पर) रहने पर उसे भी टंगा' कहा जाता था। उत्तर भारत में आज भी वैसा कहा जाता है। 'टंगा' शब्द भी संस्कृत 'टङ्ग' शब्द से आया है। जो भी हो, 'गणटङ्क' शब्द का अर्थ जनसाधारण के लिए व्यवहार करने की रजतमुद्रा है।

अनुक्रमणिका

थोड़ा अप्रासंगिक होते हुए भी बता दूँ कि यद्यपि मूर्तिशिल्प, मन्दिर शिल्पों में सूक्ष्मता के विभिन्न निदर्शन रहते हैं जिसके द्वारा मानव मन के सूक्ष्म रसबोध का परिचय मिलता है, प्राचीन भारत में सर्वत्र विशेषकर दक्षिण भारत में और उड़ीसा में अनेक राजागण गणटङ्क या गणसीनक को उन्नयनमूलक कार्यों में या जनसेवा में खर्च न करके मन्दिर - निर्माण में व्यय करते थे। सुनते हैं प्राचीन उत्कल के बारा वर्षों के राजस्व के बाबत आय का तिनका भर भी जनसेवा में व्ययित नहीं हुआ था। पूरा का पूरा कोणार्क के मन्दिर निर्माण में खर्च किया गया था। कोणार्क मन्दिर स्थापत्यशिल्प का नायाब निदर्शन है, लेकिन उड़ीसा के दरिद्र लोगों के मुँह का ग्रास छीनकर उस मन्दिर का निर्माण करना कितना उचित काम हुआ था वर्तमान उड़ीसा के शिक्षित तरुण लोग उस पर गहराई से विचार करेंगे यही आशा करता हूँ।

गणसीनक या गणटङ्क का सरकारी काम धाम और सरकारी कर्मचारियों के वेतन को छोड़कर जितना अधिक उन्नयनमूलक कार्यों में व्यय किया जाय उतना ही अच्छा है। उससे जनसाधारण की सेवा अधिक होगी, उन्नयन भी उससे अधिक होगा और मुद्रा की गतिशीलता के कारण राष्ट्रीय सम्पति उससे बढ़ेगी। राजकर्मचारियों के ग्रासाच्छादने के बारे में अवश्य ही सोचना होगा, लेकिन जनसेवा के मदत में जो अर्थव्यय है वह बहुत जरूरी होने के कारण उसकी कटौती करके सरकारी कर्मचारियों की वेतन वृद्धी का समर्थन नहीं किया जा सकता। क्योंकि उन्नयनमूलक कार्यों में जितना अधिक अर्थव्यय किया जाता है प्रकारान्तर से उसके माध्यम से सरकारी कर्मचारियों की उन्नति ही होगी, लेकिन उन्नयनमूलक कार्य न करके सरकारी कर्मचारियों की वेतनवृद्धि करने पर बाजार में नियंत्रण नहीं रहेगा। फलस्वरूप अधिक वेतन प्राप्त करके भी साधारणतः सरकारी कर्मचारियों को कोई लाभ नहीं होगा। किसी वस्तु की आज यदि बाजार दर हो पाँच रुपये के. जी.,

सरकारी कर्मचारियों को खुश रखने के लिए उनका वेतन यदि दोगुना कर दिया जाय तो वैसे में सरकारी कर्मचारियों की क्रयक्षमता भी क्या उससे दोगुनी हो जाएगी ? अधिक रुपये लेकर भी बाजार जाने पर सरकारी कर्मचारी वहाँ पायेंगे कि राख में घी डालने जैसा हो रहा है। बाजार दर आसमान छू रही है। मुद्रास्फीति और भी चरम रूप से देश को ग्रास करेगी। इसलिए उन्नयनमूलक काम बन्द करके अन्य किसी मद में खर्च बढ़ाने पर अर्थनैतिक विचार से आत्महत्या के बराबर होगा। उन्नयनमूलक कार्यों के माध्यम से उत्पादन बढ़ाने पर कर्मचारियों का वेतन बढ़ाए बिना भी क्रयक्षमता बढ़ती जाएगी और क्रयक्षमता बढ़ने पर सरकारी और असरकारी सभी को लाभ है।

विशुद्ध अर्थनैतिक विचार से उन्नयनमूलक काम से वैसा काम समझा जाता है जो प्रत्यक्षरूप से सम्पदा को नहीं बढ़ाता, अप्रत्यक्षरूप से सम्पत्ति वृद्धि में सहायता करता है, लोगों की

सर्वनिम्न प्रयोजनों की पूर्ति न होने तक उसे उन्नयनमूलक काम की गिनती में नहीं लाया जा सकता।

जो भी हो, जैसे हमारे अदरक के व्यापारी के लिए जहाज पर ख़र्च न करना ही अच्छा है। तुमलोग 'गणटंक' शब्द का अर्थ केवल समझ लो।

१७ अप्रील १.... कलिकाता

(शब्द चयनिका - १६ वाँ पर्व- प्रवचन- १२१

गणहनन

गणहंनन शब्द का अर्थ है एक साथ अनेक लोगों की हत्या करना (mass murder or massacre) यदि एक साथ

अनेक अपराधियों की हत्या की जाय तो उसे भी 'गणहनन' कहा जाता है। क्योंकि विशुष्क सैद्धान्तिक विचार से कौन अपराधी है, कौन निरपराध है उसकी जाँच करना एक दुरूह काम है। कई बार कागज़ क़लम में, दस्तावेजों में गलत बातें रहती हैं जिसके फलस्वरूप निरीह लोगों पर कठोर दण्डव्यवस्था का खड़्गाघात पड़ जाता है। कई बार न्यायाधीश के न्याय में भी भ्रान्तिदोष रह सकता है या रहता भी है, वैसी स्थिति में निरपराध की हत्या की जाती है। कभी-कभी न्याय के नाम पर मजाक करके निर्दोष की या अल्पदोषी की हत्या की जाती है। ये किसी तरह से भी समर्थन योग्य बातें नहीं हैं। सॉक्रेटिस की हत्या का समर्थन नहीं किया जा सकता। महाराज नंदकुमार के प्राणदण्ड का भी समर्थन नहीं किया जा सकता। सिराजुद्दौला की हत्या भी विवेक बुद्धिसम्मत नहीं है, और इससे भी बढ़कर बड़ी बात यह है कि प्राणदण्ड जैसी चीज़ ही समर्थन योग्य नहीं है। जिस व्यक्ति ने दूसरे की हत्या की है वह विधाता के विधान से बाहर चला गया है। केवल मनुष्य ही नहीं, निर्दोष पशु को भी जिसने हत्या की है,

वह भी विधाता के विधान से बाहर गया है और इसलिए उसका काम किसी भी रूप में समर्थन योग्य नहीं है। और न्याय के नाम पर जो दूसरे की हत्या करता है। उसका काम अधिकतर निन्दनीय है। इसलिए प्राणदण्ड का समर्थन नहीं किया जा सकता। हाँ, पापी छाती फुलाकर राजपथ पर घूमता फिरे और हत्यालीला चलाता रहे इसका भी समर्थन नहीं किया जा सकता। इसलिए हत्याकारियों को मानवता सम्मत ऐसे किसी विधान के अंतर्गत आना होगा जिससे वह स्थायी तौर पर प्रतिहत हो... हमेशा के लिए रोकी जा सके।

साधारणतः देखा जाता है कि जो शक्तिशाली है, जो रणञ्जयी है। वही विचारक की भूमिका में रहता है ... मानो वह गंगाजल से धुला तुलसी पत्ता हो, और जो पराभूत है वह यदि निरीह-निष्पाप व्यक्ति भी है तो उसे समाजद्रोही कहा जाता है। विगत् महायुद्ध में मित्रशक्ति (allied forces अर्थात अमेरिका ब्रिटेन, फ्रांस, रशिया) विजयी हुई थी... थी अक्षशक्ति (axis

power अर्थात्, जर्मनी, इटालि, जापान इत्यादि पराभूत हुई। कौन कितना दोषी है। इस पर विचार किए बिना भी वास्तविक क्षेत्र में हमने देखा था कि रणञ्जयी मित्रशक्ति विचारक की भूमिका में काबिज थी। इटली के सिनर वेनितो मुसोलिनी को अस्वाभाविक मृत्यु का वरण करना पड़ा था, जर्मनी के हेर एडॉल्फ हिटलर को पेट्रोल से जलकर मरना पड़ा था। जापान के प्रधानमंत्री तोजो को प्राणदण्ड मिला था। सुनते हैं युद्धापराधी के रूप में सुभाषचंद्र बसु की खोज चल रही थी। जिस अंतर्राष्ट्रीय अदालत ने युद्धापराधियों पर विचार किया था। उनमें से एक बंगाल के न्यायाधीश राधाविनोद पाल थे । उन्होंने लड़ाकू होने की गाली देकर इस रूप में युद्धापराधियों के मृत्युदण्ड का समर्थन नहीं किया था। जो भी हो, एक साथ अनेक लोगों की यदि हत्या की जाय तो जिसकी हत्या की जा रही है वह चाहे लड़ाकू हो या न हो, तथाकथित अपराधी हो या न हो, किसी भी तरह के व्यक्ति की यदि हत्या की जाय और एक साथ अनेक लोगों की हत्या किया जाए तो उसे गणहनन कहा जाएगा।

एटम बम के द्वारा मित्रशक्ति ने जिस हिरोशिमा, नागासाकी में सम्पूर्णतः निरीह-निर्दोष लाखों-लाख वृद्धों, शिशुओं, नारियों, शांतिप्रिय तरुण-तरुणियों को गणहनन की बलि-वेदी पर चढ़ा दिया था। अग्नि की दहनज्वाला से, विषवाष्प से फुसफुस के स्पंदन को स्तब्ध कर दिया था, अंग प्रत्यंगों को विषप्रवाह से बकिल बनाकर विकलांग कर डाला था, वह क्या मानवता सम्मत काम हुआ था ? तब उन्होंने किस अधिकार से जापान के प्रधानमंत्री तोजो पर विचार करने की स्पर्धा दिखाई थी। यह प्रश्न विदग्ध और विचारवादी लोगों के मन में हमेशा ताक झाँक करता रहेगा। बड़े-बड़े नारों की ओट में शांति का सफेद कबूतर उड़ाकर इस कालिख पुते इतिहास को कभी छिपाया नहीं जा सकता।

मैं एक प्रधानमंत्री को जानता था। जिन्होंने मानवतावाद और अहिंसा के सिद्धांत को उत्तेजना की लहरों में डुबो दिया था।

ऐसे बहुत सारे राष्ट्र नायकों का भी पता है एवं और लोगों को मालूम है जो मुँह से शांति की बातें करते हैं... शायद सफेद कबूतर भी उड़ाते हैं लेकिन अंदर-अंदर समरास्त्रों में सान चढ़ाते रहते हैं... हाथ में फूल की माला, आस्तीन में छिपा छुरा नीति है। Preach the gospels of peace, but keep your powders dry. शांति की वाणी का प्रचार किए चला लेकिन कमान में भरने के लिए बारुद सूखी रखो। मानवता के दर्द से इनके प्राण विगलित हैं, भाषण के उच्छवासों से इनकी दोनों आँखों से गंगोत्तरी की जलधारा फूट पड़ती है लेकिन उदर में निरीह मुर्गियों की कातरोकित की उपेक्षा करके, उसकी हत्या करके मसाले डालकर पकाया मुर्ग-मुसल्लम गड़गड़ाता रहता है। उनके मुख से शांति की ललित वाणी शोभा नहीं पाती। उनका नारा होना चाहिये " मुर्ग-मुसल्लम की जय" ... " बकरे के पसिंदे की जय "

१ ली मई १९६६, कलिकाता

(शब्द चयनिका षोड़श पर्व-प्रवचन १२३)

अनुक्रमणिका

सामंतवाद एवं जमीदारी प्रथा

तुममें से, जिन्होंने, भू राजस्व विधि-व्यवस्था के सम्बन्ध में अध्ययन किया है, वे सभी जानते हैं कि भारत में पठान, मुगल बौद्ध एवं बौद्ध पूर्व युग में, भू-राजस्व, राजा को स्वर्ण वित्त के रूप में दिया जाता था। दस बीस गाँवों को एक साथ मिला कर एक - एक राजस्व ग्राम या मौजा निर्मित होता था, तथा उन्हीं गावों के लोगों में से किसी एक व्यक्ति को राजस्व संग्रह करने का अधिकार सौंपा जाता था। इन राजस्व या कर संग्राहकों को सरकार द्वारा कोई वेतन नहीं दिया जाता था। लेकिन अपनी आजीविका के निमित्त इन्हें खेती करने के लिए कृषि-भूमि सरकार द्वारा प्रदान की जाती थी। ये लोग कृषि क्षेत्र में राजा और आम जनता के बीच बिचौलियों के रूप में काम करते करते धीरे

- धीरे शक्तिशाली जमींदार बन गये थे। प्राचीन समय से ही इन बिचौलिये जमींदारों का अस्तित्व था जिन्हें पट्टनीदार, दर - पट्टनी दार से पट्टनीदार जोतदार, वर्गादार और अधिकारी कहा जाता था। किसी भी तरह से प्रउत इस प्रकार के बिचौलियों का समर्थन नहीं करता है।

प्राचीन समय में शक्तिशाली राजाओं के आधीन बहुत से छोटे-छोटे राजा होते थे। ये बड़े और छोटे, दोनों तरह के राजा लोग; अपने पास सशस्त्र राज सेना एवं जन सेना (मिलिशिया) रखते थे; यद्यपि इन बिचौलिये जमींदारों को निजी सेना या मिलिशिया रखने के अधिकार नहीं प्राप्त थे। आज आसाम राइफल और राजपूत रेजीमेन्ट, सेना का हिस्सा है। अतएव इन्हें सेना नहीं कह सकते हैं। मिलिशियार जनसेना का अर्थ है वाहिनी या खुद का अपना सैन्य बल, जो कि; दूसरों पर निर्भर नहीं है। मिलिशिया के संचालन हेतु किसी के पास जोश एवं शासन सत्ता होनी ही चाहिए। जिसके पास ये गुण हैं उसे मिली

टेंट (लड़ाकू या लड़ाका) कहते हैं। यदि छोटे राजा लोग, बड़े राजाओं की, कर देने सहित सभी प्रकार की,, अधीनता मान लेते हैं तो हमलोग कहते हैं कि उन्होंने शक्तिशाली राजा का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया है। निश्चय ही आधिपत्य या प्रभुत्व (supremaey) एवं अधिराजत्व (suzcrainty) दोनों शब्द एक नहीं हैं। अधि राजत्व (suzerainty) का तात्पर्य है कि छोटे राजाओं ने प्रभावशाली राजाओं की अधीनेता तो स्वीकार कर ली किन्तु उसे कर अदा करने की बाध्यता नहीं है। जैसे कि आज आस्ट्रेलिया, ब्रिटिश राजतन्त्र का अधिराजत्व तो स्वीकार करता है, लेकिन यह ब्रिटेन का प्रभुत्व नहीं मानता है। क्योंकि यह ब्रिटिश सरकार को कोई कर नहीं देता है।

उन दिनों, तीन प्रकार के वाणिज्यिक सम्बन्ध प्रचलित थे। जन साधारण ग़रीब लोग आपस में विनिमय द्वारा लेन-देन करते थे, कुछ पैसे वाले लोग चाँदी के सिक्कों से वस्तुओं को खरीदते थे, तथा धनी लोग सोने के सिक्कों से वस्तुओं की

अनुक्रमणिका

खरीददारी करते थे। कर संग्राहक लोग इन तीनों में से किसी भी एक रूप में कर संग्रह करते थे। लेकिन वे राजा को भूराजस्व स्वर्ण वित्त के ही रूप में अदा करते थे।

लम्बे समय से चली आ रही इस भू-राजस्व व्यवस्था को केवल अकबर के समय में ही कुछ ठोस रूप प्रदान किया गया था। उदाहरणस्वरूप अकबर ने आज्ञाप्ति (Decree) जारी किया कि कर संग्राहकों को प्रदान की गई भूमि केवल पाँच से दस साल तक ही उनके पास रहेगी। बाद में लॉड कर्नवालिस ने निश्चय किया कि कर (tax) संग्राहकों को ज़मीन स्थायी रूप से प्रदान की जायेगी। उन्होंने अनुबन्ध किया कि कर संग्राहकों की हैसियत एवं उनको प्रदान की गई कृषि भूमि पर स्वामित्व पैत्रिक होगा। कर संग्राहकों को एक स्थान से कर संग्रह करके, तथा उस स्थान को छोड़ कर, दूसरे स्थान चले जाने की मानसिकता को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से ही, यह व्यवस्था शुरू की गई थी। अकबर ने एक और भी व्यवस्था शुरू की जिसमें प्रत्येक

भूखण्ड के उत्तरी एवं पश्चिमी सीमा का मालिकाना हक, उस भू-खण्ड के मालिक को ही दिया गया था। भूमि सम्बन्धी विधि-विधानों को पट्टा कबूलियत व्यवस्था के रूप में जाना जाता था। अकबर के प्रधानमन्त्री टोडरमल द्वारा इस व्यवस्था को लागू किया गया था।

भू-राजस्व संग्रह सम्बन्धी व्यवस्था को ही जमींदारी व्यवस्था कहा जाता था। अकबर ने जागीरदारी नाम से एक दूसरी भी कर संग्रह की व्यवस्था शुरू की थी। जमींदारी एवं जागीरदारी, दोनों ही कर संग्रह व्यवस्थाओं में कर राजा को ही दिया जाता था। दोनों व्यवस्थाओं में यही अन्तर था, कि जमींदारी व्यवस्था में यदि जमींदार, निर्धारित समय में कर अदा करने से असफल हुआ, तो उसे कारागार भेजा जाता था, तथा कर अदा करने के बाद ही; उसकी मुक्ति हो पाती थी। जागीरदारी व्यवस्था में कर संग्राहक जागीरदार निर्धारित कर यदि निश्चित समय में न अदा कर पाते तो उसकी भूमि जब्त कर ली जाती

थी। यद्यपि ब्रिटिश शासन के दौरान जमींदार लोग मुख्य राजस्व संग्राहक थे, फिर भी; पूरे भारत में या तो जर्मींदारी; नहीं तो जागीरदारी व्यवस्था प्रचलित थी।

जमींदार लोग केवल कर संग्राहक थे तथा उनके पास कोई राजनैतिक शक्ति नहीं थी। निश्चय ही उनके कर संग्रह की केवल एक निश्चित राशि ही सरकारी खजाने में जमा की जाती थी। अतएव जमींदार लोग सामाजिक परजीवी के रूप में भोग-विलास पूर्ण ऐय्यासी जीवन जीते थे। जर्मींदारी व्यवस्था में सरकार को कोई भी धन खर्च नहीं करना पड़ता था। यह भू-राजस्व संग्रह करने की मात्र एक सरकारी व्यवस्था थी।

ब्रिटिश शासन के दौरान भू-राजस्व संग्रह एवं कृषि कार्य की देख-रेख हेतु सरकार द्वारा कृषि विभाग में दो अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। इनमें से जो सिविलियन (civilian) पदाधिकारी थे, वे राजकीय कर संग्रह की देख-रेख करते थे। उन्हें

सचिव कहा जाता था, तथा उनका कार्यालय सचिवालय के नाम से जाना जाता था। दूसरे, कृषि के विशेषज्ञ एक तकनीकी व्यक्ति होते थे। उन्हें निदेशक कहते थे, तथा उनका कार्यालय निदेशालय के रूप में जाना जाता था। सचिव भारतीय सिविल सेवा के सदस्य होते थे।

भारतीय सिविल सेवा के एक अधिकारी के सभा पतित्व में राजस्व विभाग के अन्तर्गत एक राजस्व परिषद् होती थी। यह पद इतना महत्वपूर्ण होता था, कि यदि वायसराय कभी बीमार होते, तो राजस्व परिषद् के सभापति उनके स्थान पर; उनके दायित्वों का निरवाहण करते थे। इससे मालूम होता है, कि उस समय राजस्व विभाग का कितना महत्त्व था। आज राजस्व विभाग, सरकार का एक बोझ बन गया है तथा इसके खर्चे इसकी आमदनी से ज़्यादा ही हैं।

जार शाही के दौरान रूस में भी एक राजस्व व्यवस्था थी और वहाँ भी, राजस्व संग्रहकर्ताओं को, भारत के ही तरह, कर संग्रह का पुस्तैनी अधिकार प्राप्त था। कर संग्राहकों के पास राजनैतिक शक्ति होने के कारण रूस की व्यवस्था सामन्तवादी व्यवस्था थी। किन्तु भारत में, जींदारों के पास कोई राजनैतिक शक्ति न होने के कारण, सामन्तवादी व्यवस्था नहीं थी। जमींदार लोग यदि कोई अपराध करते तो उन पर भी, न्यायालय में, किसी अन्य व्यक्ति के तरह ही मुकदमा चलता था। जमींदार लोग जागीरदार नहीं थे इसलिए वे दूसरों की ज़मीन नहीं छीन सकते थे।

ब्रिटेन में भी सामन्ती व्यवस्था थी, तथा ब्रिटेन की सामन्ती व्यवस्था में बैरोन (Barons) विस्काउन्ट (viscounts) अर्ल (Earls) मारक्यूज (marquess) एवं ड्यूक (Dukes) सामन्ती प्रमुख थे। उन्हें कुछ राजनैतिक शक्तियाँ प्राप्त थी; तथा वे हाउस ऑफ लॉर्ड्स में प्रतिनिधित्व करते थे। हाउस ऑफ

कॉमन्स के सदस्य गणों को जन साधारण से चुना जाता था। बाद में एक व्यवस्था लागू की गई जिसमें हाउस ऑफ लॉर्ड (House of lord), हाउस ऑफ कॉमन्स (House of commons) से पारित हुए विधान को अस्वीकृत कर सकता था; लेकिन यदि हाउस ऑफ कॉमन्स उसी विधेयक को हाउस ऑफ लॉर्ड के पास, दुबारा भेजने पर हाऊस ऑफ लॉर्ड उसे स्वीकृत करने को बाध्य था, और राजा अथवा रानी को भी इस पर हस्ताक्षर करने ही पड़ते थे। सामंतवादी व्यवस्था चलने के तौर-तरीकों के इस उदाहरण से जाना जा सकता है कि ब्रिटेन में, पूर्ण रूपेण सामंतवादी व्यवस्था कायम थी। इंग्लैण्ड में यह नियम था; कि किसी लॉर्ड का केवल जेष्ठ पुत्र ही हाऊस ऑफ लॉर्ड का सदस्य हो सकता था, यदि उसने किसी परित्यक्ता से विवाह नहीं किया है। लेकिन फ्रांस में एक कुलिन (Aristocrate) के सभी लड़के लॉर्ड कहे जाते थे। इससे लॉर्ड लोगों की संख्या वहाँ इतनी ज्यादा बढ़ गयी थी, कि उन लोगों का इससे अपना महत्त्व काफी कम हो गया था।

अनुक्रमणिका

जमींदारी व्यवस्था में कुछ फायदे भी थे। अच्छे जमींदार लोग गरीब प्रजा की देख-रेख करते थे, तथा यदि वे लोग अपना कर नहीं जमा कर पाते थे, तो जमींदार लोग उसे जमा करते थे। बहुत से जमींदारों के पास व्यक्तिगत जंगलात के नाम से अपना खुद का जंगल था। सरकारी जंगलों को आरक्षित जंगलों के नाम से जाना जाता था। जमींदारों के व्यक्तिगत जंगलों की बढ़िया देख-रेख की जाती थी। इससे पर्यावरणीय संतुलन कायम रहने से, बाढ़, भू-स्खलन, भू-कटाव बहुत कम होता था तथा भूमि की उर्वरता सुरक्षित रहती थी। नदियाँ गर्मियों में प्रायः नहीं सूखती थीं। जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन के बाद, बहुत से व्यक्तिगत जंगलों को काट दिये जाने से, पर्यावरण का परिस्थितिक संतुलन नष्ट हो गया है।

फिर भी जमींदारी व्यवस्था में अनेक कमियाँ भी थीं। किसानों के पास मालिकाना हक नहीं था, वे मात्र जोतदार थे।

किन्तु जमींदार लोग विशाल भू-भाग व्यक्तिगत संपति के रूप में रखते थे, इसके अलावा जमींदारों द्वारा, जनता से संग्रहित राजस्व राशि, तथा सरकार को जमा की जाने वाली राशि में बहुत ज्यादा अन्तर रहता था।

जमींदारी व्यवस्था के विरुद्ध लगातार दुष्प्रचार होने के कारण इस व्यवस्था को समाप्त करना पड़ा। यदि कोई बात लोगों के बीच में बार-बार प्रचारित किया जाय, तो लोग सोचना शुरू कर देते हैं; कि इसमें जरूर कोई सत्यता है, और उनका मन उससे प्रभावित होने लगता है। जमींदारी व्यवस्था के साथ भी यही घटित हुआ था। जमींदारी समाप्त हो जाने के बाद सरकार को कर संग्रह प्रणाली चालू रखने के लिए राजस्व विभाग से धन खर्च करके वेतन भोगी संग्राहकों को रखना पड़ा इस प्रकार जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन से सरकार के राजस्व में कोई, बढ़ोत्तरी नहीं हो सकी। जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन करके यदि सरकार बैंक का खातों एवं स्वर्ण संग्रह की एक निश्चित

सीमा लागू करके पूँजीपतियों के पूँजी में पाबन्दी लगाती तो इससे समाज की ज्यादा भलाई होती। उसके अलावा किसानों के हितों की सुरक्षा हेतु विभिन्न तौर-तरीके अपनाकर जमींदारों के अधिकारों को और भी कम किया जा सकता था। यह करने की अपेक्षा आम लोगों को यही शिक्षा दी गई कि जो जोतेगा खेत उसी का होगा। यह युक्ति यदि मान ली जाय तो कहना होगा कि जो हजामत बनाएगा, सिर उसी का हो जाएगा।

साम्यवाद

जो मनुष्य या जो मानव गोष्ठी, एक विशेष सामाजिक नियमों व मान्यताओं का पालन करते हैं - जात-पात मानने का ही उदाहरण लीजिए, जैसे ब्राह्मण, कायस्थ वैद्य नवशारव इत्यादि जात-पात की मान्यताओं को लेकर बने नियम निर्देशों के बारे में सोचते हैं उनका पालन करते हैं..... ऊँच-नीच के

निर्णय का परमपुरुष से ही निर्देशित होने की सम्भावना का मानस समर्थन करते हैं,.... प्रत्येक जीव के पीठ या छाती अन्यथा ललाट पर रबर स्टाम्प द्वारा स्थायी रूप से किसी अपाठ्य भाषा में लिखित जाति के बारे में सोचते हैं कि देख करके नाक-भौं सिकोड़ें या नहीं, क्योंकि वे सभी एक सामाजिक नियम निर्देशों का पालन करते हैं।

यदि कुछ लोग सोचते हैं कि वे लोग मेहनत करके जीवकोपार्जन करेंगे - उनसे जिस प्रकार शारीरिक मेहनत से उपार्जन होता है उसी प्रकार जो लोग बुद्धि बल से व्यवसाय करते हैं, शनि महाराज की कृपा से; उन लोगों को इच्छानुसार धनार्जन करने का अधिकार प्राप्त है - उनमें ठगने की बुद्धि होने के बावजूद भी ज़्यादा लोगों को नहीं ठगते। बहुत से लोग उनके विश्वासी हैं, वे लोग भर पेट खा चुके व्यक्ति की थाली में से रोटी निकाल कर भूखे मर रहे व्यक्ति की प्राण रक्षा करते, हैं- इस

विशेष मनोवृत्ति से ग्रसित जो जन गोष्ठी है, उनके लिए भी 'गण' शब्द प्रयोग होगा।

पुनः कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं जो किसी अर्थनीति या दर्शन की थोथी व खोखली दलीले सुन कर सोचते हैं कि सम्भवतः इससे ही मनुष्य के सभी आर्थिक अभाव व कष्ट दूर हो जायेंगे, सभी मनुष्य एक समान हो जायेंगे.... मूड़ि-मूड़ि की तो ठीक ही है मूड़ि-मिश्री का भी मूल्य एक ही होगा . अर्थात् कार्य करने की रूचि एवं प्रेरणा रहे या न रहे केवल सभी को उनकी जरूरतों के अनुसार ही देखते हैं, उसकी योग्यता का कोई विशेष मूल्य नहीं देते। इस प्रकार से लोगों को थोथे खोखले नारों में लोगों के बीच में भेद-भाव उभार देते हैं और इस भेद-भाव पर थोड़ी भी चोट पड़ने पर बोलते हैं कि यह सब मामला पूर्णतया राजनीतिक है, इन सबको सामाजिक अपराध कहकर दंडित करना, औचित्य पूर्ण नहीं है। इस तरह के भटके एवं गुमराह, बड़ बोले मनुष्यों की गोष्ठी हेतु 'गण' शब्द का व्यवहार कर सकते हैं।

अनुक्रमणिका

जो सभी जनगोष्ठी किसी तथा कथित सम्प्रदाय (मतंवाद) को मानते हैं। उसकी जड़ता को आँख-कान बन्द करके पालन करते हैं। इसके पहले भी मैं तुम लोगों को बता चुका हूँ, कि बहुत सी भाव जड़ता के एकीकरण से इज्म (Ism) निर्मित होता है। बहुत से इज्म (Ism) के एकीकरण से सम्प्रदाय बनता है। लौकिक अर्थ में रीलिजन कहने से धर्म कहलाता है किन्तु दार्शनिक अर्थ में रीलिजन व धर्म एक नहीं हैं।

सम्प्रदाय उसे ही नहीं कहते, जो केवल आत्मा-परमात्मा से सम्बन्धित सूक्ष्म तत्वों का विषय है बल्कि सामाजिक अर्थ नैतिक धरातल में भी विभिन्न प्रकार की भाव जड़ताओं पर आधारित जो वाद एवं मतवाद हैं उनके बीच में भी सम्प्रदाय (Religion) के जैसी बहुत सी बातें एक ही तरह की सुनने में आती हैं। सम्प्रदाय जिस प्रकार ज्यादातर समय मन को खराब एवं त्रुटिपूर्ण शिक्षा से दुष्प्रभावित करके लड़ाई-झगड़े की भावना

उत्पन्न करा देता है, ये सब मतवाद भी उसी तरह से वर्ग-संघर्ष के नाम से मनुष्य को पशुत्व से भी नीचे गिरा देते हैं। जो भी हो, इस तरह के मतवाद पर आधारित जन गोष्ठी को 'गण' कहेंगे।

एक ही मतवाद पर आधारित जनगोष्ठी में बहुत सी शाखा प्रशाखा होती है। जैसे- जैन मत में श्वेताम्बर, दिगम्बर, तेरापन्थी सम्प्रदाय एवं बौद्धमत में महायानी, हीनयानी, लयवादी, स्थाविरवादी, सम्मितीय इत्यादि। एक ही अर्थ नैतिक मतवाद में भी सामान्य छोटी-मोटी जिद्द को लेकर उत्पन्न मतान्तर के परिणाम स्वरूप एक राजनैतिक दल, एक अर्थनैतिक दल हजारों भागों में टुकड़े-टुकड़े होकर बँट गये हैं, बँटते जा रहे हैं, और बँटते रहेंगे। ये भी सब गण के ही प्रर्यायभुक्त हैं। गण के इन सभी अर्थों को अच्छी तरह समझ लिए हो ना।

वर्तमान में पूरी दुनिया जिस तरह मतवादों की ज्वाला से जर्जरित है, उसी प्रकार; अनेक प्रकार के गणों की आपसी उठा-

पटक से भी अव्यवस्थित है। शान्त एवं शिष्ट लोगों को इससे मुक्ति का रास्ता खोजना होगा।

एक आर-पार की लड़ाई लड़नी होगी। मनुष्य नीति पूर्वक बुद्धिमानी के साथ सहिष्णु होकर मुक्ति का पथ सन्धान करके आगे बढ़ेंगे। "नान्याः पन्थाविद्यतेयनाय "

'गत चालक', अचालक शब्द का एक और अर्थ धर्म या नीति परायणता, धर्म अपने मौलिक पथ से कभी नहीं भटकता है, गुमराह होता है। ज्यादातर मनुष्य धर्म के आश्रय से बाहर जाकर दुर्बुद्धि, गलत दर्शन, कुसंगति एवं गलत सलाह में पड़कर अपने और समाज की बहुत बड़ी नैतिक क्षति करते हैं। अभी हाल ही में तुम लोगों ने ध्यान दिया होगा कि मार्क्सवादी लोग समय-समय पर गला फाड़कर ऊँची आवाज में चिल्ला कर घोषणा करते हैं कि हमलोग धर्म को नहीं मानते हैं। निः सन्देह जब वे धर्म के बारे में बोलते हैं तो उनका अभिप्राय मजहब से

होता है क्योंकि वे वास्तविक धर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं, जो कि मजहब से पूर्णतया भिन्न है।

आज वे एवं उनके नेता लोग संभ्रमित दर्शन के फेर में पड़ गये हैं। उनका दर्शन इतना हीन व त्रुटिपूर्ण है कि उसकी त्रुटिपूर्ण शिक्षाओं के कारण लाखों निरीह एवं निर्दोष लोगों की किसी न्यायिक प्रक्रिया का नाटक किये बिना ही, केवल थोथे आरोपों के आधार पर मार दिया गया था। क्या इस तरह का कार्य मनुष्योचित था ? मार्क्सवादियों के धर्म पथ से हट जाने एवं विमुख हो जाने के कारण ही ऐसा पाशाविक नरसंहार घटित हुआ था। आज ये सब लोग निश्चय ही धिक्कारने योग्य हैं। इन लोगों की यादगारी में विशाल कीर्ति स्तम्भ, स्मारक एवं सड़कों का निर्माण जनता के धन का अपव्यय है। ये कपटाचारी लोग; आम जनता को छलावा एवं भुलावा में रखने के लिए जब तक; किसी देश की राज सत्ता हस्तगत नहीं कर लेते, तब तक दिखावे के रूप में तन्त्र के समर्थन में नारे लगाते रहते हैं। एक बार

राजनैतिक शक्ति हथिया लेने पर वे लोकतंत्र को अनीतिपूर्वक कुड़ेदानी में फेंककर मनुष्य की समस्त मानवीय संवेदनाओं एवं भावनाओं को पार्टी तानाशाही के क्रूर स्टीम रोलर से कुचल कर चूर्ण-विचूर्ण कर देते हैं।

तुम लोग यह जानते हो कि प्राचीन काल से हमारा यह बांगला देश युक्ति एवं तर्क का देश है, न्यायशास्त्र का देश है एवं नव्य न्याय शास्त्र की मणि मुकुट भी बंगाल के सिर में सुशोभित है। बंगाल के मनुष्य कोई भी बेतुकी बात कभी भी नहीं माने हैं, न मानते हैं, न मानेंगे ही। थोड़े समय के लिए किसी युक्ति हीन बात को यदि मान भी लेते हैं, तो बाद में परिस्थिति के अनुसार युक्तिहीन मान्यता को त्याग देते हैं। बौद्ध धर्म के दुःख वाद ने मानव जीवन में एक उलट फेर कर दिया था। गृहस्थ जीवन में मुक्ति लाभ सम्भव नहीं है, इस धारणा ने मनुष्य के गृहस्थ जीवन की संरचना को ही छिन्न-भिन्न कर दिया था। बंगाल के मनुष्य ने इस पर उसी युक्ति वाद की प्रतिष्ठा करते हुए कहा था कि

परमपुरुष मेरे लक्ष्य हैं। दुःखों के मध्य चलने के कारण ही बौद्ध दुःख वाद मान रहा हूँ। किन्तु मेरा चरम लक्ष्य है, सुःख-दुःख में भी परमपुरुष को पाना।

रागे-अनुरागेनिडित जागे असल मानुष प्रकट होय।
मानुषे-मानुषे नेइको प्रभेद निखिल मानव ब्रह्ममय ।।

तब मनुष्य ने बौद्ध धर्म को भक्ति रस से सींच कर अतिसुखवाद के नाम से नये मत की रचना की थी। मार्क्सवाद की युक्तिहीन, अमानवीय एवं बंध्या कम्यून व्यवस्था ने मानवता की उन्नत शील सूक्ष्म भावभिक्तियों को पूरी तरह से मिटा दिया था। मनुष्य आज मार्क्सवाद के इस नीरस माहौल से मुक्त होकर अपने चरम लक्ष्य, महातीर्थ मोक्ष की ओर दृढ़ कदमों से आगे बढ़ना चाहता है।

१० अगस्त १९८८ कलिकाता

शब्द चयनिका १७ वाँ भाग

अँग्रेजी का कम्यूनिज्म (communism) शब्द कम्यून (Commune) शब्द से आया है, जो मूल क्रिया Mune म्यून मे co उपसर्ग के जोड़ने से बना है। co का अर्थ है; एक साथ मिलजुल कर काम करना। इस तरह commune का उचित अर्थ है, एक साथ कोई काम करने की पद्धति। जहाँ commune (कम्यून) व्यवस्था व्यवहार में है; वही communism शब्द का प्रयोग तर्क संगत है। commune + ism = communism और जो लोग commune (कम्यून) व्यवस्था का पालन करते हैं, वे ही communist कम्यूनिस्ट हैं। चूँकि commune कम्यून व्यवस्था में सभी कुछ ऊपर से दबाव देकर होता है। इसलिए ऐसी जगह में लोगों को मिल जुल कर सम्मिलित भाव से एक साथ काम करने की कोई सम्भावना नहीं रहती है। इस प्रकार

कम्यूनिज्म शब्द का प्रयोग आज जिस रूप से कम्यूनिष्ट communist लोग करते हैं वह औचित्य हीन एवं भ्रामक है।

कार्ल मार्क्स ने कम्यूनिज्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है, किन्तु यहाँ हम लोगों की बहस उनके दर्शन के केवल उन्हीं हिस्सों तक सीमित है जो मनुष्य के मौलिक मनोविज्ञान के विरोध में है। अर्थात हमलोग उनके दर्शन के केवल उन्हीं हिस्सों से सम्बन्धित हैं जहाँ - जहाँ उन्होंने केवल कल्पनाओं के जाल बुने हैं, या कछारी बालू के महल बनाने के प्रयत्न किए हैं।

कम्यूनिज्म (communism) मूलतः एक जड़वादी दर्शन है। भौतिक उद्देश्य की पूर्ति ही इसका मूलाधार है। इसमें मानव मन की भावना को बौद्धिक प्रवाह में बदल कर; परमसत्ता की ओर प्रवाहित करने का कोई सुयोग नहीं है। मानव मन की वास्तविक गति ऊर्ध्वमुखी होती है। किन्तु यदि मनुष्य का मन सूक्ष्मतर सत्ता की भावना लेता है, तो एक समय मन उसी सत्ता

में अन्तर्लीन हो जाता है। एक आध्यात्मिक साधक का यह कर्तव्य है, कि वह अपने मन को उच्च भावना के साथ ऊर्ध्वमुखी बना कर रखे। मन क्रमशः जितना उन्नत होता जाता है, मानसिक संरचना भी उतनी ही विकशित हो जाने से उसके मन में नये - नये भाव एवं विचारों का जन्म होता है। किन्तु यदि जागतिक विषयों के ही चिन्तन में मन को सीमाबद्ध रख दिया जाय तो मन स्थूलीभूत होकर जड़वादी हो जाता है। साम्यवाद व्यवस्था में भी ठीक ऐसा ही होता है। तभी तो साम्यवाद (communism) का दर्शन ही इस तरह का है; जो मन को स्थूलत्व में बदल देता है।

साम्यवाद समाज में मानवता, नैतिकता एवं आचरण में नैतिक पवित्रता का अभाव रहता है। कम्यूनिज्म एक सुदृढ़ मानसिक तथा बौद्धिक संरचना निर्माण के हेतु उपयुक्त परिवेश की रचना करने में पूर्णतया 'क्षम है। फलस्वरूप साम्यवादी समाज में नैतिक बल एवं नैतिक पवित्रता जैसा कुछ भी नहीं

होता है। भारत में बौद्ध युग के पूर्व चार्वाक दर्शन के प्रभाव से ठीक ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न हुई थी। यद्यपि चार्वाक दर्शन वैदिक कर्म काण्ड एवं पाखण्ड का विरोधी था, किन्तु यह भी एक जड़वादी दर्शन था उस समय नैतिकता का नामोनिशान नहीं था। समाज से नैतिक दृढ़ता पूर्णतयः अवलुप्त हो चुकी थी। साम्यवादी देशों में आज ठीक ऐसी ही अवस्था है एवं इसी प्रकार आगे भी रहेगी।

कुछ दशक पूर्व, पूर्ववर्ती रूस के एक राष्ट्रीय नेता ने साम्यवाद की दुहाई देकर उस देश के पचास लाख से अधिक लोगों को मरवा दिया था तथा उससे भी ज्यादा लागों को साइबेरिया के लेबर कन्सन्ट्रेसन कैम्प (Labour concentretion camp) में घुट - घुट कर मरने के लिए पहुँचा दिया था। किसी समाचार पत्र के एक हालिया खबर के अनुसार, किसी विशेष साम्यवादी देश में हर वर्ष १० लाख से ज़्यादा नाजायज सन्तानें जन्म लेती हैं। इससे प्रमाणित होता है कि

साम्यवाद में अनैतिक खुल कर प्रश्रय पाते है। अनैतिकता एवं नीतिविहीनता के नियन्त्रण की यदि व्यवस्था न हुई तो वह एक समय पूरे समाज को अपने आगोश में लेकर, सामाजिक व्यवस्था में चरम विश्रृंखलता उत्पन्न करती है। परिणाम स्वरूप पूरी समाज व्यवस्था ही ध्वन्स हो जाती है। इस तरह के त्रुटि पूर्ण दर्शन को इसीलिए और ज्यादा बर्दास्त नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके सम्बन्ध में कोई विचार करने से ही यह विजातीय मनोभाव तैयार कर देता है। इस पृथ्वी में आज तक जितने भी मानवता विरोधी एवं नरघाती मत आये हैं उन सब में साम्यवाद सबसे ज्यादा बर्बरता पूर्ण है। इसीलिए समाज के शुद्ध-बुद्धि सम्पन्न लोगों का यह कर्तव्य है कि इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करके इस सिद्धान्त को हमेशा के लिए कुड़े ढेर में फेंक दें।

वे सब देश जहाँ बौद्धिक उन्नत के साथ ही परिश्रमी लोगों की संख्या ज़्यादा है वहाँ उन लोगों ने साम्यवाद को सम्पूर्ण रूप से अस्वीकृत कर दिया है। कार्लमार्क्स का जन्म

जर्मनी में हुआ था, किन्तु वहाँ के जन साधारण लोगों ने साम्यवाद को स्वीकार नहीं किया। उसी तरह इंग्लैण्ड ने कार्लमार्क्स को आश्रय देने पर भी, उनके सिद्धांत को स्वीकार्य नहीं किया था। उसी तरह सहकारिता आन्दोलन का सूत्रपात इंग्लैण्ड में ही हुआ था तथा ब्रिटिश समाज के विभिन्न क्षेत्रों में इसी सहकारिता आधारित भाव धारा का प्रतिफलन उपस्थित होने के कारण साम्यवाद ब्रिटेन में अपना कोई प्रभाव नहीं कायम कर पाया था। सोवियत रूस, उत्तरी कोरिया एवं चीन जैसे साम्यवादी देशों से घिरे होने के बावजूद भी जापान ने साम्यवाद नहीं स्वीकार किया इन देशों एवं इनके जैसे कुछ देशों के नागरिक कठोर परिश्रमी एवं बौद्धिक दृष्टि से उन्नत हैं। इसी कारण ही साम्यवाद अस्वीकृत हुआ।

भारत में, १९२० से १९३० ई. के बीच में कुछ मेधावी छात्र मार्क्सवाद के सम्पर्क में आये और उन्होंने आधे-अधूरे मन से, ज्यादा गलत में से कम गलत दर्शन के रूप में साम्यवाद को

स्वीकार किया था। लेकिन उन्होंने भी इसे जीवन के आदर्श के रूप में नहीं अपनाया था। अभी विश्वविद्यालयों के मेधावी छात्र लोग मार्क्सवाद की ओर आकर्षित नहीं होते क्योंकि इसकी बौद्धिक सारहीनता को लोग समझ गये हैं।

साम्यवाद के साथ बौद्धिकता का सम्बन्ध साँप और नेवले के तरह है। नेवले का स्वभाव जिस तरीके से साँप को काट कर फेंक देने का होता है उसी तरह बुद्धिजीवी लोग भी मार्क्सवाद की खामियों को जनता के सामने उजागर करके, इसकी निरर्थकता सिद्ध कर देते हैं।

यह ठीक है कि साम्यवाद कार्ल मार्क्स के मृत्यु के बाद भी काफी लम्बे समय तक जीवित बचा हुआ है। हालांकि गाँधीवादी दर्शन भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही औंधे मुख गिर गया था, अर्थात् गाँधीवाद की मृत्यु गाँधी जी से पहले ही हो गई थी। साम्यवाद दो कारणों से अपना अस्तित्व बनाये रखने

में सफल हुआ है। पहला कारण हुआ प्रचार के विभिन्न कला कौशलों का आश्रय लेकर अनवरत ब्रेनवाश करते रहना, दूसरा हुआ, पाशविक शक्ति का प्रयोग यदि एक ही बात नाना प्रकार से बारम्बार प्रचारित होती रहे, तो मनुष्य सोचना शुरू कर देते हैं कि इसमें जरूर कुछ न कुछ सत्यता है। उदाहरणस्वरूप यदि लगातार प्रचार किया जाय कि, गोपाल लड़का बहुत ही खराब है, तो लोगों की नज़र में गोपाल खराब हो जाएगा उसी प्रकार साम्यवादी लोग भी अपने सिद्धान्तों का अनवरत प्रचार करके इस त्रुटिपूर्ण दर्शन को लोगों के मन में बैठा देने में सक्षम हुए थे। इसी तरह वे लोग अपने समर्थक व cadre (समर्पित कार्यकर्ता) निर्मित कर सके थे। किन्तु ये सब cadre कैडर लोग बौद्धिक दृष्टिकोण से पूरे दिवालिया हैं। तभी तो यदा-कदा किसी शक्तिशाली बौद्धिक चुनौती का सामना करने पर ये सब साम्यवादी कैडर लोग अपने-बंगल अगल झाँकने लगते हैं और अन्त में पाशविक शक्ति का सहारा लेने पर उतारू हो जाते हैं।

साम्यवादी देशो में पार्टी नेता लोग विरोधियों की आवाज को दबाये रखने के लिए अत्याचार, उत्पीड़न अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अवदमन एवं लोगों को डरा-धमकाकर रखने जैसी पद्धतियाँ अपनाते थे। किन्तु कुछ पार्टी नेताओं में विवेक जागृत हुआ और उन लोगों ने इस दमन नीति का विरोध करना शुरू किया। इसी कारण से चीन में छात्र आन्दोलन को बहुत दिन तक दबा कर नहीं रखा जा सका।

कुछ नेता लोग साम्यवाद को अन्य तौर-तरीके लेकर परीक्षण-निरीक्षण का असफल प्रयास कर चुके हैं। एक समय से यूरोप के राष्ट्रीय समाजवादी नेता लोग छद्म साम्यवाद का प्रयोग करना चाहा, जबकि यूरोपीय साम्यवाद एक तरह से मिथ्या पूँजीवाद एवं मिथ्या साम्यवाद के बीच एक सम्बन्ध स्थापित करने का ही प्रयास था। किन्तु इन दोनों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास क्या संभव है? लैटीन (Latin) का Pseudo तथा अंग्रेजी का False शब्द समनार्थक नहीं है।

अनुक्रमणिका

Pseudo शब्द का अर्थ होता है कि कुछ-कुछ original या मूलतः असल वस्तु जैसा, किन्तु हू-बहू असली जैसा नहीं। इसलिए Pseudo communism अर्थात मिथ्या साम्यवाद मानो साम्यवाद जैसा किन्तु साम्यवाद नहीं। उसी तरह Pseudo capitalism माने ऊपर ऊपर देखने से मालूम होता है पूँजीवाद, किन्तु वास्तविक पूँजीवाद नहीं। पूँजीवाद के लिए लोकतंत्र ही खूब पसन्दीदा व्यवस्था है, क्योंकि लोकतंत्र में वोट खरीद कर राजनीतिक ताकत हथियायी जा सकती है। अर्थात वहाँ ग़रीब आम जनता चुनावी प्रतिद्वन्दिता में भाग नहीं ले सकती है। अंततः विकाश बहुत ही धीमा एवं टाल-मटोली होता है वहाँ तीव्र विकाश संभव नहीं है।

किसी मत, सिद्धान्त, विचार धारा एवं प्रमाण का समाज में टिके रहने हेतु एक मजबूत आधार होना जरूरी है। भौतिक और मानसिक स्तर में जो कुछ भी है उसे देश -काल-पात्र के अन्तर्गत काम करना होता है। कोई भी मत या कथन इस नियम

के बाहर नहीं है किन्तु साम्यवाद का कोई मूलतः आधार नहीं है और जिसे उसका कहा जाता है वह भी सतत् परिवर्तन शील है तभी तो वास्तव में यह न तो कोई मत है, न कोई सिद्धांत है, न ही कोई प्रतिपादन है।

आज साम्यवादी देशों ने ही कम्यून (commune) व्यवस्था को त्याग दिया है, क्योंकि उन लोगों ने जान लिया है कि यह सड़ा-गला और त्रुटिपूर्ण सिद्धान्त सामाजिक व्यवस्था के लिए पूर्णयता प्रतिकूल है। इन सब देशों में साम्यवादी व्यवस्था के कारण नैतिक अधः पतन भष्ट्राचार और आर्थिक क्षेत्र की अनुत्पादकता से खाद्य एवं द्रव्य के अभाव में लोग सामाजिक व आर्थिक असुरक्षा भावना से ग्रसित हो रहे हैं। पहले साम्यवादी नेता लोग आम लोगों को आदर्श की बड़ी-बड़ी बातें सुना कर जागरूक रखते थे। अभी वे लोग खुद ही साम्यवाद को छोड़ रहे हैं। दार्शनिक दृष्टिकोण मार्क्सवाद के निरर्थकता की पुष्टि पहले

ही हो चुकी है। अब तो साम्यवादी देशों में इसकी व्यवस्था व्यवहारिकता घोर निरर्थक सिद्ध हो रही है।

किसी-किसी साम्यवादी देश में, तथाकथित जिस परिवर्तन की पहल हो रही है, वास्तव में वह मिथ्या संशोधनवाद के अलावा कुछ भी नहीं है। यह मिथ्या संशोधनवाद किसी जागरूक विचारोत्पति के विरुद्ध एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है। इसीलिए बुद्धिगत विचार-विमर्श में यह कभी भी सही एवं सफल निर्णित नहीं हुई है। मिथ्या संशोधन वाद की कोई भी नीति मानवीय अस्तित्व एवं वैशिष्ट की विरोधी है। इस तरीके का प्रयास आग की चिनगारी के प्रकाश की ही तरह है। अर्थात वह क्षणिक ही होता है और उसकी अकाल मृत्यु के बाद मानव इतिहास में उसकी कोई स्थायी पहचान कायम नहीं रह पाती है। साम्यवाद का भविष्य भी ऐसा ही है। इसलिए साम्यवादियों के संशोधनवादी अंकुर को पनपने के पहले ही नष्ट कर देना होगा।

अनुक्रमणिका

साम्यवाद आज एक मृत सिद्धान्त है यद्यपि इसका नाम अभी भी जिन्दा है। इस खतरनाक सिद्धान्त ने समाज में बहुत से अत्याचार किये हैं और जब तक इसका नाम मात्र का अस्तित्व भी बचा रहेगा तब तक इसके अत्याचार और भी ज़्यादा होते रहेंगे। वस्तुतः मार्क्सवाद अपने पापों के बोझ में ही दबकर नष्ट होता जा रहा है। साम्यवाद द्वारा किये गये पापों के प्रायश्चित की जवाब देही, किसी एक निर्दोष व्यक्ति को भी न छोड़कर, पूरे ही समाज को अपने कन्धों पर लेनी होगी। इसलिए सिद्धान्त के साथ-साथ साम्यवाद के नाम को भी मिटा देना होगा, क्योंकि इसकी उपस्थिति मात्र मानव अस्तित्व के लिए अत्यन्त क्षतिकारक है।।

जब दीर्घकाल से चले आ रहे, किसी त्रुटिपूर्ण सिद्धान्त का विरोध शुरू होता है, तब वह थोड़े समय के लिए एक प्रचण्ड तूफानी झोंके जैसा विध्वंशी रूप ले लेता है। साम्यवाद अपनी

निरर्थकता की ज्वाला में स्वयं ही जलकर मर रहा है। प्राउटिष्टों का कर्तव्य है कि उसकी इस दहन क्रिया को और भी तीव्र कर दें।

आदर्श का आस्तित्विक मूल्य

जब कोई जन-गोष्ठी या जन-समुदाय त्रुटिपूर्ण पथ का अनुसरण करके आगे बढ़ता है, और बाद में जब उन्हें मालूम होता है कि उनके द्वारा अनुमानित पथ सही नहीं था, तब वे सभी अपने बीच आपस में ही लड़ाई-झगड़ा शुरू करके विभिन्न गोष्ठी, उपगोष्ठी में बँट जाते हैं। तब वे लोग अच्छे लोगों को भी नुकसान पहुँचा देते हैं। ऐसा इसलिए होता है, कि ये लोग अपनें उस पुराने किन्तु त्रुटि पूर्ण पथ को छोड़ना नहीं चाहते। चार्वाक के अनुयायियों की भी यही दशा या स्थिति हुई थी।

विभिन्न मजहबों के अनुयायियों के बीच में भी इसी प्रकार की घटना घटित हुई थी। किसी त्रुटिपूर्ण सम्प्रदाय द्वारा निम्न जाति के लोगों का शोषण होने से शोषित लोग उस सम्प्रदाय को छोड़कर दूसरे संप्रदाय को अपना लेते हैं। जब मनुष्य बिना किसी सार्थक कारण के दूसरे संप्रदाय को स्वीकार करते हैं और अन्य ऐसे ही संप्रदाय को स्वीकार करते हैं जो स्वयं ही आदर्शगत शून्यता के दोषों से मुक्त नहीं हैं या जो उसके पूर्व अनुसरित संप्रदाय से भी निम्न है तब वे लोग एक तरह से क्रुद्ध एवं क्षुब्ध व्यवहार करने लगते हैं। उस समय के सब कार्य जो उनके लिए निषिद्ध थे, उसे वे और भी ज़्यादा करने लगते हैं। निश्चय ही जिन्होंने कुछ आदर्शगत कारणों से दूसरे मजहब को स्वीकार किये हैं उन लोगों में इस तरह का व्यवहार नहीं दिखलायी पड़ता है। मिशीगनार जित र इति कि श

महाभारत युग में यदुवंशियों में भी ऐसी ही घटना घटी थी। बलराम कृष्ण के बड़े भाई थे, और वे यदुवंशियों के एक

प्रधान व्यक्ति थे। किन्तु वे शराब पीने के आदी थे। धर्म शास्त्रों में लिखा है कि आम लोगों के लिए जो अहित करता है उसे कभी भी खुलम-खुला करना उचित नहीं है। उसी अनुसार लोगों को दिखा कर के शराब पीना या कोई अन्य नशा करना अनुचित है। साधारण यदुवंशी लोग बलराम का पूर्णरूपेण अनुसरण करते थे इसीलिए इन लोगों ने जब उनको शराब पीते देखा, तब उन लोगों ने भी और ज्यादा शराब पीना शुरू कर दिया था। परिणामस्वरूप नशा ग्रस्त होकर उन लोगों ने आपस में ही लड़ाई-झमड़ा शुरू कर दिया था। अन्त में प्रभास तीर्थ में वे लोग। वे लोग एक दूसरे को ही मारने लगे जिससे पूरा का पूरा यदुवंश ही ही समाप्त हो गया।

आदर्श-विहीन पथ का अनुसरण करने पर प्रत्येक मनुष्य की यही परिणति होती है। और अंत में आपसी सघर्ष में ही वे लोग नष्ट हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार त्रुटिपूर्ण मत एवं पथ भी तदानुसार ही समाप्त हो जाता है। गलत रास्ते में चलने वाले

लोगों में से कुछ लोग ऐसी अवस्था में कहेंगे कि मैंने तो कहा ही था, कि यह रास्ता गलत है, तथा दूसरे कुछलोग कहेंगे कि रास्ता तो गलत नही था पर कुछ गलत नेताओं के कुप्रभाव से ऐसी अवस्था हुई। इस तरह उन उन लोगों के बीच में से ही विभिन्न दल, एवं गुट निर्मित होते हैं। हम देखेंगे कि आज की अवस्था ठीक ऐसी ही है।

आजकल दुनिया भर की घटनाओं से यही स्पष्ट होता है, कि आज पूरी पृथ्वी में व्यापक रूप से आदर्शगत रिक्तता विद्यमान है। केवल किसी आदर्श की वजह से ही आदर्शगत शून्यता की भयानक उथल-पुथल वाली परिस्थिति नहीं उत्पन्न हुई, बल्किं यह शून्यता जनित उथल- उथल-पुथल आदर्श गत लक्ष्य से मनुष्य के भटक जाने के कारण भी उत्पन्न हुई है। हम लोग निश्चय ही यह कह सकते हैं कि शून्यता कह कर वास्तव में कुछ नहीं था क्योंकि सही आदर्श की अनुपस्थिति में विभिन्न प्रकार का कूड़ा-कचड़ा उस रिक्त स्थान में भर गया था। वर्तमान

में नैतिक एवं बौद्धिक शक्ति से पुष्ट होकर लोगों को, (मैं यहाँ प्रउत का नाम नहीं लेता हूँ किन्तु दूसरे लोग प्रउत का नाम ले सकते हैं) आदर्शगत लक्ष्य के क्षेत्र में व्याप्त गन्दे कूड़ा-करकट को दूर हटाना है। इस क्षेत्र में जो कुछ आवश्यक भी था उसे शारीरिक शक्ति से तो नहीं पर नैतिक और बौद्धिक शक्ति से जरूर किया गया है। हमलोग इस सब कूड़ा-करकट को हटाकर के अपने कर्तव्य को ठीक ढंग से ही पूरा किये हैं। - वर्तमान में हम लोगों को देखना होगा कि मनुष्य के विकाश के रास्ते में कोई हनिकारक - चीज तो खड़ी नहीं हुई है। हम लोगों को अभी से सतर्क हो हो जाना होगा, जैसे कि मनुष्य के लक्ष्य प्राप्ति में किसी प्रकार की आवांछनीय भाव धारा या तत्त्व किसी भी तरह से दुबारा प्रश्रय ना पा सके।

यह देखते हैं कि आज आदर्श गत शून्यता उत्पन्न हुई है इसलिए त्रुटिपूर्ण पथ का अनुसरण करने वाले लोगों के बीच में से उन अच्छे लोगों के पास जाना जाना होगा जिनमें विचार पूर्ण

मानसिकता है। निश्चय ही, ऐसे विचार वान लोग उस त्रुटिपूर्ण पथ को छोड़ देंगे। साथ ही किसी त्रुटिपूर्ण सिद्धान्त के, जो भ्रान्तिकारक अंश बचे हुए हैं, उन्हें भी जड़ सहित उखाड़ कर फेंक देना होगा। और जो लोग अब भी आम लोगों को गलत रास्ते में ले जा रहे हैं। उन लोगों के मुखौटों को, जन साधारण के सामने ही हटाकर उनकी असलियत जग-जाहिर कर देनी होगी, जिससे वे लोग निरीह जनता का और शोषण न कर सकें। प्रारम्भिक कार्य यही करना होगा, कि आदर्श गत लक्ष्य बोलकर जिस भ्रान्ति मूलक धारणा को हटाया गया था, वह जिस प्रकार भी हो, जैसे भी हो, पुनः घूमकर, किसी भी रूप में वापस न आ सके। उसे पूरी दुनिया से पूर्णतयाः मिटा देना होगा। क्योंकि वह मानव समाज में वर्ग - संघर्ष और वर्ग-एकता के नाम से नाना प्रकार के विभाजन एवं भेदा-भेद सृष्टि करते आ रहा है।

अनुक्रमणिका

सही अर्थ में आदर्श या Ideology शब्द का तात्पर्य है ठीक दिशा की ओर आगे बढ़ने के लिए, जहाँ हम लोगों को निरन्तर निर्देशना एवं अनुप्रेरणा प्राप्त होती है।

कोई भी जड़वादी सिद्धान्त या दर्शन, किसी व्यक्ति, राजनीतिक दल, राष्ट्र या वर्ग के नाम से ही क्यों न जाना जाता हो, वास्तव में आदर्श नहीं है। आदर्श के साथ आध्यात्मिक भाव, घनिष्टता के साथ जुड़ा हुआ है अर्थात् आदर्शगत अन्तः प्रेरणा को परम सत्ता के साथ अनुरूपता बना कर ही चलता है। आदर्श जहाँ इस भव्य भावधारा से दीप्यमान है वहीं उसका अस्तित्व गत मूल्य सम्पूर्ण रूप से अनुभूत हो पाता है।

सभी जड़वादी विचारधाराओं का प्रभाव मनुष्य पर बहुत ही विनाशक है। इस जड़वादी चिन्तन-मनन की अन्तिम परिणति क्या है ? तुम लोग जानते हो मनुष्य का मन जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। यदि कोई दिन-रात रसगुल्ला के बारे में सोचे,

तो उसकी मानस धातु (चित्त) एक समय उसी रसगुल्ले का रूप ले लेगी। यदि कोई हमेशा रुपये के बारे में सोचे, तो उसका मन रुपये में बदल जाएगा। उसी प्रकार मन यदि परमपुरुष का ध्यान करे तब वह अन्त में परमपुरुष ही हो जाएगा। जड़वादियों के लिए जड़ ही चिन्तन का विषय है, वहाँ मन निश्चय ही जड़ में ही परिणत होगा। मन जब जड़ का रूप ले लेता है तब उस स्थान में एक रिक्तता उत्पन्न हो जाती है। आत्मा का विषय मन हुआ, इसलिए मानसिक क्षेत्र में जब शून्यता की सृष्टि होती है, तब आत्मा या अणु चेतना उसी जड़ायित शून्यता का रूप परिग्रह करती है। ठीक वैसे ही जब जीवात्मा जड़ का रूप ग्रहण करती है, तब जीव के आत्मिक स्तर में एक शून्यता उत्पन्न होती है। तब भी, उसी जड़यित शून्यता का रूप ले लेती है। इस प्रकार मनुष्य का समस्त अस्तित्व ही जड़ में परिणत हो जाता है। जड़वादियों की यही अन्तिम परिणति है।

कहीं कोई शून्यता क्या अन्त तक बनी रहेगी? नहीं, वह नहीं, वह नहीं रह सकेगी क्योंकि सभी कुछ चैतन्य मय अस्तित्व से परिपूर्ण है। तभी तो परमपुरुष सभी चीजों को देखते रहते हैं। यहाँ तक कि समस्त अन्तर्भाणविक एवं अन्तः आण्विविक जगत का अन्तराल भी परम् चैतन्य सत्ता से भरा हुआ है।

चूँकि वे सर्वव्यापी हैं, कहा गया है। वे सब कुछ देखते हैं, किन्तु उनको कोई देख नहीं पाता।

अपाणिपादो यवनो ग्रहीता

पश्यत्यचक्षु स उ श्रृणोत्य कर्णः

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यस्ति वेत्ता

तमाहुरग्रं पुरुषं महानतम्"

"परमपुरुष बिना हाथ के ही वस्तु को ग्रहण करते हैं। वे बिना पैरों के ही एक जगह से दूसरे जगह जाते हैं। वे बिना आँखों के ही सभी कुछ देखते हैं। उनके पास कान नहीं है फिर भी वे

सभी कुछ सुनते हैं। वे सभी को जानते हैं पर उनको कोई नहीं जानता है। वे महान अग्रपुरुष हैं तभी तो वह सभी सत्ताओं के आगे ही चलते हैं।"

साम्यवादी व्यवस्था में जड़वाद ही जीवन का एक मात्र आदि अन्त है, इसलिए इस व्यवस्था के साथ जो जुड़ता है, वह भी जड़ के ही साथ एकाकार हो जाता है। साम्यवाद अन्दर से एक खोखलावाद या इज्म या मतवाद है। इसका कोई मजबूत आधार नहीं है। साम्यवाद मनुष्य के शरीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक अस्तित्व को अधः पतन की ओर ले जाता है, तथा सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर इसका नकारात्मक प्रभाव सामूहिक जीवन में सभी प्रकार शोषण को प्रोत्साहित करता है। पूर्ववर्ती साम्यवादी नेताओं ने अपनी स्वीकारोक्ति में इस व्यवस्था के दोषों को आँखें खोल कर सुस्पष्ट दिखा दिया है।

यदि जड़वाद का अभी त्याग कर दिया जाय, तो मानव जीवन का सही लक्ष्य क्या होना चाहिए ? सूक्ष्मतम् परमसत्ता ही मनुष्य के परम लक्ष्य हैं। मनुष्य को इस महानतम् लक्ष्य को पाने के लिए आगे बढ़ना होगा। तुम्हारा approach (अभिगम) होगा अन्त्तमुखी अर्थात् परमागति की ओर चलना, (subjective) किन्तु इस भौतिक जगत् के साथ सामञ्जस्य (सन्तुलन) बना कर (objective adjestment) ही तुम्हें चलना होगा
समञ्जस्य निर्मित करने की इस प्रक्रिया में एक विषयी (subject) एवं दूसरा विषय (object) होता है। परवर्ती स्तर में विषयी, विषय में परिणत होता है और एक नये विषयी (subject) का जन्म होता है।

स्तर में पुनः नया विषयी, विषय में परिणत होता है। एक विद्यालय की व्यवस्था को उदाहरणस्वरूप लेते हैं। विद्यालय के तुम्हारे शिक्षक तुम्हारे विषयी हुए, तथा तुम हुए उनके विषय, क्योंकि तुम सभी समय सोचते हो कि तुम्हारे विद्यालय शिक्षक

अनुक्रमणिका

तुम्हारा सब कुछ देख रहे हैं, और विद्यालय शिक्षक तुम्हारा सब कुछ देख रहे हैं, और विद्यालय शिक्षक सोचते हैं, कि उनके विद्यालय निरीक्षक अपने निरीक्षण द्वारा सब कुछ पर सतत् नजर रखे हुए हैं। इसलिए विद्यालय निरीक्षक उस जगह में विषयी हुए और शिक्षक हुए विषय फिर विद्यालय निरीक्षक जानते हैं कि शिक्षा विभाग के निदेशक उनका सभी कुछ देख रहे हैं। उस जगह वे हो गये विषयी और विद्यालय निरीक्षक उनके विषय हुए। इसी प्रकार आगे बढ़ते-बढ़ते देखा जाएगा कि सर्वोच्च स्तर में एक विषयी सत्ता (supreme subjectivity) विराजमान है। वे कौन हैं वे परमपुरुष हैं। परमपुरुष सभी सत्ताओं के सर्वोच्च, एवं सभी विषयों के परम् विषयी हैं। यही राजाधिराज परमविषयी (supreme subject) सत्ता ही मानव जीवन के एक मात्र लक्ष्य है। किन्तु उत्तकी ओर आगे बढ़ते रहने के लिए, वैषयिक जगत् में सामञ्जस्य स्थापित करके ही आगे चलना होगा।"

इसी प्रकार मनुष्य, आगे बढ़ते-बढ़ते एक दिन supreme proposition subjective proposition या परम् पद् को प्राप्त होगा। प्रत्येक मनुष्य, उस परमांगति की ओर अपनी-अपनी गति से आगे बढ़ रहा है। इस विचार धारा को बौद्धिक क्षेत्र में नये ढंग से प्रतिपादित किया गया है। हमलोग इसको पुकार सकते supreme synthetic subjective proposition परम् संश्लेषणात्मक विषयीगत् विचारधारा या प्रतिवादन है। 1

Spiritual dialectics या आध्यात्मिक क्षेत्र में द्वन्दवाद की धारणा ही असत्य एवं भ्रान्त है। हमलोगों के दर्शन में इसका कोई स्थान नहीं है। supereme Synthetic Subjective proposition परम संश्लेषणात्मक विषयीगत् विचारधारा के स्थान पर supreme subjective apropriation परम् संश्लेषणात्मक विषयीगत् आत्मरूपीकरण का व्यवहार (प्रयोग) कर सकते हो।

मनुष्य को यथोपयुक्त आदर्शगत् प्रेरणा एवं दिशा-निर्देश प्रदान करने में पूँजीवाद और साम्यवाद, दोनों ही, निरर्थक साबित हुए हैं। मनुष्य के सर्वात्मक कल्याण हेतु इन दोनों व्यवस्थाओं को ही छोड़ देना होगा। पूँजीवादी शोषण और साम्यवादी पाखण्ड या भावजड़ता, दोनों के ही विरोध में प्रउत अपना सीना ताने खड़ा है। क्योंकि ये दोनों मनुष्य के सर्वात्मक प्रगति के दुश्मन हैं, शत्रु हैं।

तुम, परम्पुरुष को सर्वोच्च लक्ष्य निर्धारित करके सभी प्रकार के शोषण, नीचता एवं तथा कथित secularism (धर्म निरपेक्षता) आदि के विरुद्ध संग्राम करते करते आओगे बढ़ते जाओगे। तभी तुम वैषयिक क्षेत्र में उपयुक्त सामञ्जस्य निर्मित कर सकोगे।

कुछ लोग कहते हैं कि असमानता ही प्रकृति का विधान है इसलिए एक के साथ दूसरे का, धन के साथ गरीब का अन्तर

जैसे अन्य बहुत से पार्थक्य रहेंगे ही। किन्तु यह विचार सही नहीं है। वरन् यह बात कहना उचित है कि विचित्रता ही ईश्वर का विधान है। सभी लोगों को यह बात मन में रख लेना उचित है कि प्रकृति द्वारा रचित जगत् में समानता का कोई स्थान नहीं है क्योंकि प्रकृति उसका समर्थन नहीं करती है। जब कभी ऐसी समानता उत्पन्न भी होती है तो वहाँ जड़ स्फोट या संरचनागत् विस्फोटन या विध्वंश अनिवार्य हो जाता है और पूरी संरचना ही तब खण्ड-विखण्ड हो जाती है। इसलिए जगत् का विधान साम्य नहीं है। वैचित्र्य और असाम्य को एक ही मान लेने से नहीं चलेगा। भेद-विभेद के माध्यम से असाम्य, तो, शोषण को उत्साहित करता है, दूसरी ओर वैचित्र्य बहुत्व की अवीकृति प्रदान करता है और इनके बीच में ही मिलन की ज्योंति जगमगाती है। जो संश्लेषणात्मक है, जो पूर्ण है, वही मनुष्य को सही तरह की अन्तः प्रेरणा दे सकता है। ध्यान रखना होगा कि जागतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में छिपाकर कुछ भी

नहीं किया जा सकता। उस परविषयी सत्ता से, कुछ भी गुप्त रूप से छिपाकर, दबाकर रखना असम्भव है।

यही सत्ता पूर्व दिशा में उगते हुए अरुण रंग के सूर्य के समान चमकीला महिमामय एवं मनोहर है। जब हम लोगों के चेहरे इसी अरुणिमा से प्रकाशित होने लगें तो हम लोगों को समझ लेना चाहिए कि पूरा दिन हम लोगों का ही है और जय भी हम लोगों की होगी।

१४ अगस्त १९८८ कलिकाता

समाप्त

****************X****************

अनुक्रमणिका

घोषणा

प्रउत (प्रगतिशील उपयोग तत्व) एक नया आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांत है, जिसे आनंद मार्ग प्रचारक संघ के धर्मगुरु श्री प्रभात रंजन सरकार उर्फ़ श्री श्री आनंदमूर्ति जी ने प्रतिपादित किया है। धर्मगुरु के रूप में वे मानव इतिहास में एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक मुक्ति के लिए एक सिद्धांत दिया। उनके विचार 'प्रउत' पुस्तकों में अभिव्यक्त हैं। उन्होंने न केवल विचार दिए, बल्कि यह भी भविष्यवाणी की, कि एक दिन अवश्य आएगा जब इस पृथ्वी ग्रह के लोग इसे पूरे मन से स्वीकार करेंगे।

विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और अन्य समस्याओं का न्यायोचित समाधान खोजने के उद्देश्य से प्रउत पढ़ें और दूसरों को भी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें।

अनुक्रमणिका

मानव-निर्मित समस्याओं के कारण विश्व आज विनाश के कगार पर है। प्रउत की नीतियों को लागू करके ही समाज की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

प्रउत की नीतियों को लागू किए बिना इस विश्व को किसी भी तरह विनाश से नहीं बचाया जा सकता।

"प्रउत" को " प्राउट" भी कहते हैं, जो अंग्रेज़ी Progressive Utilisation Theory का संक्षेप PROUT है।

आप नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करके ऐसी कई पुस्तकें पा सकते हैं।

www.anandamargaideas.com

यदि आपके कोई प्रश्न हों, तो आप पूछ सकते हैं।

आचार्य सत्यबोधानंद अवधूत

व्हाट्सएप नंबर: 8972566147

अक्टूबर 2025